शक्ति तत्त्व बोध

-विश्वात्मा बावरा

संकलन
दिव्यभारती परिव्राजिका

सम्पादन
ब्रह्मऋता परिव्राजिका

शक्ति तत्व बोध

—विश्वात्मा बावरा

संकलन :
दिव्यभारती परिव्राजिका

सम्पादन :
ब्रह्मऋता परिव्राजिका

दिव्यालोक प्रकाशन
विराट नगर, पिंजौर
(हरियाणा) भारत

प्रकाशक :
दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम,
विराट नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन : ०१७३३-६५१७०

© लेखकाधीन

संकलन : स्वामी दिव्यभारती परिव्राजिका

सम्पादन : स्वामी ब्रह्मऋता परिव्राजिका

शब्द संयोजन : राजीव सेठी

प्रथम संस्करण : जुलाई २०००

प्रतियाँ : २१००

मूल्य : ७०/-

मुद्रक : द प्रेस
एम-२१, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२
दूरभाष : २१२८६६२

दो शब्द

भगवान् व्यासदेव ने पराशक्ति परमेश्वरी की महिमा का बड़े ही विस्तार के साथ श्रीमद्देवीभागवत में वर्णन किया है। हॉलैंड निवासी जनसमुदाय के आग्रह पर मैंने कुछ वर्ष पूर्व नौ दिनों तक उसके मुख्य-२ अंशों की समुचित रूप में व्याख्या की थी जिसको टेप कर लिया गया था। मेरी प्रिय दिव्य भारती ने उन सभी प्रवचनों को टेप से लिपिबद्ध किया और उसे दिव्यालोक में क्रमश: प्रकाशित किया गया। पराशक्ति परमेश्वरी के उपासकों के विशेष आग्रह पर उसे 'शक्ति तत्त्व बोध' नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का दायित्व मेरी प्रिय शिष्या ब्रह्मऋता को दिया गया जिसे उसने सम्पूर्ण प्रवचनों को व्यवस्थित कर जिज्ञासुजनों के बोधार्थ प्रकाशित किया है। मुझे विश्वास है कि सुधीजन शक्ति तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को समझ कर उसकी आराधना, उपासना और चिन्तन करते हुए स्वयं को लाभान्वित करेंगे।

पराशक्ति के सम्बन्ध में मुझे जो कुछ भी कहना है वह इस पुस्तक के पढ़ने से सुधीजनों को ज्ञात हो जायेगा। मैं अपने अध्ययन और अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् उस परमेश्वरी का वैभव विलास-मात्र है जोकि उसने अपने प्रियतम परमेश्वर को प्रमोद प्रदान करने के लिए प्रकट किया है। इस सम्बन्ध में भगवान् व्यासदेव जी के शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है कि—

सर्व रूप मयी सर्व देवी मयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां त्वं नमामि परमेश्वरी॥

इस पुस्तक के लेखन, सम्पादन और प्रकाशन में मेरे जिन शिष्यों ने अथक परिश्रम किया है, वे सभी करुणामयी परमेश्वरी की कृपा के भाजन बनें, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना! करुणामयी माँ उन्हें योग्यता और सामर्थ्य प्रदान कर इसी प्रकार के सद्साहित्य के सृजन में निरत रखे, यही मेरी प्रार्थना है। जिज्ञासुजन इस पुस्तक से प्रेरणा प्राप्त कर परमेश्वरी की उपासना में निरत हो उसकी अनुकम्पा के भाजन बनें, इसी मंगलकामना के साथ—

सभी का हितेच्छु—
विश्वात्मा बावरा

पाठकों से

वैदिक सनातन धर्मानुयायी आर्य जाति अनादि काल से ही इस जड़–चेतनात्मक सृष्टि के परम कारण रूप परब्रह्म को विविध रूपों में उपासती आ रही है। वैदिक विज्ञान सृष्टि के मूल कारण परब्रह्म को ही पुरुष और प्रकृति के रूप में अभिव्यक्त हुआ बताता है। उपनिषदों में उसे ही प्राण और रयि, महेश्वर और उसकी माया, विद्या और अविद्या आदि नामों से अवबोधित किया गया है। गीता के चौदहवें अध्याय में प्रभु ने उस प्रकृति को महद् ब्रह्म कहा है और उसे ही सृष्टि के सम्पूर्ण मूर्त पदार्थों का कारण होने से समस्त प्राणियों की जननी तथा स्वयं को उसमें बीजप्रदाता होने से उनका पिता घोषित किया है। वे प्रकृति और पुरुष भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं। अथर्ववेद कहता है कि उस ब्रह्म के अर्धांश से ही यह अनन्त ब्रह्माण्ड प्रकट हुआ है और अन्य अर्धांश का क्या चिन्ह है, इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता–**अर्धेन विश्वं भुवनं जजानः। अस्यास्याधं कतमः स केतुः॥** मनुस्मृति तथा पौराणिक साहित्य में रूपकों के द्वारा इस वैदिक रहस्य को कथा के रूप में उपबृहण करके समझाया गया है। वह स्वयं वृहद् अण्ड के रूप में प्रकट हुआ, कुछ काल पश्चात् दो भागों में विभाजित हो गया। उसका अर्धांश द्यु तथा अर्धांश पृथ्वी है, दक्षिणांश पुरुष हो गया एवं वामांश स्त्री। आगे उन्हीं के संयोग से सम्पूर्ण चराचर सृष्टजगत् का आविर्भाव हुआ। वे ही प्रकृति–पुरुष विश्व के जननी और जनक हैं। गोस्वामी जी ने उन्हें ''गिरा अरथ जल बीचि सम'' बताया है।

वैदिक धर्म के सभी सम्प्रदाय शक्ति–शक्तिमान के रूप में उनकी आराधना करते हैं। तत्त्ववेत्ता महर्षियों का कथन

है कि पितृशक्ति की अपेक्षा मातृशक्ति अधिक कोमल हुआ करती है। वह वात्सल्यमयी होने से जीवों पर शीघ्र ही द्रवित हो उन्हें अपने अनुग्रह का भाजन बना लेती है। अनन्त जीवों के कल्याणार्थ मातृशक्ति के रूप में उस परमेश्वर के सौशिल्य, वात्सल्य, कारुण्यादि दिव्य गुणों के चिन्तन, स्मरण के साथ पूर्ण प्रपन्नता की भावना सद्यफलदायिनी हुआ करती है। वह करुणामयी अपने अनुग्रह से ही अनादि अविद्या ग्रसित जीवों को बोध प्रदान कर इस भयावह भवार्णव से सदा के लिए विमुक्त कर देती है। लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि पिता की अपेक्षा माँ का वात्सल्य बालक पर अधिक होता है। वह अपने सर्वविद् सुखों का उत्सर्ग कर शिशु की सर्वभाव से सदैव सम्भाल किया करती है। वह केवल पालन–पोषण ही नहीं, बालक की शुद्धि, शोभा एवं सौन्दर्य की भी वृद्धि में सदा निरत रहती है। जब सामान्य माँ की यह सहज वृत्ति है तो उस करुणामयी जगद्धात्रि के सम्बन्ध में क्या कहा जाये!

इस तम प्रधान युग में आहार–विहार सभी कुछ दूषित होने से मानव समाज में प्रायः विपर्यय बुद्धि का ही प्रधान्य होता जा रहा है। सुस्थिर प्रज्ञा के अभाव में वह अपने सर्वनाश के साधनों को ही सर्वतोमुखी विकास की संज्ञा प्रदान कर उनके निर्माण और संग्रह में निरत है, ऐसी स्थिति में उसे यथार्थ बोध प्रदान करने वाली सुस्थिर बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी पराअम्बा सर्वेश्वरी की ही सर्वभावेन् शरण ग्रहण करनी होगी। वह सद्यप्रसीदा भुवनेश्वरी ही एकमात्र अविद्याग्रसित दुर्खाणव में डूबते उतराते हुए अबुध जीवों का आश्रय है। उसके अनुग्रह से ही निर्मल मति प्राप्त कर जीव उसके स्वामी ईश्वर से नित्ययुक्त हो जन्म–मृत्यु, जरा–व्याधि आदि उपाधिजन्य दुःखों से सदा के लिए विमुक्त हो अपने चिर–प्रतीक्षित परमानन्द को प्राप्त कर कृत्कृत्य हो सकता है अन्यथा और कोई उपाय नहीं है।

'शक्ति तत्त्व बोध' में परम पूज्य गुरुदेव ने देवीभागवत अन्तर्गत भगवती के त्रिविध चरित्रों की व्याख्या बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से सरल शब्दों में की है। ये प्रवचन परम पूज्य गुरुदेव ने हालैण्ड के शिव मन्दिर, रोटरडम में दिये, जिन्हें पूज्या दीदी दिव्य भारती जी ने संकलित किया और अब ये आपकी सेवा में समर्पित हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिज्ञासु पाठक इस ग्रन्थ से एक नई दिशा प्राप्त कर माँ दुर्गा की कृपा के पात्र बनेंगे तथा स्वयं के जीवन को शक्ति, भक्ति एवं विद्या से युक्त बनाकर अपना कल्याण व सुन्दर समाज के निर्माण में सहयोगी सिद्ध होंगे। इन्हीं शब्दों के साथ परम पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में बार–२ नतमस्तक होते हुए उनकी कृपा की आकांक्षा लिए–

ब्रह्मऋता परिव्राजिका

प्रचारिका

ब्रह्मर्षि मिशन, अबोहर

१

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा सदैव आप सबके कल्याण का सृजन करे, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना! प्रभु की असीम अनुकम्पा से एक वर्ष बाद हम सब इस स्थान पर पुनः एकत्रित हुए हैं। शाश्वत सनातन धर्म के सिद्धान्तों को जानने, समझने एवं उन्हें जीवन में उतारने के लिए आप सब यहाँ आये हैं। मुझे विश्वास है, नौ दिनों तक वैदिक विज्ञान की जो सरिता यहाँ बहेगी, उसमें आप सब अवगाहन करेंगे और उसे जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे। आज से यहाँ देवी भागवत पुराण का सत्र प्रारम्भ हो रहा है। प्रातःकाल देवी भागवत का मूल पाठ किया गया और इस समय उस महाशक्ति से सम्बन्धित मैं आप लोगों को विचार दूँगा।

आप सब एक बात पहले ध्यान में रख लें कि दुनिया में केवल सनातन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो उस परब्रह्म परमात्मा को पिता ही नहीं माँ के रूप में भी उपासता है। यह ऐसा मानता है कि वह परमात्मा केवल हमारा पिता ही नहीं, हमारी माँ भी है। जैसा कि आप लोग नित्यप्रति प्रार्थना में बोलते हैं—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।

हे प्रभो! आप मेरी माँ हैं और आप मेरे पिता भी हैं, इस वाक्य में कहीं असंगति नहीं है। वेद कहता है—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छशरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते॥

(श्वेता० ५/१०)

परमात्मा में कोई लिंग भेद नहीं है, वह न तो स्त्री है, न पुरुष, न नपुंसक ही है। वह जिस किसी रूप में प्रकट होता है, उसी रूप का हो जाता है। सृष्टि की रचना किसलिए की जाती है? देवी भागवत कहता है—केवल प्राणी मात्र के मोक्ष के लिए। अनन्त काल से अविद्या ग्रसित जीव जो अपने कर्म संस्कार को लेकर पड़े हुए हैं, उनके लिए ऐसा शुभावसर प्रदान करना जिससे वह ब्रह्मतत्त्व को, आत्मतत्त्व को जानकर परम मोक्ष को प्राप्त करे, इसलिए वह सृष्टि की रचना करता है और वह स्वयं स्त्री और पुरुष दोनों रूप में प्रकट होता है। परमात्मा ही प्रकृति है, परमात्मा ही पुरुष है। वहाँ प्रकृति-पुरुष का, जड़ और चेतन का, नारी और पुरुष का भेद नहीं है, इसलिए वेद के मन्त्रों में उस परब्रह्म परमात्मा को जहाँ पुरुष रूप में देखते हैं—

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।

(श्वेता० ३/१५)

वहीं पर हम उसे अदिति के रूप में भी देखते हैं। यजुर्वेद का एक मन्त्र है जिस में बताया गया है—

द्यौरदितिरन्तरिक्षमदिति। (शुक्ल यजु० २३/१६)

द्यौ भी अदिति है, अन्तरिक्ष भी अदिति है, यह पृथ्वी भी अदिति है और सारा विश्व अदिति है। अदिति माने सीमा रहित शक्ति, अनन्त शक्ति, अद्वितीय शक्ति। ऋग्वेद में यह मन्त्र आता है और यजुर्वेद में भी आता है। मैं आप लोगों को बता रहा था कि वही परमात्मा स्त्री रूप में प्रकट होता है और वही पुरुष रूप में भी प्रकट होता है इसलिए सनातन धर्म सर्वरूप में उस ब्रह्म को स्वीकार करता है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है जिसमें बताया गया—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

(ऋग्वेद १/१६४-४६)

वह सत्य एक है, परमात्मा एक है, विवेकी लोग अनेक नामों से उसे पुकारते हैं। देवताओं ने महामाया से पूछा—'**कासि त्वं महादेविति?**' हे महादेवी! तू कौन है? महामाया कहती है—

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति पुरुषात्मकं जगत्।

(श्री देव्यथर्वशीर्षम्-२)

''मैं ब्रह्म स्वरूपा हूँ, मेरे से ही प्रकृति और पुरुष दोनों का आविर्भाव हुआ है।'' जो बात इस उपनिषद् में हम पढ़ते हैं वही बात गीता में भगवान् कहते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।

(गीता ७/७)

हे अर्जुन! मेरे से अतिरिक्त और कोई है ही नहीं। अष्टधा प्रकृति अपरा प्रकृति है जिसको अंग्रजी में लोअर नेचर कहते हैं और जो परा प्रकृति है—

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।

(गीता ७/५)

''ज्ञान स्वरूपा, चेतन स्वरूपा यह मेरी परा प्रकृति है।'' अपरा और परा प्रकृतियाँ दोनों ही मेरी हैं। **'सर्वखल्विदं ब्रह्म नेनाहत्किचिंत्'**, यह वेद की घोषणा है कि उस परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जब उसके सिवा कुछ है ही नहीं तो यहाँ द्वैत कैसे हो सकता है? इसलिए शाश्वत सनातन धर्म में परमात्मा को माँ रूप में भी पुकारते हैं। जीव का जन्म माँ से ही होता है और माँ की कोख में ही पलता है, माँ के दूध से ही उसका पोषण होता है, इसलिए सर्वप्रथम वह अपनी माँ को ही पहचानता है। माँ यदि बता दे कि यह तुम्हारा बाप है तो बच्चा बाप को भी पहचानने लगता है। यदि माँ न बताए तो मेरा विश्वास है कि बच्चा अपने बाप को नहीं जान सकता। है कोई दुनिया में ऐसा ढंग कि बिना माँ के बताए बच्चे को बाप का पता चल जाए? मुझे विश्वास है, नहीं। केवल एक ही रास्ता है, माँ बता दे कि यह तुम्हारा पिता है और वह उस पर विश्वास कर ले क्योंकि माँ के सिवा बच्चे का बाप कौन है, कोई नहीं जान सकता? इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि हम सनातनी पहले परमात्मा को माँ रूप में पुकारते हैं **'त्वमेव माता'**। वेद में जहाँ ऋषि शिष्य को स्नातकोत्तर आशीर्वाद देकर उसे अपने आश्रम से विदा करता है तो शिक्षा देता है—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।

(तैत्तिरीय० १/११)

इस क्रम में पहली शिक्षा है-'मातृदेवो भव', पहली देवता माँ है, पहला ईश्वर माँ है, पहला गुरु माँ है और सर्वप्रथम हम माँ को जानते हैं, माँ के द्वारा हम बाप को जानते हैं।

आप लोग कल्पना कीजिए कि एक अबोध बच्चा जो अपने मल को धोने में असमर्थ है, वह मल-मूत्र से सना हुआ दौड़ कर आता है। यदि उसी अवस्था में बाप के पास आएगा तो बाप उसे उठाएगा नहीं। वह उसकी माँ को

पुकारेगा, अरे! जल्दी आओ, ज़रा देख तो तुम्हारा बच्चा बहुत गंदा है। माँ यह नहीं सोचती कि मेरे कपड़े खराब हो जायेंगे, वह मल-मूत्र से सना हुआ गंदा है। वह दौड़ कर उस शिशु को उठाती है, उसे साफ-सुथरा करती है, नहलाती है, उसे नये कपड़े पहना कर, सजा कर फिर अपने पति के पास ले जाती है। पिता जब बच्चे को सजा हुआ देखता है तो उसे उठाता है और कहता है, यह मेरा लाल है। तुलसीदास जी अपनी रामायण में कहते हैं कि वह महामाया भगवती जीवों की माँ है। यदि जीव अपनी अपवित्रता को, अपने मल को, अपनी गंदगी को स्वयं साफ करने में समर्थ नहीं है तो उसे चाहिए कि वह करुणामयी माँ को पुकारे। माँ करुणा करके इस जीव को उठा लेगी और इसको निर्मल बना कर प्रभु की गोद में बिठा देगी, यह माँ का काम है। तुलसीदास जी रामायण में कहते हैं—

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

(रा० १/१८-७,८)

जो जगत् जननी जानकी है, वह जगत् जननी होने के नाते जीवों की माँ है और करुणानिधान को अत्यन्त प्रिया है, उनकी आह्लादिनी शक्ति है इसलिए प्रभु को उनसे अधिक कोई प्रिय नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं 'पहले मैं माँ की स्तुति करता हूँ, उस माँ की करुणा से ही मैं निर्मल मति पा सकूँगा और कोई दूसरा उपाय नहीं है।' जब माँ ने निर्मल मति प्रदान कर दी, जीव के मल को धो दिया, साफ एवं शुद्ध कर दिया तब तुलसीदास जी कहते हैं—

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक।
चरन कमल बंदउँ सब लायक॥

(रा० १/१८-९)

तब योग्यता आई प्रभु को प्रणाम करने की, अब उसके लिए साहस आया क्योंकि अब माँ की करुणा से हृदय शुद्ध हो गया और विश्वास हो गया कि प्रभु उसे करुणा करके गोद में उठा लेंगे।

दुनिया में केवल शाश्वत सनातन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो परमात्मा को माँ के रूप में भी उपासने की विधा बताता है। श्रीमद्भागवत पुराण में उस ब्राह्मी शक्ति को उपासने की विधा बताई गई है। किन-२ लोगों ने उस भगवती

की उपासना की, किस-२ प्रकार से उसकी उपासना की, इसका विशेष रूप से विवेचन किया गया है।

आप एक बात और समझ लीजिए, भारत में यद्यपि पाँच सम्प्रदाय प्रमुख हैं—शैव, वैष्णव, सौर्य, गाणपत्य और शाक्त। इन पाँचों में सौर्य सम्प्रदाय अतिशय सम्प्रदाय के रूप में बहुत कम मिलता है यद्यपि प्रत्येक हिन्दू सूर्य का उपासक है। प्रात:काल उठकर गायत्री का जाप और सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना सूर्य की आराधना है। हमारे यहाँ सन्ध्या वन्दन में सूर्य की उपासना होती है। सूर्य सावित्री देवता है, वही जगत् का मूल आधार है। इस पृथ्वी पर जो जीवन है, प्राण है, उस सूर्य की कृपा का परिणाम है। आप लोग जानते हैं कि वैज्ञानिकों का यह कथन है कि यदि सूर्य न हो तो इस पृथ्वी पर प्राणी जगत् नहीं हो सकता, यहाँ कोई जीवन धारण नहीं कर सकता। यह प्राण क्रिया जिससे हम आप जी रहे हैं भगवान् सूर्य की देन है इसलिए प्रत्येक हिन्दू के लिए शास्त्र में यह सन्देश आया है कि सूर्य उदय से प्रथम उठो क्योंकि प्राणदाता सूर्य जब उदय हो तो तुम उठकर उसका आवाह्न करो, अभिनन्दन करो। सूर्य उदय से पूर्व उठने वाला व्यक्ति कभी रोगी नहीं हो सकता। सूर्य की उपासना करने वाला व्यक्ति अनन्त रोगों से मुक्त हो जाता है। शुद्ध स्वास्थ्य और शुद्ध बुद्धि, शुद्ध मन और स्ववश की हुई इन्द्रियाँ—ये सब भगवान् सूर्य की उपासना से स्वत: प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए हमारे यहाँ हिन्दू विचारधारा में प्रात: उठ करके सूर्य उदय से पूर्व शौच स्नान से निवृत्त होकर पूर्व की ओर मुख करके गायत्री के जाप की विधि है। गायत्री मन्त्र सूर्य से सम्बन्धित है। वह सावित्री देवता सूर्य कहा जाता है। उसी को सविता कहते हैं। वेद में सविता और सूर्य पर्यायवाची शब्द हैं। मैं आप लोगों को बता रहा था कि प्रत्येक हिन्दू सूर्य की उपासना करता है, सूर्य प्राणशक्ति का केन्द्र है। इसी रूप से प्रत्येक हिन्दू गणेश की आराधना करता है, ॐ की आराधना करता है वेद के मन्त्रों के द्वारा—

ॐ गणानां त्वा गणपतिः हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिः हवामहे
निधीनां त्वा निधिपतिः हवामहे वसो मम।

(शुक्ल यजु० २३/१९)

इन मन्त्रों द्वारा गणपति की आराधना करता है। उनका आवाह्न एवं वन्दन करता है। विशेष रूप से हमारे सनातन धर्म में तीन रूपों की उपासना बहुत ही प्रचलित रूप से मिलेगी। इनके सम्प्रदाय भी स्वतन्त्र मिलेंगे-वैष्णव, शैव और शाक्त। वैष्णव उपासना नारायण, विष्णु, राम, कृष्ण और सत्यनारायण आदि के रूप में

की जाती है। वैष्णव उपासना क्रम में हमारे यहाँ दो और सम्प्रदाय प्रचलित हैं, आप लोगों ने नाम सुना होगा बौद्ध और जैन सम्प्रदाय। जैन सम्प्रदाय के आदि आचार्य भगवान् विष्णु के अवतार थे, उनका नाम था ऋषभदेव। श्रीमद्‌भागवत में भगवान् ऋषभदेव के चरित्र का वर्णन है। नाभि के पुत्र भगवान् ऋषभदेव मनु के छठी पीढ़ी में पैदा हुए। ऋषभदेव के द्वारा जिस सिद्धान्त का भारत में प्रचार हुआ, वह आज जैन सम्प्रदाय नाम से भारत में प्रचलित है। ऋषभदेव के उपासक ऋषभदेव को आदिनाथ के रूप में उपासते हैं, पूजते हैं, वे वैष्णव हैं। जैन सम्प्रदाय में अहिंसा की बड़ी प्रतिष्ठा है और अहिंसा का प्रचार करने के लिए ही भारत में जैन सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुआ। दूसरा सम्प्रदाय बौद्ध है। जैन सम्प्रदाय और बौद्ध सम्प्रदाय—ये दोनों वैष्णव सम्प्रदाय हैं। भगवान् बुद्ध भी विष्णु के ही अवतार हैं। हमारे यहाँ दशावतार में भगवान् बुद्ध भी अवतार माने गये हैं, आप लोग तो दशावतार की कहानियाँ और लीलाएँ पढ़ते और देखते हैं। कलियुग में दो अवतारों में प्रथम बुद्धावतार और दूसरा कलकी अवतार है। हम आप जो रह रहे हैं, यह बौद्धावतार में रह रहे हैं। हमारे यहाँ सनातन धर्म में जब किसी कर्म के पहले संकल्प पढ़ा जाता है तो उसमें बोला जाता है **'बौद्धावतारे वर्तमाने कलियुगे।'**

आप लोगों को एक और बात बताऊँ। भारत में जब बौद्ध लोग पथभ्रष्ट हो गए, अनेक प्रकार के अनाचार से युक्त हो गए; वेद और शास्त्र की निंदा तो करते ही थे, उसके साथ-२ देश-द्रोही भी हो गये तो उन्होंने प्रलोभन में आकर विदेशियों का आवाह्न किया कि तुम लोग आकर भारत पर आक्रमण करो और हमारे धर्म में दीक्षित हो जाओ तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे। इस आवाह्न का परिणाम यह हुआ कि अनेकों विदेशी आये और बौद्धों को प्रलोभन दिया कि हम बौद्ध बन जायेंगे और राजधर्म बौद्धधर्म बन जायेगा। इस कारण बौद्धों ने विदेशियों का स्वागत किया और उनकी सहायता की परन्तु परिणाम उलटा हुआ। विदेशी आक्रमण से बौद्ध जनता दो भागों में विभाजित हो गई। उसमें जो महायान के उपासक थे, वे सब वैष्णव बन गये क्योंकि बौद्ध विचारधारा के निकट वैष्णव विचारधारा थी। आचार-विचार और अवतार की प्रक्रिया सब उसमें थी इसलिए अधिकांश जनता वैष्णव बन करके वैष्णव धर्म की अनुयायी हो गई। कुछ बुद्ध लोग जो बज्रयानी थे, वे शाक्त सम्प्रदाय में चले गये। उनमें से कुछ बौद्ध ऐसे थे जो न वैष्णव बने और न शाक्त बने किन्तु उन्हें जबरदस्ती तलवार की नोक पर मुसलमान बना लिया गया। भारत के पूर्वी वा पश्चिमी भाग में जितने मुसलमान

हैं अधिकांश बौद्धों से ही मुसलमान बने हैं। वे पहले बौद्ध धर्म को स्वीकार किये और बाद में इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिये।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि बौद्ध सम्प्रदाय और जैन सम्प्रदाय, ये वैष्णव सम्प्रदाय का एक प्रतिरूप है। वैष्णव सम्प्रदाय में भी अनेकों सम्प्रदाय हैं, आचार्य रामानुज जो श्रीमन्नारायण को अपना उपास्यदेव मानते हैं, माधो-जो भगवान् विष्णु, शिव को अपना उपास्यदेव मानते हैं, निम्बार्क जो भगवान् कृष्ण और राधा को अपना उपास्यदेव मानते हैं, माधवाचार्य विशुद्धाद्वैत के प्रतिष्ठापक हैं, वल्लभाचार्य भगवान् कृष्ण के बाल रूप को अपना उपास्यदेव मानते हैं—इस प्रकार अनेकों वैष्णव सम्प्रदाय हैं जिन्होंने विभिन्न रूपों में भगवान् की आराधना की और भगवान् रामानन्दाचार्य जो उत्तर भारत के महान् आचार्य हुए, उन्होंने भगवान् राम को अपना इष्ट और उपास्य माना। इस समय भारत में जिन संतों की महिमा आप गाते और सुनते हैं, ये सभी संत प्रायः भगवान् रामानन्द आचार्य के शिष्य थे। मीरा, कबीर, रविदास, धन्ना, सेना और सन्त तुलसीदास; ये सभी महापुरुष रामानुज सम्प्रदाय के थे। भगवान् रामानन्द आचार्य काशी के विद्वान् थे। उन्होंने विशेषकर उत्तर भारत में राम की उपासना का प्रचलन किया और जितने आचार्य हुए हैं, वे सब दक्षिण भारत से आये हैं। आचार्य शंकर से लेकर वल्लभाचार्य तक सभी दक्षिण भारत के थे, इसमें कोई आचार्य उत्तर भारत का नहीं हुआ। भगवान् शंकराचार्य केरल के रहने वाले थे। सुना होगा केरल प्रान्त समुद्र के पश्चिमी तट पर है। रामानुज आचार्य मद्रास के थे। मद्रास से कुछ दूरी पर उनका जन्म स्थान है। इसी रूप से माधवाचार्य जी कन्नड़ प्रान्त के थे जिसे आज कल कर्नाटक कहा जाता है। निम्बार्काचार्य जी त्रिगाणा के थे। वह भी आंध्रप्रदेश का ही एक भाग है। वल्लभाचार्य भी त्रिगाणा के थे। ये पांचों आचार्य—शंकर, रामानुज, माधव, निम्बार्क और बल्लभ दक्षिण भारत के हुए। दक्षिण भारत में छुआछूत बहुत हैं, अंग्रेजों ने जाकर उसे और बढ़ाया। इन आचार्यों के सम्प्रदायों में छुआछूत का बड़ा महत्त्व रहा यद्यपि भगवान् रामानुज आचार्य जो हुए हैं, वे छुआछूत से बहुत दूर थे, विमुक्त थे और बड़े ही सात्त्विक विचारधारा के थे। मानव-मात्र के कल्याण के लिए उन्होंने कार्य किया।

उनके जीवन की एक घटना सुनाऊँ। उनके गुरु यमुनाचार्य ने उन्हें दीक्षा दी और दीक्षा देने के पश्चात् कहा कि इस मन्त्र को किसी को बताना नहीं, अपने तक ही रखना। आचार्य रामानुज ने पूछा, गुरु जी! यदि मैं किसी को बता दूँगा तो क्या होगा? उन्होंने कहा कि इस मन्त्र का पुण्य तुम्हें नहीं मिलेगा, जो

सुनेगा उसको इसका पुण्य मिल जायेगा। उन्होंने कहा–गुरुदेव, बहुत अच्छा! इतना कह कर भाग कर एक गाँव में जा कर नीम के पेड़ पर चढ़ गए। गाँव के लोग आए कि एक महात्मा आया है और नीम के पेड़ पर चढ़ गया, क्या बात हैं? गाँव के लोग तमाशा समझ कर एकत्रित हो गये। तब रामानुज ने कहा—गाँव के सब लोग आ गये? हाँ, सभी आ गये। आप बताइये आप पेड़ पर क्यों चढ़े हो? उन्होंने कहा ध्यान से सुनो और गुरु के बताए हुए मन्त्र को ज़ोर-ज़ोर से बोल कर लोगों को सुनाने लगे। उनकी यह गति देख कर कुछ शिष्यों ने गुरु के पास आकर उनकी शिकायत की, गुरु जी! रामानुज ने तो आपकी बात मानी ही नहीं। आपने उसे दीक्षा क्या दी कि वह तो गाँव में जाकर एक पेड़ पर चढ़ कर सारे गाँव को एकत्रित करके आपके दिए मन्त्र को दोहरा रहा है। उनको बड़ा क्रोध आया कि रामानुज मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है। उन्होंने रामानुज को बुला कर कहा कि तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है। कहा कि किया है भगवन्! तुम्हें पता नहीं, गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला किस नरक का भागी होता है? मालूम है गुरुदेव! फिर क्यों किया? कहा–गुरुदेव आपने हमें दो शिक्षायें दीं, पहली शिक्षा यह दी कि वैष्णव का कर्त्तव्य है प्राणीमात्र का हित वा कल्याण करना। दूसरी शिक्षा आपने यह दी कि जो मन्त्र मैं तुम्हें दे रहा हूँ किसी को नहीं बताना, नहीं तो तुम्हारा पुण्य दूसरे को मिल जायेगा। मैंने यह सोचा कि अब मैं वैष्णव हूँ, प्राणीमात्र का कल्याण करना मेरा परम कर्त्तव्य है इसलिए मुझे अपने लिए पुण्य का फल लेकर क्या करना है? आपने यही कहा था कि इस मन्त्र को यदि मैं जोर से बोलूँगा तो सुनने वाला पुण्य का भागी होगा। मैंने सोचा कि गुरु के द्वारा मिले हुए मन्त्र को एक दो को नहीं वा केवल गाँव वालों को नहीं सुनाना, सारी दुनिया में घूम-२ कर इस मन्त्र का उच्चारण करेंगे जिससे दुनिया के सभी जीव इसको श्रवण करें। लोगों को बताएंगे कि इस मन्त्र को खूब जपो जिससे तुम्हारा उद्धार हो। इसके बदले में गुरुदेव! यदि मुझे नरक भी जाना पड़े तो मुझे कोई तकलीफ नहीं। गुरुदेव ने जब रामानुज की इतनी बात को सुना तो उठ कर उसे हृदय से लगाकर कहने लगें कि सच्चे वैष्णव तो तुम्हीं हो और तुम दुनिया में जा कर मेरे विचारों का प्रचार करो। रामानुज ने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की उसे रामानुज सम्प्रदाय कहते हैं। बाद में उस सम्प्रदाय में भी छुआछूत का बड़ा साम्राज्य हो गया। इसके पश्चात् लोगों ने यह निश्चय किया कि मुक्ति का अधिकारी केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय हो सकता है, दूसरा नहीं हो सकता। तीसरे सम्प्रदाय में जो आचार्य आये, उन्होंने कहा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय

और वैश्य भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है। परन्तु उत्तर काशी के एक आचार्य हुए जिनका नाम रामानन्दाचार्य था। आपने रामानन्द आचार्य का नाम सुना होगा, कबीर के गुरु के रूप में। रामानन्द आचार्य ने उस समय भारत की गतिविधि को देखा। भारत में मुसलमानों का साम्राज्य था, अधिकांश हिन्दू जनता इस्लाम धर्म में दीक्षित हो रही थी। यह देख कर उनको बड़ा दुःख हुआ क्योंकि उस समय छोटी जाति के लोगों को भगवान् की उपासना और आराधना करने का अधिकार नहीं था। उन्होंने घोषणा की—

हरि को भजे सो हरि का होय।
जाति पाति पूछे नहिं कोय॥

उन्होंने एक सिद्धान्त बनाया और उस सिद्धान्त में यह कहा कि भगवान् एक के नहीं सबके हैं। भगवान् की उपासना, आराधना का अधिकार प्राणिमात्र को है, केवल ब्राह्मण, केवल क्षत्रिय, केवल वैश्य अथवा केवल शूद्र को ही नहीं। उन्होंने अपने सिद्धान्त में एक व्यवस्था दी कि प्रत्येक जाति का व्यक्ति अपने लिए एक मन्दिर बनाये और अपने मन्दिर में स्वयं भगवान् की पूजा करे चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र है, इससे कोई मतलब नहीं। आप जाकर अयोध्या में देखिए वहाँ प्रत्येक जाति का मन्दिर है, उसमें भगवान् राम और सीता विराजित हैं। यदि वह भंगी का मन्दिर है तो उसमें भंगी ही पुजारी है, चमार का मन्दिर है तो उसमें चमार ही पुजारी है। भगवान् की उपासना में कोई भेद नहीं। प्रत्येक संत हर एक मन्दिर का दर्शन करता है, प्रणाम करके प्रसाद ग्रहण करता है। भगवान् रामानन्दाचार्य ने एक ऐसी प्रक्रिया चला दी, जिसमें किसी को एतराज वा व्यवधान करने की गुंजाइश ही नहीं रही। भगवान् तुम्हारे अपने हैं, तुम्हारे नज़दीक हैं, भगवान् तक पहुँचने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं। भगवान् को पुकारो भगवान् आ जायेंगे, यह रामानन्दाचार्य जी का सिद्धान्त था। उन्हीं के सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप में तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा—

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

(रा० ७/१३०-१)

दुनिया में किसी भी कोने का कोई प्राणी क्यों न हो, यदि वह राम की

शरण में आये तो प्रभु उसे अपना लेते हैं और वह परम पवित्र होकर प्रभु के धाम में पहुँच जाता है। जो उस समय हिन्दू मुसलमान हो चुके थे उनके विषय में आचार्य रामानन्द जी से पूछा गया भगवन्! इनके लिए आपका क्या विधान है? ब्राह्मण लोग कह रहे हैं कि जो मुसलमान बन गए, वे हिन्दू नहीं बन सकते। उन्होंने कहा, इन्हें हिन्दू बनाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। कहा—क्यों? उन्होंने कहा, यदि ये एक बार भगवान् का नाम ले लें अथवा इनके कान में एक बार भगवान् राम का नाम पड़ जाये तो ये परम वैष्णव हो जायेंगे। रामानन्दाचार्य ने कहा कि वैष्णव तो ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है, वैष्णव सभी जातियों से परे है क्योंकि वह अच्युत गोत्री होता है। वह संसार सागर से मुक्त है इसलिए उन्होंने उस समय जितने हिन्दू मुसलमान बने थे सभी को राम नाम की दीक्षा देकर वैष्णव बनाया। वैष्णव धर्मानुयायी होकर सभी भगवान् के अनन्य भक्त बने।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भारत में ऐसे-२ आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अपने शिष्यों के द्वारा, विचारों के द्वारा भारतीय जनता को एक नई दिशा दी। आप लोगों के लिए सौभाग्य की बात है कि रामचरितमानस जैसा ग्रंथ जिसमें किसी प्रकार के भेद-भाव की गुंजाइश नहीं, जिसने प्राणिमात्र के कल्याण का सृजन किया, यह रामानन्द आचार्य के विचारों का एक साकार रूप है। मैं बता रहा था कि राम, कृष्ण, नारायण और विष्णु की उपासना, यह वैष्णव सम्प्रदाय की उपासना है। शैव सम्प्रदाय में भी अनेकों आचार्य हुए हैं, उनमें लिङ्गायत मत दक्षिण भारत में बड़ा प्रचलित है जो शिव के अतिरिक्त और किसी को नहीं मानते। भगवान् शंकर के छोटे से लिंग को अपने कण्ठ में धारण करते हैं। लिङ्गायत सम्प्रदाय का यह चिह्न है और वे भगवान् शंकर की आराधना करके परम गति को प्राप्त करने की चाह रखते हैं। लिङ्गायत सम्प्रदाय वाले मुर्दे को जलाते नहीं गाढ़ते हैं। वे कहते हैं कि भगवान् शंकर की शरण में जाते ही जीव शिव हो जाता है। वे अपने पवित्र वातावरण से विश्व को पवित्र करने के लिए उसके अस्थिपञ्जर की महत्ता स्वीकार करते हैं। दूसरा वीर शैव है जो पांशुपत सम्प्रदाय का एक अंश है, पाशुपत सम्प्रदाय काश्मीर में बहुत प्रचलित रहा है और प्राय: कश्मीरी हिन्दू भगवान् शंकर के उपासक हैं। इसी रूप से भारत के अन्य भागों में भी भगवान् शिव की उपासना होती रही है, आज भी उसी प्रकार से हो रही है। आप जानते हो हमारे यहाँ सप्त पुरिया हैं—

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची अवन्तिका।
पुरीद्वारावती चैव सप्तेते मोक्षदायिका॥

इन सप्त पुरियों को मोक्ष प्रदायिनी कहते हैं। कोई भी प्राणी वहां रहे और शरीर छोड़ दे तो मृत्यु के पश्चात् मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा विश्वास है। कुछ पुरियाँ वैष्णवों से और कुछ पुरियाँ शैवों से सम्बन्धित हैं। अवन्तिका में भगवान् शंकर महाकालेश्वर जी विराजमान हैं, जिसे उज्जैन कहते हैं। काशी में भगवान् विश्वनाथ विराजमान हैं जिनकी महिमा सारा विश्व जानता है। इसी प्रकार कांचीपुरी है जिनमें भगवान् शंकर और विष्णु विराजमान हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि तीन पुरियाँ शुद्ध वैष्णवों की हैं। मायापुरी (हरिद्वार), काशी, अवन्तिका, ये तीनों शैवों की पुरियाँ हैं, इनमें भगवान् शंकर की मूर्ति है। अयोध्या, मथुरा और द्वारिका, ये तीनों पुरियाँ शुद्ध वैष्णव की हैं। अयोध्या भगवान् राम की जन्मभूमि, मथुरा भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि और द्वारिका भगवान् कृष्ण की लीला भूमि है। एक कांचीपुरी है जिसमें भगवान् विष्णु और भगवान् शंकर का संगम स्थान है जिसे विष्णु कांची और शिव कांची कहते हैं। कांचीपुरम मद्रास के निकट है। विष्णु और शिव दोनों कांचीपुरम में विराजते हैं। मैं आप लोगों को बता रहा था कि भारत में शैव और वैष्णव दोनों बराबर रूप में अपना महत्त्व रखते हैं। आचार्यों का यह कथन रहा है कि—

एको देवो केशवो वा शिवो वा।

एक देव की आराधना करो विष्णु वा शिव की। भगवान् विष्णु और शंकर दोनों ही भारतीय धर्म में परम आराध्य हैं। इससे आप लोग समझ गये होंगे कि सनातन धर्म में भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर, भगवान् भास्कर और भगवान् गणपति,इन चारों की उपासना में, विशेष करके वैष्णव और शैव, ये दोनों सम्प्रदाय मध्यकाल में प्रबल हुए। सूर्य की उपासना गायत्री के माध्यम से प्रत्येक हिन्दू करता है, उसके लिए कहीं अलगाव नहीं है चाहे वह वैष्णव हो वा शैव हो। शैव सूर्य और गणपति की उपासना करता है और वैष्णव भी सूर्य और गणपति की उपासना करता है, वहाँ भेद नहीं है। पाँचवां सम्प्रदाय शाक्त है। भारत में शाक्त सम्प्रदाय के तीन भेद हैं।

आप लोगों को बड़े रहस्य की बात समझा रहा हूँ, दूर बैठे हुए भी आपके समक्ष भारत की यथार्थ स्थिति आयेगी। भारत में शाक्त सम्प्रदाय तीन रूपों में पूजा जाता है, एक वैष्णवी शक्ति के रूप में, दूसरा शैवी शक्ति के रूप में और तीसरा स्वतन्त्र महाशक्ति के रूप में। जहाँ वैष्णवी शक्ति के रूप में विष्णु की शक्ति को श्री विद्या, श्री भगवती, श्री महामाया, महालक्ष्मी के रूप में पूजते हैं, वहाँ शैवी शक्ति के रूप में शिव की शक्ति को चण्डी, उमा, सती, गौरी, शिवा

आदि अनेक रूप में पूजा जाता है। किन्तु जो तीसरा शक्ति सम्प्रदाय है उसमें विष्णु और शिव के साथ वैष्णवी और शैवी शक्ति को नहीं बल्कि वहाँ पर उस महामाया की उपासना ब्राह्मी शक्ति जैसे निर्गुण, निराकार, निरीह, निरंजन ब्रह्म है वैसे ही उसकी पराशक्ति भी है; उस पराशक्ति के रूप में उसकी आराधना होती है। उसकी आराधना करने वाले उपासक यह स्वीकार करते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि, ये सब महामाया की संतानें हैं। देवीभागवत में भी यह विचार आया कि वह महामाया जगत् की जननी है, धात्री है। वह निर्गुण, निराकार, निरीह, निरंजन ब्रह्म की शक्ति है। निर्गुण-निराकार ब्रह्म पिता है, उस पिता से अनेकों ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रकट होते हैं, उसी रूप से उस महामाया से अनेकों ब्रह्माणी, अनेकों शिवाणी और अनेकों शारदा उत्पन्न होती हैं। वे सबकी परा अम्बा हैं। उसको पराम्बा कह करके पुकारते हैं। देवी भागवत् पराम्बा की उपासना का ग्रन्थ है, वही परा-अम्बा वैष्णवी शक्ति के रूप में प्रकट होती है, वही परा-अम्बा शैवी शक्ति और ब्राह्मी शक्ति के रूप में प्रकट होती है। एक ओर से देखा जाए तो वह निर्गुण, निराकार ब्रह्म है, दूसरी ओर देखा जाए तो वह परब्रह्म की शक्ति है। उनमें अभेद है, भेद नहीं है, जिसकी महिमा का ऋग्वेद में देवी सूक्त के रूप में विवेचन किया गया है।

एक बात और आप लोगों को यहाँ पर बता दूँ, यह शक्ति की उपासना भारत में तब से है जब से वैदिक धर्म है। कुछ लोगों को यह भ्रान्ति है कि वेद में भगवती की उपासना कहीं नहीं है। वेद के दशम मण्डल में तो देवी सूक्त नाम से स्वतन्त्र सूक्त है जिसमें आभृण ऋषि की कन्या वाक् जो देवी सूक्त की अनुसंधानकर्तृ है, वह स्वयं उस महामाया की दिव्य महिमा का गान करती है। मैं आप लोगों को बता रहा था कि वह ब्राह्मी शक्ति ब्रह्म की पराशक्ति जो जगत् की धात्री है, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश वा विराट् की भी माँ है, जिसके विषय में ऋग्वेद का मंत्र कहता है कि—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

(श्वेता० ६/८)

उस परमात्मा की वा ब्रह्म की अनन्त शक्ति, अनन्त नामों से सुनी जाने वाली उसकी स्वाभाविकी शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति है। वेद कहता है, उस त्रिविध शक्ति का नाम पराशक्ति है। ब्रह्म को जब राम रूप में देखा जाता है तो उसकी पराशक्ति को सीता कहा जाता है और जब ब्रह्म को कृष्ण रूप में देखते

हैं तो उसकी पराशक्ति को राधा कहते हैं। पुराणों में आप पढ़ेंगे और जब तुलसीदास जी की रामायण को पढ़ोगे तो उसमें भी यह सिद्धान्त मिलेगा। अध्यात्म रामायण में स्वयं भगवान् शंकर उमा को बताते हैं। उसी भाव को गोस्वामी जी ने अपनी रामायण में व्यक्त किया है कि परमात्मा राम से अनेकों ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्पन्न होते हैं—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना।
उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

(रा० १/१४४-६)

उस परब्रह्म के एक-२ अंश से ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न होते हैं और जिससे ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न होते हैं, उसकी पराशक्ति जो है, वह सीता है—

जासु अंस उपजहिं गुनखानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

(रा० १/१४८-३)

जैंसे राम के अंश से ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न होते हैं वैसे ही सीता के अंश से अनेकों महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती उत्पन्न होती हैं क्योंकि राम परब्रह्म हैं और सीता उस परब्रह्म की पराशक्ति हैं। इसी प्रकार से ब्रह्माण्ड पुराण में जहाँ पर कृष्ण की महिमा का विशेष रूप से गान किया गया है वहाँ बताया गया है कि भगवान् कृष्ण के नख से अनेकों ब्रह्मा, विष्णु, महेश का आविर्भाव होता है और भगवान् की आह्लादिनी शक्ति राधा से अनेकों महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती का आविर्भाव होता है। मेरे कहने का अभिप्राय है कि जब ब्रह्म को राम, कृष्ण आदि रूपों में अवतरित पाते हैं तो उनकी पराशक्ति को सीता, राधादि रूपों में अवतरित पाते हैं।

रामायण में हम पढ़ते हैं कि वह ब्रह्म स्वयं मनु के समक्ष प्रकट होकर उनको वरदान देता है कि मैं पुत्र रूप में तुम्हारे यहाँ प्रकट होऊँगा और साथ में वह यह भी कहता है कि—

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया।
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

(रा० १/१५२-४)

"यह आद्यशक्ति जिसने सारे विश्व की रचना की है वह भी मेरे साथ अवतार लेंगी क्योंकि वह मेरी माया वा शक्ति है।" इससे आप लोग समझ गये होंगे कि वैष्णव जिस शक्ति की उपासना करते हैं वह भी पराशक्ति है और शैव जिस शक्ति

की उपासना करते हैं वह भी पराशक्ति है और अन्य सम्प्रदाय के लोग जिस शक्ति की उपासना करते हैं वह भी पराशक्ति का ही अंश है, इसलिए वह पराम्बा अनेक रूपों से पूजी जाती हैं। शाश्वत सनातन धर्म में वह परमेश्वर की पराशक्ति कही जाती है। उसकी उपासना, आराधना मानव-मात्र के कल्याण का सृजन करती है। हम आप सभी जिस पराशक्ति की उपासना के सम्बन्ध में श्रीमद्देवीभागवत का पठन-पाठन और चिन्तन कर रहे हैं, वह पराशक्ति की लीला से परिपूर्ण है, उसमें पराम्बा की महिमा व शक्ति का विवेचन है, वह अनेक रूपों में प्रकट होकर अनेक प्रकार के चरित्रों का निर्माण करती है। अनन्त ब्रह्माण्डों की जननी होते हुए भी वह ब्रह्माण्डान्तर्गत विभिन्न रूपों में जन्म लिया करती हैं। शिव पुराण में उसकी महिमा का वर्णन करते हुए वेदव्यास ने लिखा है कि जब अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पर भी सृष्टि के लिए और कोई उपाय नहीं रहा, सृष्टि की जब वृद्धि नहीं हुई, जीवों के कल्याणार्थ कोई साधन सम्पन्न नहीं हो सका तो वह महामाया स्वयं अनेक नारी रूपों में प्रकट हो गई। नारी के रूप में प्रकट हो करके उसने समस्त जीवों को विभिन्न योनियों में स्वयं धारण किया और उनको जन्म देने की स्वयं माध्यम बनी। उसी ने माँ बन करके जीवों को जीवन प्रदान किया जिससे वे अपने कल्याण का सृजन कर सकें। उसकी इस करुणा को देखकर ब्रह्मदेव ब्रह्मा ने उसकी स्तुति की, उसकी आराधना एवं प्रार्थना की कि भगवती हम पर दया करके हमारे कुल में भी तुम पुत्री रूप में प्रकट हो। ब्रह्मा की प्रार्थना को सुन करके वह महामाया उनके पुत्र दक्ष प्रजापति के यहाँ कन्या रूप में उत्पन्न हुई, जिसका नाम सती पड़ा।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि वह जगद्जननी, जगद्धात्री भगवती अनेक रूपों में हमारे धर्म में पूजी जाती है। यह उपासना वैदिक काल से ही चली आ रही है, कोई नयी नहीं है। हाँ, इतनी बात जरूर है कभी किसी एक प्रकार की भावना का विशेष प्राबल्य होता है और कभी इसके विपरीत दूसरी प्रकार की भावना का प्राबल्य होता है। अब उस भगवती को किस रूप में सदैव पूजा जाये, इसमें भिन्न युगों के अनुसार भिन्न-२ आकृतियाँ, भिन्न-२ प्रकृतियाँ या भिन्न-२ स्वरूप और भिन्न-२ स्थान चुने जाते हैं।

भारत में भगवती की उपासना की एक नयी लहर चली, आप लोग सुने होंगे। वहाँ पर सारी-२ रात भगवती के गीत गाकर जागरण करते हैं। पंजाब से लेकर दिल्ली तक और दिल्ली से लेकर पश्चिम की ओर जागरण का काफी प्रचार है। आजकल विभिन्न प्रकार की उपासनाओं में पार्थिव उपासना अधिक

प्रचलित हो रही है। आज से पूर्व शैवी उपासना, काली उपासना की बड़ी महिमा थी। आज भी आसाम, बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण भारत में काली वा दुर्गा के रूप में भगवती की उपासना विशेष प्रचलित है। वहाँ पर नवरात्रि के नौ दिनों को लोग भगवती की उपासना के रूप में मनाते हैं। आप लोग तो नवरात्रि में जो उपासना करते हो, उसको राम की उपासना समझते हैं जिसमें रावण-कुंभकरण का पुतला जलाया जाता है। यही हमारे उत्तर भारत में भी होता है लेकिन पूर्वी भारत में इसे कोई नहीं जानता। बंगाल, आसाम, उड़ीसा और दक्षिण भारत में इस प्रकार से पुतले नहीं जलाये जाते बल्कि वहाँ दशहरे के दिनों में दुर्गा पूजा की जाती है। गुजरात में भी भगवती का ही पूजन किया जाता है, वहाँ पर नौ दिनों तक मातायें भगवती की उपासना में गर्वा नृत्य करती हैं। आश्विन के नवरात्रि में नौ दिनों तक गुजरात, महाराष्ट्र, पूरे दक्षिण भारत में भगवती का पूजन एवं आराधना की जाती है।

राम की उपासना कब से प्रचलित हुई; इसकी कहानी ४०० वर्ष पुरानी है। गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में पश्चिम भारत और उत्तर भारत में जहाँ-२ रामानन्द अर्थात् वैष्णव सम्प्रदाय के लोग गये, वहाँ पर इस प्रकार की भावना को प्रचलित किया गया। वहाँ पर दुर्गा की आराधना नहीं राम की उपासना, रामायण का गान और विशेष रूप से दशहरे वाले दिन जिस दिन पूर्व में महिषासुर का वध होता था उसी दिन पश्चिम में रावण का पुतला बना कर उसको जलाने की प्रथा प्रचलित हुई। दशहरे के रूप में जो राम की उपासना है, रावण वध है, यह केवल चार सौ वर्ष पुराना है लेकिन दुर्गा की उपासना कब से चली आ रही है, इसकी कोई इति-मिति नहीं इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि आज भी दक्षिण भारत एवं पूर्वी भारत में भगवती की ब्राह्मी शक्ति एवं शैवी शक्ति के रूप में उपासना की जाती है और पश्चिम में इस समय अधिक उपासना वैष्णवी शक्ति की है।

इसमें थोड़ा सा अन्तर और है, वह भी आप लोगों को बता दूँ। वैष्णवी शक्ति की उपासना करने वाले भगवती को नारियल चढ़ाते हैं, पत्र, पुष्प, फल अर्पित करते हैं लेकिन जो शैवी शक्ति की उपासना करने वाले हैं, वे नारियल नहीं, बकरा चढ़ाते हैं। आज भी भारत के पूर्वी भाग में बकरा वा भैंसा काटा जाता है। यह वैष्णव सिद्धान्त नहीं है, इसको मानने वाले बहुत अल्प संख्या में लोग हैं। प्राय: वे लोग जो किसी प्रकार की वासना के शिकार हैं, वे अब भी भगवती की उपासना इस प्रकार से करते हैं अन्यथा बहुत से ऐसे स्थानों पर जहाँ

पहले बकरे कटते थे, अब बन्द हो गये हैं। भगवती को बकरे की जगह पर नारियल अर्पित किया जाता है। वैष्णवी शक्ति की उपासना भारत में दिनों-दिन बढ़ रही है और आप लोगों को मालूम होगा जम्मू से ऊपर वैष्णवी देवी का स्थान है जहाँ लाखों लोग १२ महीनें दर्शन करने जाते हैं और वैष्णवी की उपासना करते हैं। भारत में और भी अनेकों स्थान हैं जो वैष्णवी देवी की उपासना में लोग प्रयोग करते हैं। अधिकांश वे स्थान शैवी उपासना के हैं।

आप लोगों ने शायद कभी सुना हो भगवान् शंकर के अपमान को न सह सकने के कारण सती दक्ष के यज्ञ में अपने आपको होम कर देती हैं। वहाँ पर उस समय दक्ष के यज्ञ को भंग करने के लिए भगवान् शंकर वीरभद्र नाम का एक दूत भेजते हैं। वीरभद्र जाकर दक्ष के यज्ञ को भंग करता है। बाद में भगवान् शंकर सती के शव को लेकर घूमते हैं, ताण्डव करते हैं। भगवान् शंकर जब बहुत देर तक सती के शव को लिये रहते हैं, उस समय देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से उस शव के टुकड़े कर दिए। उसके बावन टुकड़े हुए, जहाँ-२ सती के शरीर के अंग व टुकड़े गिरे, वे स्थान शक्ति पीठ बन गये। इस प्रकार भारत में बावन शक्ति पीठ हैं। उन बावन शक्ति पीठों में भगवान् शंकर की शैवी शक्ति अथवा सती की आराधना होती है और जहाँ-२ शैवी शक्ति की उपासना होती है प्राय: वहीं पर बकरे कटते हैं। बकरे क्यों काटते हैं? शक्ति के लिए नहीं। उसमें दो कथायें हैं। जिस समय वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति का सिर काट लिया था तो उस समय देवताओं के आग्रह पर भगवान् शंकर ने बकरे का सिर काट कर प्रजापति के सिर पर रख कर उन्हें जीवन प्रदान किया था। यह पौराणिक कथा शिवपुराण में आती है। एक तो वह बकरा काली को अर्पित करने का चिह्न बन गया। दूसरे वेद का एक मंत्र है जिसमें बताया गया है कि यह जीव अज है। बकरे के लिए हमारे यहाँ संस्कृत में अज शब्द का प्रयोग होता है। उसमें—

अजामेका लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

(श्वेता० ४/५)

यह एक वेद का मन्त्र है जिसमें बताया गया है कि अजा माने बकरी और अजा माने प्रकृति, अजन्मा शक्ति वा आद्य शक्ति। अजा जो है वह अपने

स्वरूप वाली अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करती है। उसको एक अज जो उसमें अनुरक्त होकर भोग करता है और दूसरा अज उस भुक्त भोगा का त्याग कर देता है—यह वेद के मन्त्र का अभिप्राय है। आप लोग समझ गए होंगे कि त्रिगुणात्मिका प्रकृति ''लोहित शुक्लकृष्णां'' माने लाल, सफेद और काले रंग वाली है। इसका दूसरा अर्थ करेंगे तो वेद कहता है कि लाल, सफेद और काले रंग वाली एक बकरी है जो अपने जैसी अनेकों सन्तानें पैदा करती है और दो बकरे हैं, एक बकरा भोग करता है, दूसरा उसका त्याग करता है, यह सरलार्थ हुआ। अब इसका वैदिक अर्थ समझिए—लाल, सफेद और काले रंग का अभिप्राय है रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण। रजोगुण का रंग लाल, सतोगुण का रंग सफेद और तमोगुण का काला है। इन तीन गुणों से अर्थात् रंगों से युक्त जो है वह अजा माने परमात्मा की शक्ति है। उस परमात्मा की शक्ति के द्वारा अनन्त प्रजाओं का सृजन होता है अर्थात् तीन गुणों से अनन्त सृष्टि का विस्तार होता है। अब उस अजा अर्थात् प्रकृति के द्वारा उत्पन्न हुई उस सृष्टि को भोगने वाले दो अज हैं-जीव और ईश्वर। ऋग्वेद में बताया गया—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

(श्वेता० ४/६)

एक वृक्ष है, उसके ऊपर दो पक्षी बैठे हुए हैं और दोनों पक्षी आपस में भिन्न हैं। रूपक द्वारा यह बात समझाई गई कि वृक्ष क्या है? प्रकृति है। दो पक्षी कौन हैं? ईश्वर और जीव।

त्योरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।

(श्वेता० ४/६)

उसमें से एक पक्षी वृक्ष के फल का स्वाद लेता है लेकिन दूसरा पक्षी केवल देखता है, उसका स्वाद नहीं लेता। फिर परिणाम क्या होता है—

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश
मस्य महिमानमिति वीतशोकः॥

(श्वेता० ४/७)

अब उसी वृक्ष पर स्वाद लेने वाला पक्षी थोड़े दिनों बाद दुःखी हो गया। स्वाद

मधुर हो, यह ज़रूरी तो नहीं। स्वाद मधुर और कड़वा भी होता है। दोनों प्रकार का स्वाद मिलता है। जब पक्षी दु:खी हो गया तो उसी वृक्ष पर बैठा हुआ घबराने लगा और अपने बगल वाले पक्षी को देखा तो उस पक्षी को देखते ही उस पक्षी जैसा हो गया क्योंकि वह वही था, उसके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं था। वह जीव रूपी पक्षी उस वृक्ष के स्वाद को ले रहा था और जब अपने बगल में बैठे उस ईश्वर को अर्थात् अपने कारण रूप परमात्मा को देखा, उसकी शक्ति को पहचाना तो उसको देखते ही वह वही हो गया—

तद् अपश्यत तद् अभवत्।

उसको देखकर वही हो गया क्योंकि तत्त्वत: वही था। तत्त्वत: जीव और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। जीव छाया है और ईश्वर उसका धूप है। जैसे धूप और छाया में कोई भेद नहीं है ऐसे ही ईश्वर और जीव में तत्त्वत: कोई भेद नहीं किन्तु मायावश, मोहवश उस वृक्ष के स्वाद में लग कर अपने को दु:खी-सुखी मानता था, जब उसने अपने साथी को देखा तो वह भी मुक्त हो गया। गीता के १४वें अध्याय में भगवान् ने बताया—

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागता:।

(गीता १४/२)

हे अर्जुन! "मेरे इस ज्ञान का आश्रय लेकर जीव मेरे जैसा हो जाता है। जैसा मैं हूँ वैसा वह भी हो जाता है।" जो गीता में बात कही गई है, वही उपनिषद् और वेद के इस मन्त्र में कही गई है कि (अजा) प्रकृति ने जो अनन्त प्रजाओं का सृजन किया है, उसका एक अज अजन्मा जीव भोक्ता है और—

जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य:।

(श्वेता० ४/५)

दूसरे अज ने उसका त्याग कर दिया। अज दो हैं-एक जीव और दूसरा ईश्वर। दोनों न जन्मते हैं न मरते हैं—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूय:।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(गीता २/२०)

'अजो नित्य:' भगवान् ने गीता में अज कहा है इसलिए—

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य: ॥

(श्वेता० ४/५)

ऐसा वेद कहता है। यहाँ पर अज शब्द का प्रयोग जीव और ईश्वर दोनों के लिए आया है। जीव में जो अजत्व है वह तो तात्त्विक है, वैसे जीव जन्मता और मरता भी है—**अजायमानो बहुधा विजायते,** इसलिए वेद कहता है कि अजन्मा होता हुआ भी अनन्त रूपों में जन्म लेता है। अनेक रूपों में जो जन्म लेता है इसलिए उसमें 'अहं' है, अहं का रूप क्या है? 'मैं'। बकरा कैसे बोलता है? मैं-मैं। शास्त्रकारों ने बताया कि जब तक तुम अपने 'मैं' की बलि नहीं दोगे तब तक तुम परमात्म तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकते, तब तक तुम पराम्बा की कृपा के पात्र नहीं बन सकोगे। शास्त्रकारों ने 'मैं' का बलिदान करने के लिए कहा। 'मैं' का बलिदान करना तो बहुत कठिन है; इसलिए बेचारे मैं-मैं करने वाले बकरे का बलिदान प्रारम्भ हो गया। यह भ्रान्ति कहाँ से हुई? 'मैं' का बलिदान करना तो मुश्किल है न, किन्तु 'मैं-मैं' करने वाले बकरे को मार देना क्या मुश्किल है? दुगुना लाभ होगा। एक तो बकरे का बलिदान करके भगवती को प्रसन्न कर लिया और दूसरा प्रसाद रूप में अपने पेट को भर लिया, दोनों ओर तृप्ति हो गई। किन्तु यह अज्ञानता है, यह व्यामोह है, पतन है, भ्रान्ति है, धर्म नहीं अधर्म है, पुण्य नहीं पाप है, इससे भगवती की कृपा नहीं कोप प्राप्त होता है। कोई भी माँ अपनी सन्तान पर अत्याचार करने वाले को क्षमा नहीं करती और समस्त प्राणी भगवती की सन्तान हैं। भगवती ने स्वयं कहा है कि मैं समस्त जगत् की माँ हूँ। जब समस्त प्राणी उसकी सन्तान हैं तो यदि कोई किसी भी प्राणी के ऊपर व्यामोहवश अत्याचार करता है तो उससे भगवती प्रसन्न नहीं हो सकती। किन्तु भ्रान्तिवश शताब्दियों से यह क्रियाएँ भारत में चली आ रही हैं, जैसा कि मैंने बताया। जैसे-२ वैष्णव विचारधारा का प्रचार होता जा रहा है वैसे-२ ये क्रियाएँ बन्द होती जा रही हैं।

अधिकांश लोग यही कहते हैं कि हम भगवती के लिए ऐसा नहीं करते तो फिर तुम किस लिए जीवों का वध करते हो? उन्होंने कहा कि भगवती के साथ जो योगिनियाँ होती हैं उनकी तृप्ति के लिए हम अर्पण करते हैं। यह भी अपने आप को ठगने का एक ढंग है, भगवती की कोई भी सेना नहीं है, यह भी प्रसंग आयेगा आप लोग एक दिन सुनोगे। जब भगवती शुम्भ, निशुम्भ का वध करती है तो अन्त में निशुम्भ को मारने से पूर्व अनेक रूपों में होकर युद्ध करती

हैं। निशुम्भ कहता हैं कि तुम मेरे साथ छल कर रही हो, तुमने कहा था कि मैं अकेली तुम्हारे साथ युद्ध करूँगी। तुम अकेली युद्ध नहीं कर रही, तुम्हारे साथ तो इतनी सेना है, इतनी बड़ी सेना को लेकर मेरे साथ युद्ध कर रही हो, यह अन्याय है। भगवती हँसते हुए कहती है, अरे मूर्ख! यह सेना नहीं है, मैं ही अनेक रूपों में प्रकट हुई हूँ, मेरे अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं है। इतना कह कर भगवती अपनी सारी सेना को आत्मसात करके अकेले होकर निशुम्भ का वध करती हैं। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि भगवती की कोई सेना वा सहायक नहीं है जिसके लिए बकरा काटा जाए। यह तो भ्रान्ति है, भ्रान्ति से उत्पन्न हुआ अज्ञान है और अज्ञान की सन्तान पाप है। उस पापवृत्ति का परिणाम यह है कि जीव हिंसा में प्रवृत्त होता है।

इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि भारत में भगवती की उपासना के जितने क्रम एवं प्रक्रियाएँ हैं; उन सब में उस पराम्बा की उपासना माता के रूप में की जाती है। उस जननी की उपासना से मनुष्य का आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही पवित्र होता है। मनुष्य भौतिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार की सफलता को प्राप्त करता है। शक्ति सहित शिव की उपासना और शक्ति सहित विष्णु की उपासना में यह विशेषता रही है कि वहाँ भोग और मोक्ष, इन दोनों को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया गया है। जो गृहस्थ आश्रमी हैं, जिनको केवल मोक्ष नहीं बल्कि संसार के हित के साथ मोक्ष की कामना हैं, जिनको भोग और मोक्ष दोनों की अभिलाषा है, ऐसे लोगों को पराम्बा की उपासना करनी चाहिए, ऐसा शास्त्र का कथन है। कुछ लोग यह कहते हैं कि मरने के बाद कुछ नहीं है तुम जीते जी आनन्द ले लो, कुछ लोग यह कहते हैं कि यह जगत् मिथ्या है, इसमें फंस करके अपने मोक्ष को बरबाद कर नरक का रास्ता क्यों तैयार कर रहे हो, इस मिथ्या जगत् को छोड़कर मोक्ष के लिए प्रयत्न करो लेकिन मेरी राय है कि न तो यह जगत् सत्य है और न मिथ्या है। यह जगत् उस पराम्बा भगवती का विलास है, उसके सिवाय और कुछ नहीं इसलिए जितने हिस्से में तुम जगत् से सम्बन्धित हो उतने हिस्से का तुम जगत् का उपयोग करो और उस जगदम्बा की उपासना करते हुए मोक्ष को तुम सिद्ध करो। शाक्त सम्प्रदाय जगत् के सही उपयोग के साथ मोक्ष की प्राप्ति, दोनों मार्ग प्रशस्त करता है। भगवती की आराधना अनेक सम्प्रदायों में होती है। वर्तमान में जो शैव और वैष्णव सम्प्रदाय हैं, उनमें इस प्रकार की विचारधारा का पूर्ण रूप से प्रवेश हो गया है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भारत के सभी सम्प्रदायों में शक्ति की उपासना अनिवार्य रूप से है चाहे वे राधा, सीता और शिवा के रूप में अथवा पार्वती, रिद्धि-सिद्धि वा सावित्री के रूप में हो। किसी भी प्रकार से किसी भी सम्प्रदाय में जायें वहाँ भगवती की आराधना अनिवार्य है। उसका रहस्य यह है कि वही ब्रह्म अनेक रूपों में प्रकट हुआ है और उस ब्रह्म की शक्ति अनेक रूपों में प्रकट हुई। जहाँ ब्रह्म प्रकट होता है वहाँ उसकी शक्ति भी उसके साथ प्रकट हो जाती है इसलिए शक्ति और शक्तिमान की उपासना ही पूर्ण ब्रह्म की उपासना है, ऐसा वेद कहता है। आप सभी शक्ति और शक्तिमान की उपासना करते हुए पूर्ण ब्रह्म की आराधना के साथ अपना भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध करें। धर्मानुष्ठान के द्वारा यथार्थ जीवन जीते हुए संसार के पदार्थों का, इस प्रकृति के विलास का उचित रूप से प्रयोग करें। इसकी यथार्थ अनुभूति का नाम भोग है। भोग माने और कुछ नहीं होता। भोग माने Experience वा अनुभूति। अनुभूति के पश्चात् ही मोक्ष सिद्ध होता है, मोक्ष माने पूर्णत्व की अनुभूति। अपने जीवन में अनेक प्रकार की अनुभूतियों का संग्रह करते हुए पूर्णत्व की दिशा में आगे बढ़ो, यही देवी भागवत के सिद्धान्त का मूल सार है। समय बहुत हो गया है, मुझे विश्वास है कि आप लोग इसका चिन्तन वा मनन करोगे। मनन करते हुए आगे के जो आठ दिवस और हैं, उसमें इस देवी भागवत में वर्णित विभिन्न विषयों से सम्बन्धित जो भगवती की महिमा का गान है, वह मैं आप लोगों को सुनाऊँगा।

दुनिया में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो शक्ति की आराधना न करता हो किन्तु शक्ति की आराधना किस रूप में करता है, इसके लिए निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। कोई धन के रूप में, कोई बल के रूप में, कोई ज्ञान के रूप में, कोई भक्ति के रूप में, कोई शक्ति के रूप में, कोई परिवार के रूप में शक्ति की उपासना करता है। आज दिन तक कोई धर्म, देश, समाज, जाति वा व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जिसने शक्ति की उपासना न की हो और न करता हो। अन्तर इतना है कि एक उपासना ज्ञान-सम्मत है, जान कर की जाती है और दूसरी उपासना अज्ञान सम्मत है, अनजान में की जाती है। जैसे सीता एक शक्ति है, उस शक्ति की उपासना देवता लोग भी करते हैं और राम स्वयं भी करते हैं, उस शक्ति की उपासना भगवान् स्वयं करते हैं और रावण भी उस शक्ति की उपासना करता है। हनुमान जी भी उस शक्ति की खोज में जा रहे हैं, राम स्वयं सीता की खोज में जा रहे हैं, वे भी उपासना करते हैं। एक सही मार्ग से करता है और दूसरे गलत मार्ग से करते हैं। गलत मार्ग से रावण सीता को उठा कर ले

जाता है और उसे लंका में बिठा देता है, लंका में रहती हुई भी सीता रावण की नहीं होती। क्यों? क्योंकि वह सही मार्ग की उपासना नहीं। सीता की उपासना उसने सही मार्ग से, शास्त्रीय मार्ग से नहीं की, इसलिए सीता उसे प्राप्त होते हुए भी अप्राप्त है। उसी की उपासना राम कर रहे हैं, सीता की खोज करते हुए राम आगे बढ़ रहे हैं, हनुमान और बन्दर भी सीता की खोज कर रहे हैं। वे शास्त्रीय विधि से कर रहे हैं। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि जो शास्त्रीय विधि से भगवती की आराधना करता है उनके ऊपर भगवती करुणा करती है और जो अशास्त्रीय विधि से उपासना करता है, उसके ऊपर करुणा नहीं क्रोध करती है। रावण के पास रहते हुए सीता उसके विनाश का कारण बन गई। क्यों? क्योंकि रावण ने गलत ढंग से उसकी उपासना की। राम उस शक्ति की उपासना करके राम बन गए, परमात्मा और भगवान् बन गए। हनुमान उस शक्ति की उपासना करके कृत्कृत्य हो गये, धन्य हो गए तथा आज उनकी आराधना और उपासना होती है। आज हनुमान की घर-२ में क्यों पूजा होती है? क्योंकि उन्होंने सीता की खोज करके उसे लंका से प्राप्त किया था।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि शक्ति की उपासना तो सभी करते हैं, जितने यहाँ बैठे हुए हैं चाहे किसी भी रूप में करें। ऐसा कोई नहीं होगा जो शक्ति की उपासना न करता हो। जो सही रास्ते से करेगा, उस पर भगवती की कृपा होगी और जो गलत रास्ते से शक्ति की उपासना करेगा, वह भगवती के कोप का भाजन बनेगा। शक्ति की कृपा और कोप सही और गलत ढंगों में निहित है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी वाणां को विश्राम देता हूँ। कल पुनः मिलेंगे, फिर चर्चा करेंगे।

हरि ॐ तत्सत्।

२

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् का मंगलमय विधान आप सभी के लिए सदैव कल्याणप्रद हो, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना! आज हमारे देवी भागवत-यज्ञ का दूसरा दिन है। कल मैंने आप लोगों को समझाया था कि वैदिक सनातन धर्म उस ब्रह्म की उपासना केवल पिता के रूप में ही नहीं, माँ के रूप में भी करता है क्योंकि वेदान्त की दृष्टि से वही परमात्मा माँ है और वही पिता है, उसके अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं है। वही स्वयं पुरुष रूप में प्रकट होता है और वही नारी रूप में प्रकट होता है। कहीं पर उपनिषदों में हमें शक्ति के रूप में उसका दर्शन होता है और कहीं पर शक्तिमान् के रूप में वह प्रकाश करता है। इन दोनों का नाम अलग-२ है किन्तु तत्त्व अलग-२ नहीं है। वह परब्रह्म परमात्मा अपनी पराशक्ति के द्वारा तीन गुणों को प्रकट करता है। गीता के सातवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने इस बात को बताया है—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

(गीता ७/१२)

यह जो सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण और उनके भाव हैं, प्रभु कहते हैं कि ये मेरे से ही प्रकट होते हैं। इन तीन गुणों के माध्यम से वह अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना करता है। सतोगुण के

अधीश्वर को वह विष्णु कहता है, रजोगुण के अधीश्वर को वह ब्रह्मा नाम देता हैं और तमोगुण के अधीश्वर को वह शिव नाम देता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों जगत् के सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता हैं। ये तीनों तीन गुणों के अधिपति हैं। ब्रह्म गुणातीत है। वह गुणों का अधिपति नहीं बल्कि ये गुण तो उसकी माया से प्रकट होते हैं। देवी भागवत में हम इस रहस्य को पढ़ते हैं।

एक समय की बात, सरस्वती नदी के तट पर ब्रह्मर्षि वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन ध्यान में बैठे हुए थे। उनके सामने बहुत छोटे-२ गौरैया अर्थात् छोटी-२ चिड़ियाँ आपस में प्यार कर रहीं थी, उनमें से एक बहुत दूर उड़ कर गई, चारा लेकर आई और अपने छोटे से बच्चे के मुँह में डालने लगी। वेदव्यास जी इस घटना को देख रहे थे। देखते ही उनके हृदय में भावना आई कि ये छोटे-२ पक्षी भी सन्तान के प्रति कितना प्यार रखते हैं। देखो, उस चिड़ी को जो दूर से चारा लाकर अपने उस बच्चे के मुँह में डालती है। विचार करने लगे कि मेरे तो कोई बच्चा नहीं है, शास्त्र कहता है कि सन्तान के बिना स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। इसके लिए मुझे क्या करना चाहिए? उस चिड़ी को देख कर उनके हृदय में सन्तान प्राप्त करने की चाह उत्पन्न हो गई। आप देखिए-इसे कहते हैं महामाया की विचित्र लीला।

वेदव्यास जी यह विचार कर रहे थे कि किसकी आराधना की जाए जिससे उन्हें सन्तान प्राप्त हो तो इतने में उनके गुरु देवर्षि नारद वहाँ पर प्रकट हो गए। नारद को देखकर वेदव्यास उनके चरणों में गिर गए और प्रार्थना की कि गुरुदेव आप बड़े अच्छे अवसर पर आये हैं। उन्होंने पूछा, क्या बात है? वेदव्यास ने कहा, आज अचानक इन चिड़ियों को अपने बच्चों के प्रति प्यार की भावना देखकर मेरे हृदय में भी पुत्र की लालसा उत्पन्न हो गई है। मैं भी चाहता हूँ कि मेरे सन्तान हो किन्तु वह सन्तान कैसे प्राप्त होगी? इसके लिए हम किस देव की आराधना करें जिससे हमें सन्तान प्राप्त हो? आप मेरे गुरुदेव हैं, यह आप ही बता सकते हैं। हमारे यहाँ वेद में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, वरुण, कुबेर, इन्द्रादि अनेकों देवताओं की उपासना है। भगवन्! आप मुझे बतायें, किसकी उपासना से हमें उत्तम पुत्र की प्राप्ति हो सकती है? वेदव्यास की बात सुनकर नारद जी मुस्कराये और कहने लगे, ऋषिवर! एक समय की बात है मेरे पिता ब्रह्मा ने यही प्रश्न विष्णु से किया था जो प्रश्न तुम आज मुझसे कर रहे हो। उनका संवाद मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

एक बार ब्रह्मदेव ने भगवान् विष्णु से प्रश्न किया कि आपकी नाभि से

कमल और कमल से मेरी उत्पत्ति हुई। मैं ही सृष्टि का सृजन करता हूँ, निर्माण करता हूँ, आप इस सृष्टि के पालक हैं और मेरे भ्रू भाग से उत्पन्न हुए जो रुद्र हैं, वे ही इस सृष्टि का संहार करते हैं किन्तु हे देव! मैं देखता हूँ कि आप भी कभी-कभी ध्यान में मग्न रहते हैं, आप किसका ध्यान करते हैं? नारद जी यह कथा वेदव्यास जी को सुना रहे हैं। भगवान् विष्णु ब्रह्मदेव की बात सुनकर मुस्कराये और कहने लगे—ब्रह्मदेव, क्या तुम समझते हो कि मैं स्वतन्त्र हूँ? भला तुम यह सोचो कि मैं समय-२ पर अनेक योनियों में अवतार लेता हूँ। वाराह, नृसिंह, वामन, मत्स्य, कच्छप आदि रूप मैंने धारण किये। जब-२ मर्त्यलोक में पृथ्वी पर किसी भी प्रकार का दैत्य पैदा होता है तो उसके संहार के लिए मैं दौड़ा जाता हूँ। बैकुण्ठ के ऐश्वर्य को छोड़कर लक्ष्मी का त्याग कर मैं क्यों दौड़ता हूँ, क्यों जाता हूँ? भगवन्! मैं तो नहीं जानता कि आप क्यों जाते हो? विष्णु ने कहा, तुम यह न सोचो कि मैं स्वतन्त्र हूँ, मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। किसकी चाह होगी कि वह बैकुण्ठ के वैभव का त्याग कर शूकर रूप में अवतार ले? कौन कहेगा कि लक्ष्मी का त्याग कर मैं कच्छप और मच्छ रूप में अवतरित हूँ। तुमने देखा नहीं कि मैंने नृसिंह रूप में अवतार लिया, मेरे सिर के कट जाने पर घोड़े का सिर लगाया गया? तब ब्रह्मदेव पूछते हैं—भगवन्! वह कौन सी ऐसी शक्ति है जो आपको इस प्रकार के कार्यों में प्रवृत्त करती हैं वा मजबूर करती है? भगवान् विष्णु कहते हैं कि वह महामाया है, जगद्धात्री पराशक्ति है, हम तीनों उसी की सन्तान हैं, उसी के अधीन हैं, हम स्वतन्त्र नहीं।

ब्रह्मदेव पूछते हैं, वह महामाया कौन है? भगवान् विष्णु बताते हैं कि वह महामाया जगदम्बा जगद्धात्री विश्व की सृजनात्मिका शक्ति है। उसी के बल से मेरे को पालन का अधिकार मिला है, उसी की कृपा से तुम्हें रचना का अधिकार मिला है और उसी की कृपा से शिव को संहार का अधिकार मिला है। हम तीनों देव उसी महामाया के अधीन हैं। वह परब्रह्म, कारणब्रह्म, निर्गुण, निराकार, निरंजन, परमात्मा की आद्याशक्ति है। उस आद्या शक्ति के सिवाय इस जगत् का आराध्य दूसरा कोई नहीं है; इसलिए हम उसका ध्यान करते हैं। यह जो तुम मेरे साथ देख रहे हो, यह उसी का अंश रूप है। यदि लक्ष्मी न हो तो मैं कुछ नहीं कर सकता और तुम्हारे साथ जो ब्रह्माणी सरस्वती हैं, यदि वह तुम्हारे साथ न हो तो तुम कुछ नहीं कर सकते और शंकर के पास यदि शिवा शक्ति न हो तो शंकर कुछ नहीं कर सकते किन्तु ये तीनों देवियाँ जो हैं, वे उस ब्राह्मी शक्ति की देन हैं; उसकी अंश-भूता हैं। वह जगत्-जननी जगदम्बा विश्व का

सृजन करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव को उत्पन्न करती हैं और अपनी अंशभूता शक्तियाँ महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती को इन त्रिदेवों के साथ कर देती हैं। उनको कहती है कि मेरी यह अंशभूता जो शक्तियाँ हैं, इनके साथ रह कर तुम विश्व का कार्य करो। जैसे हम और तुम हैं ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, इस अनन्त ब्रह्माण्ड में अनन्त विष्णु, अनन्त ब्रह्मा और अनन्त शिव हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपने ब्रह्माण्डों की देखभाल करते हैं। ये अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके अधीन हैं, वे पराम्बा जगदम्बा हैं। वे ब्रह्म की पराशक्ति हैं। भगवान् विष्णु के इस उपदेश पर ब्रह्मदेव ने उस पराशक्ति का ध्यान किया।

एक बार की बात है भगवान् विष्णु शयन कर रहे थे। अचानक उनके कानों से मैल निकली, उस मैल से दो बलवान दैत्य प्रकट हो गए। दैत्यों ने प्रशान्त भाव से उस पराशक्ति की आराधना की। भगवती ने प्रकट होकर कहा—'वरं ब्रूहि।' दैत्यों ने कहा—जगदम्बा! हमें वरदान दो कि हम अपनी इच्छा से भले मरें किन्तु दुनिया में हमें कोई मार न सके। जगदम्बा ने वरदान दिया—'एवमस्तु' ऐसा ही होगा। उन दोनों दैत्यों ने अपने अगल-बगल देखा, उन्हें कोई दिखाई न दिया। ब्रह्मदेव कमल में विराजमान थे, ब्रह्मदेव को देखकर दैत्य उनकी तरफ दौड़े। जब ब्रह्मदेव ने देखा कि दैत्य उनकी तरफ आ रहे हैं तो वह चिल्लाये, पुकारे। ब्रह्मदेव ने देखा कि भगवान् विष्णु तो योग निद्रा में शयन कर रहे हैं, उनकी रक्षा कौन करेगा? फिर उनको ध्यान आया कि वह इस समय योग निद्रा की अधीश्वरी देवी भगवती को पुकारें। भगवती स्वयं विष्णु को योगनिद्रा से मुक्त करेंगी और विष्णु ही स्वयं इन दैत्यों का वध करेंगे। ब्रह्मदेव ने उस पराशक्ति की आराधना शुरु की—

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वशट्कारः स्वरात्मिका।

(दुर्गा शप्तशती १/७३)

भगवती को पुकारा कि तू ही स्वाहा शक्ति है जो देवताओं का पालन करती है, धारण करती है, तू ही स्वधा शक्ति है जो पितरों का पालन-पोषण करती हैं और तू ही स्वरात्मिका, नादात्मिका शक्ति है जिससे अनन्त ब्रह्माण्ड का सृजन होता हैं। भगवान् ब्रह्मदेव उस महामाया की महिमा का गान करते हैं। उनकी प्रार्थना सुनकर भगवती पूछती है कि तुम क्या चाहते हो? ब्रह्मदेव ने कहा कि माँ! भगवान् विष्णु तुम्हारी योगमाया से विमोहित होकर योग-निद्रा में पड़े हुए हैं, इनको तू जगा दे, जिससे वे दोनों दैत्यों का वध कर सकें। भगवती करुणा करके भगवान् विष्णु के चार अंगों से अपनी शक्ति को समेट लेती है, इतने में भगवान्

विष्णु की योग निद्रा खुलती है, जागने पर ब्रह्मा की पुकार सुनते हैं और खड़े हो जाते हैं। ब्रह्मदेव की रक्षा के लिए उन दुष्टों के साथ युद्ध शुरु हो जाता है। अमितकाल तक युद्ध करने पर अपनी पूरी शक्ति लगाने पर भी उनको जीत नहीं पाते। विचार करते हैं कि क्या किया जाये? तब वे आद्याशक्ति का स्मरण करते हैं कि भगवती! यह क्या लीला है? भगवती कहती है कि मेरे वरदान से ये अजय हैं, इनको तुम बल से नहीं मार सकते, इनको तुम जीत नहीं सकते। इनको कैसे मारा जाये? भगवती ने कहा—इनकी मृत्यु स्वेच्छानुसार है। नीति से इनका वध करो। भगवान् विष्णु युद्ध बन्द कर देते हैं और उन दैत्यों से कहते हैं, वाह वीरो! हम तुम पर प्रसन्न हैं, तुम बहुत बलशाली हो, मेरे से कोई वरदान माँगों, मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हूँ। दोनों दैत्य कहते हैं कि हम वरदान लेते नहीं, देते हैं। महामाया द्वारा विमोहित दोनों दैत्यों की बात सुनकर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं, वाह-वाह दानवीरो! यदि तुम वरदान देते हो तो मुझ याचक को वरदान दे दो। दोनों वीर कहते हैं—माँगो जो माँगना है। भगवान् विष्णु कहते हैं—यदि तुम देना चाहते हो तो दोनों मुझे अपना मस्तक दे दो। मस्तक? ओह, हमारे साथ धोखा किया। फिर कहने लगे क्योंकि हमने वचन दिया है इसलिए तुम हमारा मस्तक तो काट लो किन्तु एक शर्त होगी, तुम इस जल के ऊपर हमारा मस्तक नहीं काटोगे। भगवान् ने दैत्यों से कहा, नहीं, यह जरूरी नहीं है। भगवान् ने उन दोनों को अपनी जंघा पर रख कर उनके मस्तक काट लिए। इस प्रकार से ब्रह्मदेव की स्तुति पर प्रसन्न होकर महामाया ने उसकी रक्षा की और भगवान् विष्णु के आदेश से ब्रह्मदेव सृष्टि की रचना में प्रवृत्त हुए।

भगवान् विष्णु के कान से जो मल निकला उससे दो दैत्य पैदा हो गये, उनका नाम मधु और कैटभ था, इसलिए भगवान् का नाम कैटभहारी हैं और वे मधुहन्ता भी कहे जाते हैं। ये दोनों दानव भगवान् विष्णु के कान के मल से पैदा हो गये। बिल्कुल, आज भी पैदा होते हैं और कान से ही पैदा होते हैं। ये केवल ब्रह्मा की हत्या करने पर नहीं तुले थे, ये मधु-कैटभ हम सब की हत्या करने के लिए तैयार रहते हैं। मधु कौन है? काम। कैटभ क्या है? क्रोध। काम और क्रोध को ही मधु और कैटभ कहते हैं। आप लोग जानते हो, काम-क्रोध की उत्पत्ति कहाँ से होती है? कान से। सर्वप्रथम इस श्रवण शक्ति से ही दुनिया के पदार्थों की कामना जागृत होती है। जिसके विषय में आप नहीं सुने हैं, उस विषय की कामना आपको होगी या नहीं होगी? आपकी क्या राय है? स्वर्ग की कामना के विषय में आपने नहीं सुना तो क्या उसकी कामना होगी? नहीं होगी। दुनिया के

किसी भी पदार्थ के विषय में यदि आप न सुनें तो आपको कामना हो सकती है ? आप कहेंगे कि देखकर कामना होती है। आपके देखने की भी सीमा है। आप देख कर दुनिया के वैभव की कामना नहीं कर सकते क्योंकि आप दुनिया को देख ही नहीं सकते। जब तक आपकी श्रवणेन्द्रिय काम न करे, तब तक आपमें कामना का, वासना का उदय नहीं होता।

आप सप्तशती में पढ़े होंगे वा सुने होंगे जो शुंभ और निशुंभ राक्षस हैं; उनको अपने दूत द्वारा देवी के सौन्दर्य का पता लगा तो वहीं से विमोहित होकर उसे प्राप्त करने के लिए दौड़ पड़े। हम दुनिया के विषयों को सुन करके प्राप्त करने की कोशिश करते हैं और इसी से हमारे में कामना का जागृति होती है। मधु और कैटभ में मधु बड़ा है, वह दाहिने कान से पैदा हुआ है, कैटभ छोटा है वह बायें कान से पैदा हुआ है। मेरे कहने का अभिप्राय है कि जब काम की पूर्ति नहीं होती तो छोटा वहाँ पर खड़ा हो जाता है। ये दोनों सुनकर चलते हैं। काम और क्रोध, दोनों कान के मल से उत्पन्न होते हैं। कान का गुण क्या है ? कान का गुण भगवद् चरित्र का श्रवण है, वेद शास्त्र का श्रवण है—

श्रवणन का फल कथा तुम्हारो, यह समझूं समझाऊँ।

तुलसीदास जी विनय पत्रिका में कहते हैं कि कानों का फल यही है कि आपके चरित्र को सुनूं और सुनाऊँ। भगवान् राम वाल्मीकि के आश्रम में जाते हैं। महर्षि से पूछते हैं—भगवन्! मेरे लिए कोई स्थान बताइये जहाँ जाकर मैं निवास करूँ—

तहँ रचि रुचिर परन तृन साला।
बासु करौं कछु काल कृपाला॥

(रा० २/१२६-६)

हे प्रभो! मुझे कोई ऐसा स्थान बतलाइये जहाँ मैं एक छोटी सी कुटिया बना कर सीता और लक्ष्मण सहित निवास करूँ। ऋषि वाल्मीकि मुस्कराने लगे। उन्होंने कहा—राम! तुम ऐसा समझते हो कि मैं तुम्हें पहचानता नहीं। ऐसी बात नहीं है, मैं तुम्हें पहचानता हूँ। मैं तुम्हें क्या बताऊँ कि तुम क्या हो? मेरा एक प्रश्न है, उस प्रश्न का उत्तर तुम्हीं दे दो। भगवान् पूछते हैं कि भगवन्! आपका प्रश्न क्या है? वह कहते हैं—

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥

(रा० २/१२७)

आप मुझसे पूछते हो कि मैं कहाँ रहूँ? मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप कहाँ नहीं हैं? जहाँ पर आप नहीं हैं वहीं मैं बता दूँ कि आप वहाँ जाकर रहिये। आप तो घट-२ में व्यापक हैं, प्रभो! आप तो कण-कण में रम रहे हो। आप मुझे क्यों बहका रहे हैं? महर्षि जी को एक बात याद आई कि भगवान् के जो अनन्य भक्त हैं, वे भगवान् के लिए तरसते रहते हैं। वे अन्तर्यामी प्रभु से प्रसन्न नहीं हैं, संतुष्ट नहीं हैं। वे तो अपने प्रभु को बाहर साकार रूप में देखना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने कहा—

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥

(रा० २/१२८-४,५)

जिनके श्रवण समुद्र के समान हैं। जैसे समुद्र में अनेकों नदियाँ आकर गिरती हैं किन्तु समुद्र विचलित नहीं होता। उसने नदियों से कभी यह नहीं कहा कि मुझे जल की जरूरत नहीं है। वाल्मीकि ऋषि कहते हैं—इसी प्रकार से जिनके श्रवण समुद्र के समान हैं और अनन्त नदियाँ रूपी भगवद् कथा, भगवद् चरित जिनके श्रवण में गिर रहा है अर्थात् रातों-दिन जो भगवद् महिमा को सुनकर भी तृप्त नहीं होते। कभी उन्होंने यह नहीं कहा कि अब बहुत सुन लिया है, अब क्या सुनना। प्रतिदिन सुनते हैं; फिर भी उनको सुनने में नवीन बात का रस मिलता है। प्रतिदिन सुनने पर भी उनकी चाह बनी रहती है कि और भी भगवान् की महिमा का गान सुनूं। जिनकी सुनने पर कभी तृप्ति नहीं होती, ऐसे जो श्रवण भक्ति करने वाले आपके भक्त हैं; वाल्मीकि ऋषि कहते हैं, प्रभो! उन्हीं का हृदय आपका सुन्दर घर है। आप उनके हृदय में निवास करें।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि श्रवन का, कानों का जो फल है वह तो भगवत् चरित्र, भगवद् गुणानुवाद सुनने में, भगवद् लीला के श्रवण करने में, तत्त्वज्ञान की बातें सुनने में है। गीता के दसवें अध्याय में भगवान् ने बताया—**'वादः प्रवदतामहम्'** 'जो तत्त्व से सम्बन्धित वाद है, चर्चा है, वह मेरा स्वरूप है।' दसवें अध्याय में एक बात और बताई—

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०/९)

'जो मेरे अनन्य भक्त हैं, मेरे दृढ़ मति भक्त हैं, वे सतत मेरा चिन्तन करते रहते हैं, मेरी महिमा का श्रवण करते हुए उसी में तृप्त होकर रत रहते हैं। जो भगवान् के चरित्र को सुन कर कभी अघाते नहीं, उनके श्रवण धन्य हैं। उनके श्रवण पवित्र होते हैं। दुनिया की बुराई, निन्दा, पाप तथा दुर्गुण सुनते-२ कान अपवित्र हो जाते हैं। इन्हीं बुराईयों को सुनने से वासना वा लोभ का जागरण होता है। आपने कटु वचन सुना तो क्रोध आ गया, आपने किसी की रस भरी वाणी सुनी तो कामना जागृत हो गई, ये दोनों श्रवण के मल हैं। श्रवण के गुण भी हैं और दोष भी। श्रवण के मल से काम और क्रोध अर्थात् मधु और कैटभ का जन्म होता है। मधु और कैटभ जब प्रबल होते हैं तो जानते हो किसका नाश करते हैं? आपकी सृजनात्मिका शक्ति का, आपकी निर्माणात्मिका शक्ति का। निर्माणात्मिका शक्ति माने creative power जिससे आप कुछ निर्माण कर सकें। वह क्या है? बुद्धि। जब काम उत्पन्न होता है तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, क्रोध उत्पन्न होने पर भी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। गीता में भगवान् ने समझाया—

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २/६२-६३)

वासना आसक्ति से प्रारम्भ होती है और आसक्ति सुन कर होती है। आसक्ति से कामना जागृत हुई, कामना पूरी हुई तो फँस गये, यदि पूरी न हुई तो क्रोध ने जन्म ले लिया। क्रोध से मतिभ्रम हुई और मतिभ्रम से बुद्धि नाश हो जाती है और जब बुद्धि का नाश हुआ तो सर्वनाश हो जाता है। एक बात याद रखो. रामायण में तुलसीदास जी ने एक बात कही है। उन्होंने कहा—

काल दण्ड गहि काहु न मारा।
हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा।

(रा० ६/३७-७)

काल किसी को डंडा लेकर नहीं मारता। जिसको मारना चाहता है, उसके धर्म, बल और बुद्धि को हर लेता है। जिसकी बुद्धि हरी जाये समझ लो उसके विनाश के दिन नज़दीक आ गये हैं। जिसके नाश का समय होता है, उसका धर्म, बल और बुद्धि नष्ट हो जाती है। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि बुद्धि के नाश से ही सर्वनाश होता है, बुद्धि ही आपकी निर्माणात्मिका शक्ति है, बुद्धि ही आपकी क्रियात्मिका शक्ति है। मधु और कैटभ, ये दोनों बुद्धि का नाश कर देते

हैं। काम जब जागृत होता है तो क्या बुद्धि काम करती है? नहीं, काम की प्रबलता में बुद्धि नहीं रहती। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है कि लोभी को धर्म की शिक्षा दो तो वह व्यर्थ है—

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती।
सहज कृपन सन सुन्दर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा।
ऊसर बीज बएँ फल जथा॥

(रा० ५/५८-२,३,४)

तुलसीदास जी कहते हैं कि मूर्ख से प्रार्थना करो तो वह सोचेगा कि मेरे से डर रहा है, इसलिए सठ के साथ विनम्रता उपयोगी नहीं है और कुटिल व्यक्ति के साथ प्रेम करो तो? कुटिल माने कपटी, सामने कुछ और है और पीछे कुछ और हैं, ऐसे व्यक्ति के साथ प्रेम करो तो वह भी दुःखद ही होता है, इससे कुछ लाभ नहीं होता। जो कृपण वा कंजूस आदमी है, उसको यदि आप नीतिशास्त्र का उपदेश दें, उसको यह समझायें कि तुम्हारे पास जो धन है, उसकी तीन गतियाँ होंगी-दान, भोग और नाश। जो तुम दान देते हो, वह आगे जाकर हज़ार गुणा होकर मिलेगा और जो तुम भोग कर लिये वह भी तुम्हारे काम आयेगा किन्तु जो दान नहीं दिया, भोग नहीं किया, केवल बैंक-बैलेन्स बना है, उसका अन्त में नाश ही होगा, क्योंकि उसका कोई उपयोग नहीं है। यदि उसको यह नीति की बात समझायें कि दान से कीर्ति होगी, धन के भोग से सुख मिलेगा और यदि दान और भोग नहीं किया तो तुम्हारा जीवन और धन दोनों व्यर्थ हो जायेंगे, किन्तु यह बात उसको समझ नहीं आयेगी। वह नीति का पात्र नहीं, वह तो लोभी आदमी हैं। जो ममता में रत हैं, उनसे ज्ञान की बातें करो तो वे क्या कहेंगे? बाबा जाने दो, रास्ता पकड़ो, हमें बातें बहुत समझ में आती हैं।

पुराण की एक कथा है। एक बार भगवान् विष्णु अपने धाम में विराजमान थे। महात्मा नारद घूमते हुए विष्णु लोक में गये और रास्ते में उन्होंने नारकीय जीवों को देखा। नारकीय जीव यातना सह रहे थे, दुःखी थे और पीड़ित होकर चिल्ला रहे थे। यह देखकर नारद को बड़ा दुःख हुआ। नारद जी भक्त थे। भक्त का हृदय बड़ा कोमल होता है। प्रभु के पास गये, उनके पास जाकर रोने लगे, प्रभो! आप करुणा के सिन्धु हैं फिर भी ये जीव यातना का कष्ट भोग रहे हैं।

भगवान् ने कहा, नारद आप क्या चाहते हो? प्रभो! यह नरक बन्द कर दो। आपकी सृष्टि में नरक नहीं होना चाहिए। भगवान् ने कहा, नहीं होगा, किन्तु स्वर्ग में आने के लिए कोई तैयार हो तो मैं नरक बन्द कर दूँगा। नारद जी ने कहा, भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं अभी स्वर्ग भर दूँ। भगवान् ने कहा, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि जितने लोग आना चाहें उन्हें स्वर्ग में ले आओ। नारद जी बड़े प्रसन्न हुए कि आज से नरक सदा के लिए बन्द हो जायेगा, नरक नहीं रहेगा। भगवान् ने स्वीकार कर लिया है, इसलिए हम मृत्युलोक के सभी जीवों को स्वर्ग ले आयेंगे। ऐसा विचार कर नारद जी मर्त्यलोक में गये।

वहाँ जाकर जिसके पास जायें—क्यों भई, आप स्वर्गलोक को चलेंगे? क्या बात आपका दिमाग ठीक है, यह समय स्वर्गलोक जाने का है? यह समय तो दुनिया में रहकर खाने-पीने और खेलने का है। स्वर्ग क्यों ले जा रहा है? नारद जी बड़े परेशान हुए, उन्होंने कहा कि हमने तो सोचा था कि स्वर्ग का नाम सुनकर सभी जाने के लिए तैयार होंगे। यहाँ पर तो कोई भी स्वर्ग जाने के लिए तैयार नहीं। एक वृद्ध आदमी था, उसे कान से कम सुनाई देता था और आँख से कम दिखाई देता था, नारद जी ने उसके कान में जाकर कहा—बाबा तुम स्वर्ग चलोगे? उसने कहा—अवश्य चलूँगा किन्तु अभी नहीं। नारद जी ने पूछा—क्या बात है, अभी क्यों नहीं जाना? उसने कहा, मेरे सात लड़के हैं, छः की शादी हो गई, अभी एक बाकी है। उसकी शादी कर लूँ, फिर तुम आना, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। नारद जी ने कहा, अच्छा मैं फिर आ जाऊँगा। उन्होंने सोचा कि चलो एक ग्राहक तो स्वर्ग जाने के लिए मिला। थोड़े दिनों के बाद नारद जी ने पुनः उस वृद्ध के पास जाकर पूछा, क्यों बाबा, बेटे की शादी हो गई? हाँ, शादी हो गई, बहु बड़ी अच्छी है, योग्य है, सुन्दर भी है। मैंने अपने बड़े पुत्रों के बच्चे तो खिला लिए, अब मैं सोचता हूँ, भगवान् इसको भी सन्तान दे दें तो उसका मुँह देख लूँ, फिर चलूँगा। नारद जी ने पूछा, कितना समय लगेगा? यह तो भगवान् ही जाने। कुछ समय के बाद नारद जी फिर उस बाबा के पास गये और कहा—बाबा! अब तो चलने का समय आ गया। तीन महीने की मोहलत और दे दें, मैं अपने छोटे पौत्र का मुंह देख लूँ, बड़ी अच्छी बात है। नारद जी छः महीने के बाद आये, आकर पूछा, यहाँ एक वृद्ध था, वह कहाँ है? लोगों ने कहा—चार महीने हो गये, उसकी मृत्यु हो गई थी। घर वालों ने कहा, स्वर्गवास हो गया। नारद जी ने कहा, मुझे विश्वास नहीं, स्वर्गवास होता तो मैं ही ले जाता। स्वर्गवास हुआ नहीं, यहीं कहीं होगा।

नारद जी ने बड़े ध्यान से देखा, वह एक पिल्ले के रूप में पैदा हुआ था। कुत्ते का पिल्ला बन कर वह अपने पोत्रों के साथ दौड़ रहा था। नारद जी ने जाकर पिल्ले को उठाया और कहा—बाबा, क्या हो गया? मैं तुम्हें स्वर्ग जाने को कह रहा था, तुम इनके साथ खेल रहे हो। उसने कहा—बाबा, स्वर्ग तो चलूँगा, अब तुम देख रहे हो, मैं अपने इन पौत्रों के साथ खेल रहा हूँ। देख रहे हो, मेरा वह पौत्र पालने में पड़ा हुआ है, जब वह चलने के योग्य हो जायेगा तो उसके साथ भी कुछ दिन दौड़ लूँगा, फिर तुम मुझे ले चलना थोड़े दिन बाद। नारद जी पुनः लौट कर आये तो देखा वहाँ पिल्ला नहीं था। घर वालों से पूछा, यहाँ पर एक काला कुत्ता था, वह कहाँ गया? उन्होंने कहा, यहाँ पर तो अनेकों कुत्ते घूमते रहते हैं, मरते रहते हैं। उन्होंने विचार किया कि वह यहीं कहीं होगा, यहाँ से जा नहीं सकता। ध्यान से देखा तो वह गन्दी नाली में कीड़ा बना हुआ था, वहाँ बैठा बिल-बिला रहा था। नारद जी गये, उन्होंने उस कीड़े को उठा कर पूछा—बाबा! अब चलना? उसने कहा—हटो यहाँ से, मेरे परिवार से मुझे अलग करना चाहते हो? नारद जी ने उसे वहीं पटक दिया और कहा, तुम इसी के काबिल हो। भगवान् से जाकर प्रार्थना की कि भगवन्! जो आपने स्वर्ग बनाया है, इसकी जरूरत ही नहीं, क्योंकि सृष्टि के समस्त प्राणी उसी नरक में रहने के लिए तैयार हैं, वही उनको प्रिय है।

मैं कई बार बता चुका हूँ, यहाँ जीव बिलखता है, चिल्लाता है, दुःखी एवं अशान्त होता है फिर भी उसी में फँसा रहता है, उससे आगे जाना नहीं चाहता। ऐसे ममता युक्त जो लोग हैं, आसक्ति में फँसे हुए हैं, उनसे ज्ञान की बातें करना व्यर्थ है। नारद जी जैसे व्यक्ति उनको नहीं समझा सके तो हम आप क्या समझा पायेंगे। पुराण की इस कहानी से हमें यही ज्ञात होता है—

ममता रत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन बिरति बखानी॥

(रा० ५/५८-३)

अत्यन्त लोभी व्यक्ति से वैराग्य की बात करो वा संसार के त्याग की बात करो, तो वह भी व्यर्थ है और क्रोधी व्यक्ति को यदि समता का उपदेश दो तो वह भी व्यर्थ है।

मुझे अपने जीवन की एक घटना याद है, अभी मैं नया-२ इस क्षेत्र में निकला था, उन दिनों मेरी आयु १८ वर्ष की थी। अच्छा तगड़ा था। भगवान् की बड़ी कृपा थी, अच्छे परिवार से निकला था। जब नया-२ बाबा जी बना तो

जगह-२ हम लोग भिक्षा लेने के लिए जाते थे। उन दिनों मैं वैष्णव धर्म में दीक्षित हुआ था इसलिए 'मधुकरी' माँगता था। मधुकरी माने आटे की चुटकी। किसी के घर जाकर द्वार पर आवाज़ लगाना, हरिनारायण कहना और अन्दर से कोई निकले तो एक चुटकी आटा दे जाये, इस प्रकार पाँच घरों से पाँच चुटकी आटा लेकर वापिस आना और उसकी बाटी बना कर खाना, यह नियम था। एक बार किसी के घर पर जाकर हरिनारायण कहा, इतने में उस घर का मालिक अपने लड़के पर बड़े क्रोध से बिगड़ा हुआ था और गालियाँ दे रहा था। गालियाँ ऐसी दे रहा था जिनको सुनना भी कठिन था क्योंकि मैं ऐसे परिवार से गया था, जहाँ कभी गाली सुना नहीं था। काशी में ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ और ब्राह्मण संस्कारों में पला था। इतना पता ही नहीं था कि कोई पिता अपने लड़के को इस ढंग से गाली दे सकता है। वहाँ पर मैंने जब उसकी गतिविधि देखी तो मुझ से रहा नहीं गया। मैंने कहा, पिता जी! आप इस बच्चे को गाली देकर अपनी जुबान को क्यों अपवित्र कर रहे हो? आप गाली न देकर किसी दूसरे ढंग से भी बच्चे को समझा सकते हो। इतना मुझे कहना था कि वह मेरी तरफ घूमा और जोर से तमाचा दे मारा। नया वैराग्य था, पुराना वैराग्य होता तो शायद इतनी सहन शक्ति न होती। उन दिनों नये-२ निकले थे, नये वैराग्य के कारण मुझे हँसी आ गई। मैंने उनको कहा, पिता जी! यदि मारने से आपको संतोष होता हो तो अपनी जुबान अपवित्र न करो, एक तमाचा इधर और मार लें। जब मैंने इतना कहा तो वह मेरी ओर देखने लगा। इतने में गाँव के लोग जो दूर से देख रहे थे, उन्होंने देखा कि महात्मा को मारा है तो वे दौड़ते हुए उसकी तरफ आये। मैंने उन लोगों से कहा कि यह तो मेरे पिता से भी वृद्ध हैं। जब मैं इस क्षेत्र में आया तो उस समय मेरे पिता की आयु ५०-५५ वर्ष की रही होगी। मैंने कहा, यह तो मेरे पिता से भी वृद्ध हैं, आप इन्हें मारने की कोशिश न करें और इन्हें कुछ न कहें। थोड़ी देर के बाद हम वहाँ से चले आये किन्तु उस समय तुलसीदास जी की यह चौपाई बार-२ मेरे ध्यान में आने लगी। कौन सी चौपाई? जो मैं आपको बताने जा रहा हूँ—

क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा।
ऊसर बीज बएँ फल जथा॥

(रा० ५/५८-४)

जैसे ऊसर माने बंजर भूमि के बीच में बीज डालने से बीज का नाश होता है, ऐसे

ही क्रोधी को शान्ति का उपदेश देना और कामी को भगवान् की कथा सुनाना, दोनों ही ऊसर में बीज डालने के समान हैं। इससे कोई लाभ होने वाला नहीं है क्योंकि सत्संग का पात्र, शिक्षा का पात्र, सद्‌विचार श्रवण वा ग्रहण करने का पात्र वही होता है जिसके हृदय में श्रद्धा हो। तुलसीदास जी ने श्रोता के गुण बताये हैं—

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास।

(रा० ७/६९)

श्रोता में कितने गुण होने चाहिएँ? जिसमें सुमति अर्थात् सुन्दर मति हो। यदि सुमति नहीं है तो वह श्रोता नहीं बनेगा, सरौता बनेगा। हमारे यहाँ एक महात्मा थे, वह कहा करते थे कि सुनने वाले तीन प्रकार के होते हैं—एक सोता होता है, महात्मा व्याख्यान दे रहे हैं, वे आराम से सो रहे हैं। दूसरे सरौता होते हैं, महात्मा जी व्याख्यान दे रहे हैं और वे कतर-२ काट रहे हैं, उनको व्याख्यान से कोई मतलब नहीं, वह अपने काटने में ही लगे रहते हैं और तीसरे श्रोता होते हैं। श्रोता माने जिनकी श्रवणेन्द्रियाँ एक-२ शब्द को ग्रहण करती रहती हैं। तुलसीदास जी लिखते हैं कि श्रोता में कितने गुण होने चाहिएँ?

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास।

ये पाँच गुण हों तब श्रोता बनता है। जिसकी सुन्दर मति हो, सुन्दर मति माने जो सही और गलत को समझता है, अर्थ और अनर्थ को वा हित या अहित को समझता है। तुलसीदास जी अपनी रामायण में लिखते हैं कि विभीषण रावण को समझा रहा है—

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

(रा० ५/४०-५,६)

सभी के हृदय में सुमति और कुमति दोनों रहती हैं किन्तु जहाँ सुमति है वहाँ सम्पत्ति वा सुख है और जहाँ कुमति है वहाँ विपत्ति और दुःख है। श्रोता वह है, जिसके पास सुमति है, सुन्दर मति है, विशुद्ध बुद्धि है, जिसके द्वारा वह सत् और असत् का निर्णय करता है। नहीं तो, यहाँ पर बावरा जी कुछ समझायेंगे, दिमाग में कुछ और आयेगा, बाहर जाकर कुछ और बतायेंगे; यह तीन के तीन अलग हो जायेंगे। मैं आप लोगों को क्या बताऊँ, पिछले दिनों जब मैं यहाँ आया था, उस

समय सूर्यनाम भी गया, वहाँ पर मुझे एक पर्चा मिला, जिसमें एक सज्जन ने लिखा था कि बावरा जी चमारों को ब्राह्मण बनाते हैं। उस पर्चे को पढ़ कर मुझे बड़ी हैरानी हुई, खैर और भी बहुत कुछ लिखा था। मेरे पास लोग बैठे हुए थे, मैंने उनसे पूछा कि यह कौन सी कीमिया है? कीमिया जानते हो रसायन को कहते हैं। वह कौन सी 'रसायन' वस्तु है जिससे चमार को ब्राह्मण बना दिया जाये? हमें तो उस कीमिया का पता नहीं।

हमारे यहाँ पुराण में कथा आती है। अष्टावक्र एक ऋषि थे, तत्त्वद्रष्टा थे किन्तु जब वह अपनी माँ के गर्भ में थे तब एक घटना घटी। घटना क्या घटी कि उनके पिता वेद का पाठ कर रहे थे, संयोगवश पाठ करते समय उनसे अशुद्ध पाठ हो गया। पेट में जो बालक था, वह बोल पड़ा कि तुम वेद मन्त्र अशुद्ध बोल रहे हो क्योंकि वह ब्रह्मतत्त्व से युक्त था। बाप को बड़ा क्रोध आया, उसने कहा, यह जन्म से पूर्व ही शुद्ध-अशुद्ध बता रहा है, जब जन्मेगा तब क्या करेगा? अभी मेरे को कह रहा है कि तुम अशुद्ध पाठ कर रहे हो, जब पैदा होगा तब क्या करेगा? यह सोच कर पिता ने श्राप दे दिया कि जाओ तुम टेढ़े हो जाओ क्योंकि तुम्हारी बुद्धि टेढ़ी है, पिता के ऊपर आक्षेप कर रहा है। जब वह पैदा हुए तो आठ जगह से टेढ़े थे, इसलिए उनका नाम अष्टावक्र पड़ा।

महाराज जनक की सभा लगी हुई थी, बड़े ऋषि महर्षि बैठे हुए थे, उसमें अष्टावक्र भी पहुँच गये। अष्टावक्र के शरीर का टेढ़ापन देख कर जितने भी ऋषि, मुनि थे, सभी हँस दिये। अष्टावक्र वहीं से लौट गये और जब राजा जनक को अष्टावक्र के लौटने का पता चला तो उसी समय राजा जनक दौड़ कर गये और उनके चरण पकड़ कर कहते हैं कि भगवन्! आप आये हैं तो समाज को, सभा को सम्बोधित कीजिए। अष्टावक्र जी बड़े क्रोध से बोले—रे दुष्ट! मैं चमारों की सभा में नहीं जाता। राजा जनक ने कहा, भगवन्! यहाँ पर तो सभी ऋषि बैठे हुए हैं, चमार नहीं हैं। अष्टावक्र ने कहा, नहीं, यह चमारों की सभा है। इतना सुनना था कि जितने ऋषि सभा में बैठे हुए थे, सभी उठ कर खड़े हो गये। उन्होंने कहा, यह तुम कैसे कह सकते हो कि यह चमारों की सभा है? अष्टावक्र ने कहा, चमार किसे कहते हैं? जिसे चमड़े की पहचान हो। तुम सभी मेरे शरीर को देख कर किस पर हँस रहे हो? मेरी हड्डियों पर हँस रहे हो, मटके पर अथवा कुम्हार पर जिसने मुझे बनाया है? इसका उत्तर कौन दे? मटके पर हँस रहे हो या कुम्हार पर, कहने का अभिप्राय मेरे शरीर को देखकर हँस रहे हो या इसके बनाने वाले पर हँस रहे हो? किस पर हँस रहे हो? सभी ऋषि चुप हो गये, शर्म

से सबका सिर नीचे हो गया, क्षमा कीजिए, भूल हो गई। अब भी अगर तुम्हारी समझ में आ गया तो तुम चमार से कम से कम ऊपर तो उठ गये।

मेरे कहने का अभिप्राय है कि जो शरीर में आसक्त है और शरीर में आसक्त होकर जो चमड़े की पूजा करता है, शास्त्रों में उसे चमार कहा गया है। हमारे यहाँ एक रविदास भक्त हुए हैं जो मीरा के गुरु थे। ऐसे ही अनेकों संत हुए हैं जिनके पावन जीवन से दुनिया कृतार्थ हो गई। हमारे यहाँ भगवान् के भक्त की, भगवान् की उपासना की प्रतिष्ठा है। उसमें प्रत्येक व्यक्ति को प्रभु की पूजा करने का अधिकार है। कल मैंने बताया था कि जिस आचार्य से हमारा सम्बन्ध है, जिस परम्परा में हम हैं, वहाँ पर यह विधान है। अयोध्या में आप जाइये, वहाँ पर आपको प्रत्येक जाति का मन्दिर मिलेगा, प्रत्येक जाति का पुजारी मिलेगा। आचार्य रामानन्द ने प्रत्येक जाति को अधिकार दिया था कि तुम अपने भगवान् की पूजा स्वयं कर सकते हो, इसमें किसी प्रकार का भी कोई भेद नहीं है। उसका परिणाम यह हुआ कि जो हिन्दू जाति विघटित हो रही थी, भगवान् से दूर की जा रही थी, धक्के देने पर वह मुसलमान बन रही थी, वह करोड़ों की संख्या में बच गई। हमने अपनी नासमझी से बहुत बड़ा नुकसान किया है। दुनिया का सबसे महान् धर्म, दुनिया का सबसे पुराना धर्म, दुनिया की सबसे महान् वेदान्त की फिलॉस्फी जिसमें एक ब्रह्म के सिवाय और किसी की सत्ता स्वीकार नहीं की गई, आज उसके अनुयायी सारे मिला कर केवल ६० करोड़ लोग हैं। जिन धर्मों के पास कोई अधिकार नहीं है, कोई फिलॉस्फी नहीं है और न इतने बड़े महर्षि वा महापुरुष हैं; उनके धर्मानुयायियों की संख्या देखिए; आज दुनिया में डेढ़ अरब से ऊपर है जो बाईबिल वा ईसाई धर्म को मानने वाले हैं। एक अरब से ऊपर लोग इस्लाम धर्म को मानने वाले हैं। इस्लाम और इसायित के आगे ज़रा हिन्दू धर्म को देखिये। उसकी फिलॉस्फी, उसके वेदान्त को देखिये। उसके अनुयायियों की संख्या एक अरब तो दूर रही केवल ६० करोड़ रह गई है। जिसकी वृद्धि तो क्या बल्कि दिनों-दिन क्षीण हो रही है। भारत के लोग घबरा रहे हैं कि यदि इसी गति से चलते रहे तो एक दिन ऐसा होगा कि भारत में भी हिन्दुओं की संख्या कम हो जायेगी और दूसरे लोग अधिक हो जायेंगे। यह गलती किसकी रही है? हमने अंधविश्वास में पड़ अपने ही भाइयों को धक्का देकर अलग किया और बताया कि हम बड़े हैं तुम छोटे हो। इसका परिणाम भयंकर हुआ। हमने वेद, शास्त्र का अध्ययन किया है। भगवान् की बड़ी कृपा रही है, हम उस ब्राह्मण वंश में पैदा हुए हैं जिसने वेद और धर्म शास्त्रों की रक्षा

की है। आपने कुमारिल भट्ट का नाम सुना होगा वा पढ़ा होगा। भारत या किसी भी देश में रहने वाला हिन्दू इतिहास को जानने वाला, सनातन धर्म और वैदिक इतिहास को जानने वाला कुमारिल भट्ट को जानता होगा। उसी कुमारिल भट्ट के वंश में मैं पैदा हुआ हूँ। मुझे अपने में गौरव है किन्तु फिर भी मैंने अध्ययन करके देखा कि जिन गलतियों से हिन्दू जाति का नाश हुआ है, उन गलतियों को मैं पुनः नहीं दोहराऊँगा और लोगों को सीख दूँगा कि उसे न दोहरायें। अपने बन्धुओं को जो हमारे ही रक्त से सम्बन्धित हैं उनको आत्मसात करने के लिए, उनको उनके स्तर से ऊपर उठाने के लिए हर एक प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए। भारत में अभी एक महात्मा हुए हैं जिनका नाम भक्ति वेदान्त था, उन्होंने ३० हज़ार अमेरिकन को यज्ञोपवीत पहनाकर, सर मुड़वा कर, चोटियाँ रखवा कर, सनातनधर्मी ब्राह्मण बनाया है। आप लोगों ने देखा होगा जो 'हरे कृष्णा हरे रामा' करते हुए घूमते रहते हैं, एक दो को नहीं तीस हज़ार लोगों को शिक्षा दी और संस्कृत का अध्ययन करवाया है। जहाँ-२ पर उनके आश्रम हैं, वहाँ-२ संस्कृत पढ़ाने की पाठशालायें खोल दी हैं। वे अब अपने को वैष्णव और ब्राह्मण कहते हैं। भला आप सोचिए, अपने शुभ कर्मों से जिन्हें हम मलेच्छ वा शूद्र कहते रहे हैं, जिनको भारत में लोग गौ-भक्षक कहते रहे हैं, जिनके पूर्वज गौ मांस के सिवाय कुछ नहीं खाये, यदि वे वैष्णव बन कर पवित्र हो सकते हैं, वे वेद शास्त्र का अध्ययन करके भागवत और गीता का प्रचार कर सकते हैं तो अरे भले आदमी! जो भारत माँ की सन्तान हैं, तुम्हारे रक्त का अंश हैं, वे क्यों नहीं पवित्र वा वैष्णव हो सकते?

हम महाभारत में पढ़ते हैं कि ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण हुए, ब्राह्मण से क्षत्रिय, क्षत्रिय से वैश्य और वैश्य से शूद्र पैदा हुए, ये सब अपने कर्मानुसार एक ही परम्परा से आये हैं। जैसे-२ कर्म बिगड़ते गए वैसे-२ ये नीच होते गए। यदि कर्म से नीच हुए हैं तो देवताओ! उनके कर्म सुन्दर बना कर उन्हें ऊँचा उठाओ। इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है? यदि कोई अपने कर्मों से नीच बन गया तो क्या वह अपने शुभकर्मों से ऊँचा नहीं बन सकता? उसे तुम ऊपर उठा नहीं सकते? हम कब कहते हैं कि तुम उनको ब्राह्मण ही कहो। न, न ब्राह्मण कहने की वा किसी को ब्राह्मण बनने की जरूरत ही क्या है! मेरी राय है कि तुम ब्राह्मण मत बनो, क्षत्रिय मत बनो, वैश्य और शूद्र मत बनो, तुम केवल मनुष्य बनो। पहले तुम मनुष्य बनो, मनुष्य बनने के पश्चात् तुम जो कुछ बन सकते होंगे, वह तुम्हारा कर्म तुम्हें बना देगा। कबीर जुलाहा थे, जीवन भर जुलाहा रहे,

कभी उन्होंने अपने आप को ब्राह्मण नहीं कहा। रविदास चमार थे, जीवन भर चमार रहे, उन्होंने अपने को कभी ब्राह्मण नहीं कहा किन्तु दुनिया में संत के नाते वे पूजे गये। कोई ब्राह्मण बनने के नाते नहीं पूजा जाता, ब्राह्मण बनने से यदि कोई पूज्य होता तो रावण की पूजा सबसे पहले होती। इसलिए मैं आपको बता रहा था कि मैं किसी को ब्राह्मण नहीं बनाता, मेरी चाह है कि प्रत्येक व्यक्ति उत्तम हो, वैष्णव बने। उसके जीवन में सात्त्विकता हो, वह महान् बने, जो नीचे गिरा हुआ हैं वह भी ऊँचा उठे। कोई पूजा-पाठ करने लगे, उससे वह ब्राह्मण बन जायेगा, ऐसा नहीं होता। ब्राह्मण, ब्राह्मण ही होता है। यदि उसके जन्म और कर्म दोनों ही पवित्र हों, सात्त्विक हों, शुद्ध हों तो वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण बनना कोई खेल नहीं है, अनेकों जन्मों की तपस्या होती है तब कोई ब्राह्मण कुल में जन्म लेता हैं और अनेकों जन्मों की तपस्या से ही ब्राह्मण जन्म के साथ शुभ कर्म आते हैं और उन शुभ कर्मों से ही वह ब्रह्म के साथ एकत्व की अनुभूति करता है, जो कोई खेल तमाशा नहीं है। भारत का धर्म-विज्ञान अपने आप में अनुपम एवं अद्वितीय है इसलिए मैं आपको बता रहा था कि यदि समझ ठीक नहीं है तो बावरा जी यहाँ पर कुछ और समझायेंगे, सुनने वाला कुछ और सुनेगा और आगे जाकर कुछ और कहेगा, इसलिए सुनने के लिए तुलसीदास जी ने कहा कि श्रोता को सुमति युक्त होना चाहिए। मैं आप लोगों को जो मूल में बता रहा था, उसको आप समझिये—

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।

श्रोता में सुमति हो अर्थात् सुन्दरमति हो, सुशील माने शीलवान् सदचारी हो, अन्दर-बाहर से पवित्र हो, भगवान् का भक्त हो, भगवद्-चरित्र में उसका अनुराग हो, ये पाँच गुण यदि उसमें हैं तो—

पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥

(रा० ७/६९)

यदि कोई ऐसा है तो ऐसे श्रोता को पाकर जो सज्जन, विद्वान् एवं सन्त हैं, वे गुप्त रहस्य का भी उद्घाटन कर देते हैं। रहस्य के रहस्य को भी छिपाते नहीं, बता देते हैं। यदि श्रोता सुमति युक्त नहीं है तो वह उत्तम बातें नहीं कर सकता, उत्तम बातें नहीं समझ सकता। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि जीवन को धन्य, उज्ज्वल वा महान् बनाने वाला जो क्रम है, वह है इन कानों से पवित्र चरित्र का श्रवण, भगवान् की महिमा का श्रवण, तत्त्व विज्ञान का श्रवण, सत्पुरुषों और विद्वानों के पास बैठकर उनके विचारों का श्रवण। इसके द्वारा आप महान् बनते हैं। ये श्रवण के गुण हैं। श्रवण के मल क्या हैं? दूसरे की निन्दा करना, दूसरे की

बुराई करना। इसके लिए तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है—

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।
पर निंदा सम अघ न गरीसा॥

(रा० ७/१२१-२२)

वे कहते हैं कि अहिंसा से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है और पर-निन्दा से बढ़ कर कोई पाप नहीं है। शास्त्रकार ने एक बात बताई, उन्होंने कहा—जो निन्दा करने वाला है, जानते हो वह क्या होता है? जैसे भंगी के एक हाथ में टोकरी होती है और दूसरे हाथ में झाड़ू होता है। यहाँ पर भंगी दिखाई नहीं देते किन्तु भारत में होते हैं। भंगी जहाँ कहीं कूड़ा देखता है झाड़ू से उठा कर टोकरी में डाल लेता है और टोकरी के भर जाने पर एक गड्ढे में जाकर डाल देता है। यहाँ पर भी ऐसे ही होता है किन्तु उसमें थोड़ा सा अन्तर है। लोग अपने घर से कूड़ा उठा कर बाहर रख देते हैं और सरकार की गाड़ी आती है और वह उठाकर उसमें कूड़े के बैग रखते जाते हैं। गाड़ी उठाकर बाहर फैंक आती है। चाहे टोकरी और झाड़ू हो अथवा मोटर हो, बात एक ही है। जैसे भंगी प्रत्येक घर के दरवाजे का कूड़ा देखते रहते हैं, कहाँ पड़ा हुआ है, उसी प्रकार से जो निन्दक है, वह दूसरे की बुराई देखा करता है और जहाँ भी उसे बुराई दिखाई दी, वहीं पर वह अपनी जिह्वा रूपी झाड़ू से साफ करके अपने मुँह रूपी टोकरी में बन्द कर लेता है और उसको घसीट कर अपने उदर रूपी गड्ढे में डाल लेता है। जब इतनी गन्दगी उसके उदर रूपी गड्ढे में जाएगी तो भला बताओ वहाँ से सुगन्ध आयेगी? नहीं, दुर्गन्ध आयेगी। ऐसे ही निन्दक के पास जो बैठेगा, उसे क्या सुनने को मिलेगा? दुनिया भर की बुराई। शास्त्र कहते हैं कि ऐसे व्यक्तियों को दूर से देखने पर भी पाप लगता है, पास बैठ कर उनकी बात सुनना तो घोर नरक का द्वार है, इसलिए ऐसे लोगों से दूर रहो।

इस प्रकार के लोगों की बातों से, बुराई से, निन्दा से दो प्रकार के शत्रुओं का जन्म होता है जो तुम्हारी बुद्धि को भ्रष्ट करते हैं। वे दो प्रकार के शत्रु मधु और कैटभ हैं अर्थात् काम और क्रोध हैं जिनके विषय में मैं आप लोगों को बता रहा था। जैसे मधु और कैटभ, ये दोनों ब्रह्मा को मारने के लिए दौड़े, ऐसे ही ये काम और क्रोध रूपी दो दानव तुम्हारी बुद्धि रूपी ब्रह्मा को समाप्त करना चाहते हैं। तुम्हारे जीवन में बुद्धि ही ब्रह्मा है क्योंकि ब्रह्मा creative power अर्थात् निर्माणात्मक शक्ति है। तुम सारा निर्माण किससे करते हो? बुद्धि से। यदि बुद्धि है तो सब कुछ हो जायेगा, यदि बुद्धि नहीं है तो राम नाम सत् है अर्थात् यदि

बुद्धि नहीं है तो सर्वनाश है। बुद्धि ही creative power हैं इसलिए वे बुद्धि रूपी ब्रह्मा को मारने के लिए, नष्ट करने के लिए दौड़ते हैं। अब बुद्धि रूपी ब्रह्मा किसकी शरण में जाये? आत्मा की। विष्णु माने व्यापक चेतन सत्ता वा आत्मा। अब बुद्धि आत्मा की शरण ले। वह आत्मा तो सोई हुई है, जब तक इसको जगाया न जाये तब तक कैसे सम्भव हो सकता है? आत्मा को सुलाने वाली कौन हैं? वह आद्या शक्ति भगवती जिसके लिए शास्त्र कहता है—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥

(दुर्गा सप्तशती १/५५-५६)

वह भगवती बड़े-२ ज्ञानियों को पकड़ कर मोह में डाल देती है। वही महामाया, वही चिद् शक्ति, वही वैष्णवी शक्ति इस आत्मा को योग निद्रा में डाले हुए है। बुद्धि रूपी ब्रह्मा उस आद्या शक्ति की आराधना, उपासना वा प्रार्थना करता है कि हे भगवती! तुम निद्रा में पड़े हुए विष्णु रूपी आत्मा को जागृत कर दो। तुम्हारी कृपा से यदि विष्णु रूपी आत्मदेव जागृत हो जायेंगे तब इन मधु और कैटभ का नाश कर देंगे। उस भगवती की कृपा से आत्मदेव जागृत होकर मधु और कैटभ अर्थात् काम और क्रोध का नाश करते हैं।

भगवान् अपनी जंघा पर रख कर मधु और कैटभ का नाश करते हैं। आप जानते हो इसका अभिप्राय क्या है? इसका अभिप्राय यह है कि काम और क्रोध, ये दोनों कहीं बाहर से नहीं आये हैं, अपने अन्दर से ही प्रकट होते हैं। ये विष्णु के कान से पैदा हुए अपने ही मल हैं, जो अपने ही मल हैं, उनको अस्त्र-शस्त्र से नहीं मारा जा सकता, उनसे लड़ कर उन्हें मारा नहीं जा सकता बल्कि उनका वैज्ञानिक ढंग से वध किया जाता है। उनको आत्मसात किया जाता है, उनका दमन किया जाता है। वे अपनी मृत्यु से ही मरते हैं वा इच्छा से ही मरते हैं। देवी भागवत में बताया गया कि मरने के बाद मधु और कैटभ के शरीर से ही यह मेदिनी बनी है, यह प्रकृति उन्हीं से बनी है। जब हम काम और क्रोध को मारते हैं, मारते माने आत्मसात करते हैं, परिवर्तन करते हैं तो उन्हीं के ऊपर हम खड़े हो जाते हैं। काम ही अभिलाषा के रूप में और क्रोध तेज के रूप में परिणत हो जाता है। दुनिया के वैभव की कामना भी कामना है और स्वयं को महान् बनाने की कामना भी कामना है, भगवद् प्राप्ति की कामना भी कामना है और मोक्ष वा ब्रह्म प्राप्ति की कामना भी कामना है। यह कौन सी कामना है? कामना वही है, उसी को जब हम परिवर्तित करते हैं तो वह संसार की ओर से मुड़ कर

परमात्मा की ओर हो जाती है। वही क्रोध जो हमारे जीवन में पतन का कारण था, उसी क्रोध को जब हम परिवर्तित करते हैं तो वह तेज बन जाता है। जिसके जीवन में तेज है, जिसके जीवन में अभिलाषा है, जिसके जीवन में Higher ambition, है वही दुनिया में महान् बनता है और वही दुनिया का विजेता बनता है। यह Higher ambition और तेज दोनों कहाँ से आते हैं? इसी जीवन से आते हैं। इन्हीं की विकृत्तियाँ काम और क्रोध रूप में परिणत हो जाती हैं, इन्हीं को जब हम परिवर्तित कर देते हैं तो हमारे हृदय में अभीप्सा, एम्बीशन और तेज बन जाते हैं। इसलिए शास्त्रकारों ने हमें समझाया है कि अपने जीवन को उस भगवती की आराधना करके परिवर्तित करो। पतन की ओर से उत्थान की दिशा में लाओ। यह मधु और कैटभ की कहानी उस महामाया की महिमा का बोध कराती है। उसके माध्यम से मैंने आपको ब्रह्मा और विष्णु का जो संवाद सुनाया है, इसका सारांश यही है कि हमें चाहिए कि हम उस अनन्त शक्ति अचिन्त्य महिमामयी जगदम्बा के महत्त्व को समझें और बुद्धि रूपी ब्रह्मा को उसकी तरफ लगायें। उससे प्रार्थना करके सोये हुए आत्मा रूपी विष्णु को जागृत करें। काम और क्रोध रूपी मधु-कैटभ को परिवर्तित करके, उनका पूर्ण रूप से अतिक्रमण करके, सद्विचार पर अपने जीवन की इमारत खड़ी करें, यह इसका रहस्य है, जो मैंने आज आप लोगों को समझाया है। मुझे विश्वास है कि इस कथा से आप लोग नई प्रेरणा लेंगे और इस रहस्य को जान करके अपने आप को उत्तम दिशा में प्रेरित करेंगे। इत्यलम्

हरि ॐ तत्सत्।

३

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् का मंगलमय विधान आप सभी के लिए कल्याणकारी हो, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना है! हमारे यज्ञ का आज तीसरा दिन है, आप लोगों को कल बहुत सी बातें समझाई गई थीं। परमात्मा की पराशक्ति और उसकी आराधना जीव के कल्याण का हेतु है। सृष्टि के सभी प्राणी एक ही माँ की सन्तान हैं, माँ उन्हीं बच्चों को अधिक प्यार करती है जो उसकी निर्बल, अबोध और छोटी सन्तानों को संभालते हैं। जो प्राप्त शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता के द्वारा अपने से अयोग्य, असमर्थ, अबुध बन्धुओं की सम्भाल नहीं करते, वे उन करुणामयी माँ के कृपापात्र नहीं बन सकते। देवी भागवत से यही हमें सीख मिलती है।

महाप्रलय के समय जब सर्वत्र जल ही जल हो गया, एक वट के पत्ते पर भगवान् विष्णु बालमुकुन्द रूप में विराजित थे। उस समय व्यासदेव लिखते हैं कि—

करार्विन्देन पदार्विन्दं विनिवेशियन्तम्।
बटस्य पत्रस्य पुटाश्यानं बालमुकुन्दं शिरसा नमामि॥

भगवान् बालमुकुन्द अपने दोनों हाथों से अपने दाहिने पाँव को पकड़ कर अपने ही अंगूठे को मुँह में डालकर चूस रहे हैं। आप लोगों ने चित्र देखा होगा कि एक वट के पत्ते पर भगवान् विष्णु शिशु रूप में सोये हुए हैं। इसी प्रकार से 'करार्विन्देन पदार्विन्दं'

अपने दोनों हाथों से अपने दाहिने चरण को पकड़ करके ''मुखारविंदं विनिवेशियन्तम्'' दाहिने पाँव के अंगूठे को अपने मुँह में डाल करके चूसते हुए ''वटस्य पत्रस्य पुटाश्यानं'' उस वट के, बरगद के पत्ते के ऊपर सो रहे हैं। व्यास जी कहते हैं कि ऐसे बालमुकुन्द को मैं प्रणाम करता हूँ।

देवी भागवत में प्रसंग आता है कि बालमुकुन्द उस पत्ते पर सोये हुए थे। इतने में ही उनमें यह विचार जागृत हुआ कि चारों ओर अगाध जल है, सृष्टि में जल के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा। यहाँ मैं अकेला कैसे पड़ा हूँ? क्यां पड़ा हूँ? इस संकल्प के साथ ही थोड़ी देर बाद देखा, उनकी नाभि से एक कमल निकला और उसमें से ब्रह्मा जी प्रकट हो गये। उसके बाद देखा, ब्रह्मा की भौहों से भगवान् शिव प्रकट हो गए। त्रिदेव आपस में बैठे विचार कर रहे थे कि आखिर यह लीला किसकी है? कौन ऐसी शक्ति है जिसने सर्वत्र जल में क्रमशः हम तीनों की रचना की है। विचार कर ही रहे थे कि इतने में एक विमान वहाँ आया और साथ में आकाशवाणी हुई कि तुम तीनों इस विमान में बैठ जाओ। तीनों उस विमान में बैठ गये और विमान अज्ञात लोक में चला गया। इस ब्रह्माण्ड को छोड़कर किसी अन्य ब्रह्माण्ड में पहुँचा, वहाँ देखा एक महान् सुन्दर लोक बना हुआ है और उस लोक में दूसरे ब्रह्मा विराजमान हैं। उस लोक के ब्रह्मदेव को देख करके यह ब्रह्मदेव आश्चर्य में पड़ गए कि यह कौन है? हम कहाँ पहुँच गए? विमान वहाँ रुका नहीं, आगे बढ़ा। अन्य दिव्यधाम में पहुँचा। सुन्दर कैलाश है, कैलाश पर भगवान् शंकर विराजमान हैं। जो शंकर विमान में बैठे थे, उन्होंने देखा कि यहाँ दूसरा शंकर कौन है? अभी वे सोच ही रहे थे क़ि विमान वहाँ से भी चल पड़ा। आगे गया विशाल बैकुण्ठ में पहुँच गया, वहाँ पर देखा कि श्रीमन् नारायण शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये विराजमान थे। विमान में बैठे विष्णु विचार करने लगे कि यह तो विष्णुलोक है, यह दूसरा विष्णु कौन है? विमान वहाँ से ब्रह्मलोक, शिवलोक और विष्णुलोक को पार करके आगे गया। विमान एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया जहाँ का सब कुछ अद्भुत और दिव्य था, उन तीनों लोकों से भी अत्यन्त सुन्दर एवं रमणीय, उनसे भी महान् तेजोमय था। उसमें एक सिंहासन था। जिस पर एक देवी विराजमान थी। विमान वहाँ जाकर रुक गया, धीरे से तीनों देव उतर गये और विचार करने लगे कि हम लोग कहाँ आये हैं? यह देवी कौन है? आकाशवाणी हुई, तुम लोग घबराओ नहीं, तुम्हारे जैसे अनन्त ब्रह्मा, अनन्त शिव और अनन्त विष्णु जिससे प्रकट होते हैं, वही भगवती जगदम्बा तुम्हारे सामने विराजित है।

तीनों देव पास जाकर स्तुति करने लगे, हे जगदम्बिके! तुम्हारी महिमा अपार है, हम लोग तो उस महाप्रलय के जल में केवल अपने को देखकर यही समझते थे कि हम लोग ही सब कुछ हैं। किन्तु तुम्हारे द्वारा रचित प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, महेश को देखकर हमें यह बोध हो गया कि अनन्त ब्रह्माण्डों में जो अनन्त ब्रह्मा, अनन्त विष्णु और अनन्त शिव हैं, वे सब तुम्हारी माया के ही प्रकाश हैं। भगवती दया करके हम लोगों को अपने स्वरूप का बोध कराओ। त्रिदेवों की प्रार्थना सुनकर भगवती कहती है—त्रिदेवो! मैं ब्राह्मी शक्ति हूँ, मैं ब्रह्म रूप हूँ, मैं ही स्वयं के प्रताप से तुम त्रिदेवों के रूप में प्रकट होती हूँ। मेरे द्वारा ही अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न किये जाते हैं और मेरे द्वारा ही अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना होती है। मेरे द्वारा ही शक्ति प्राप्त करके ब्रह्मा सृष्टि करेंगे, विष्णु पालन करेंगे और शिव संहार करेंगे। मैं तुम सब की माँ हूँ, सबकी पराशक्ति हूँ। भगवती के इस कथन पर त्रिदेवों ने पूछा—भगवती! हम समझ नहीं पाये कि तुम स्वयं स्त्री हो या पुरुष? भगवती कहती है, मैं स्त्री नहीं, मैं पुरुष नहीं, मैं स्वयं स्त्री और पुरुष दोनों रूप में प्रकट होती हूँ। त्रिदेव अपने आपको देखते हैं कि पहले तो वे देव रूप में थे किन्तु अब अपने आपको स्त्री रूप में देख रहे हैं। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि अभी-२ तो हम लोग पुरुष रूप में थे, यह क्या हो गया! अब वे देखते हैं कि जो विष्णु थे वह विष्णु नहीं हैं, वह महालक्ष्मी है, जो शिव थे, वह शिव नहीं है वहाँ शिवा है, जो ब्रह्मा थे वहाँ ब्रह्मा नहीं हैं, वहाँ सरस्वती है। अपने आपको उन तीनों देवियों के रूप में देखकर तीनो देव आश्चर्यचकित होकर भगवती की स्तुति करने लगे। भगवती तुम ही सर्वत्र हो, सत्य है, तुम्हारी शक्ति के अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड में कुछ नहीं है। भगवंती अपने अंश से तीनों शक्तियों को प्रकट करके उन्हें त्रिदेवों के साथ विदा करती है। तुम तीनों जाकर अपने-२ काम में प्रवृत्त होवो और जब कभी मेरी जरूरत पड़े तो मुझे याद कर लेना, मैं प्रकट होकर तुम्हारी सहायता करूँगी। उस पराम्बा भगवती के कृपा प्रसाद को प्राप्त कर वे त्रिदेव लौट आये। थोड़ी देर बाद वे देखते हैं कि वे उसी स्थान पर हैं जहाँ से विमान में बैठ करके गये थे। वे त्रिदेव अपने-२ ब्रह्माण्ड में, जिस ब्रह्माण्ड में उनका आविर्भाव हुआ था, उस में सृष्टि, पालन और प्रलय का कार्य करने लगे।

देवी भागवत के इस प्रसंग से हमें उस परब्रह्म परमात्मा और उसकी पराशक्ति का बोध होता है। हम इन कथाओं के द्वारा यह समझ पाते हैं कि शाश्वत सनातन धर्म के सिद्धान्तानुसार यहाँ "एकमैवाद्वितीय" एक ही अद्वितीय

शक्ति है, वही पुरुष है, वही स्त्री है, वही नर है, वही नारी है, वही जड़ है, वही चेतन है, उसके सिवाय यहाँ भेद के लिए कोई स्थान नहीं है। अनेक रूपों में, अनेक नामों में उसी शक्ति का प्राकट्य होता है, उसी शक्ति का आविर्भाव होता है, उसकी महिमा अचिन्त्य है। ऋषि उस पराशक्ति का बोध कराते हुए व्यासदेव से कहते हैं कि तुम उसी महिमामयी माँ की आराधना वा उपासना करो। उसकी आराधना करने से तुम्हारा कल्याण होगा, तुम्हारा हित होगा। उसी प्रसंग में एक कथा और सुनाते हैं, उस महामाया की उपासना करके ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने खोये हुए राज्य और सीता को प्राप्त किये। इस बात को सुन करके व्यासदेव पूछते हैं कि भगवन्! यह भी कथा मुझे समझाइये। राम तो स्वयं श्रीमन्नारायण के अवतार हैं, उनको भगवती की उपासना की क्या आवश्यकता पड़ी?

आगे कथा सुनाते हैं कि भगवान् राम सीता हरण के पश्चात् अरण्यक वन में सीता को ढूँढते हुए आगे बढ़े। भक्तिमति शबरी के आश्रम में जाते हैं, शबरी ने कहा—राघव! तुम पम्पापुर में जाओ। वहाँ पर सुग्रीव से तुम्हारी मित्रता होगी और वह सीता को खोजने में तुम्हारी सहायता करेगा। भगवान् राम आगे बढ़ते हैं, भक्तप्रवर हनुमान मिलते हैं और ले जाकर सुग्रीव से मित्रता करवाते हैं। बालि का वध करने के पश्चात् भगवान् राम प्रवर्षण गिरि पर्वत पर विश्राम करते हैं, इतने में शरद ऋतु आ जाती है। महात्मा नारद वहाँ प्रकट होते हैं। भगवान् राम महात्मा नारद से पूछते हैं, भगवन्! आपको पता है मेरी परम प्रिय प्रेयसी सीता का हरण हो गया है। मैं इस समय ऋषिमूक पर्वत पर हूँ, मेरे साथ मेरा भाई है। सीता को ढूँढने के लिए मैंने सुग्रीव से मित्रता की है, अभी तक उसने कुछ पता नहीं दिया। हमारे लिए क्या करणीय है? महात्मा नारद कहते हैं, राम! मैं जानता हूँ, तुम स्वयं परमात्मा श्रीमन् नारायण के अवतार हो। दुनिया में नर लीला करने के लिए, लोगों को समझाने के लिए, बताने के लिए अनेक प्रकार के चरित्र कर रहे हो। इसी चरित्र में तुम्हें भगवती की आराधना करनी होगी। जो भी विजय का इच्छुक हो, इस संसार में अपने खोये हुए अधिकार को, खोई हुई शक्ति को प्राप्त करना चाहता हो, वह उस महामाया की आराधना करे, वह माया ही शक्ति स्वरूपा है। भगवान् राम पूछते हैं—ऋषिवर! मैं किस प्रकार भगवती की आराधना करूँ? नारद जी कहते हैं, शरद ऋतु आ रही है। शरद ऋतु के आश्विन महीने के शुक्ल पक्ष में नौ दिन जो नवरात्रि का व्रत करता है और नौ दिन भगवती की आराधना करता है, उसके लिए दुनिया में कोई अलभ्य तत्त्व नहीं रह जाता, उसके लिए ऐसा कुछ नहीं रहता, जिसको वह प्राप्त न कर सके

क्योंकि करुणामयी माँ, पराम्बा, भगवती स्वयं कृपा करती है। दुर्गा सप्तशती में भी बताया गया—"शरद काले महापूजा" शरद काल की नवरात्रि में भगवती की महापूजा होती है।

हमारे यहाँ शास्त्रों में चार नवरात्रि बताये गये हैं। आश्विन महीने की नवरात्रि शरद ऋतु में होती है। आश्विन महीने को हमारे यहाँ कुवार मास कहते हैं। कुवार मास की शुक्ल पक्ष की नवरात्रि प्रतिपदा से शुरु हो करके नवमी तक होती है। उसके व्रत का विधान है। अमावस्या के दिन से व्रत की तैयारी करनी चाहिए। अमावस्या के दिन केवल एक बार आहार लेना चाहिए। रात्रि में आहार न ले, पृथ्वी पर सोये, ब्रह्मचर्य का पालन करे, एकाहार, निराहार, सदाचार जिस प्रकार से उससे रहा जाये, व्रत का पालन करे। प्रतिपदा के दिन एक कन्या, द्वितीया को दो, तृतीया को तीन, इसी प्रकार से नवमी को नौ कन्याओं का क्रमश: पूजन करके भोजन कराये, नवरात्रि के व्रत में कुंवारी पूजन का बड़ा महत्त्व है। कुंवारी पूजन माने नौ वर्ष की कन्या वा नौ वर्ष से छोटी कन्या होनी चाहिए, इससे बड़ी नहीं। उसमें दो वर्ष से लेकर नौ वर्ष की कन्या के पूजन का विधान हैं। जिस प्रकार की कामना हो, उसी प्रकार से पूजन करना चाहिए। मोक्ष की कामना वाले को नौ वर्ष की कन्या का पूजन करना चाहिए। कन्याओं के विषय में बताया गया है कि उनकी आयु नौ वर्ष तक होनी चाहिए, दसवें वर्ष की नहीं होनी चाहिए क्योंकि दस वर्ष की कन्या पूर्ण रूप से पूजा के पात्र नहीं रह जाती। उस जगदम्बा माँ की पूजा, आराधना और रात्रि का जागरण करना चाहिए। भगवती की महिमा का गान करते हुए, उसके चरित्र का वर्णन करते हुए एवं गीत और नृत्य के द्वारा उसकी आराधना करते हुए इस प्रकार से जो नौ दिन का व्रत करता है, नवार्ण मन्त्र का जाप करते हुए जो नवमी को विशेष रूप से यज्ञादि के द्वारा भगवती को तृप्त करता है, वह भगवती की कृपा का पात्र बनता है। नारद के उपदेशानुसार भगवान् राम नौ दिन के नवरात्रि का व्रत एवं भगवती की आराधना करते हैं। उसका परिणाम होता है कि नवमी के दिन भगवती प्रकट होकर श्रीराम को वरदान देती हुई कहती है कि राघव! तुम स्वयं सर्वज्ञ हो, सब कुछ जानते हो किन्तु लोकदृष्टि से, लोक-कल्याण के लिए, मानव को प्रेरित करने के लिए तुमने मेरी जो आराधना की है, इसके लिए मैं तुम्हें वरदान देती हूँ। आज से जो प्राणी तुम्हारी इस विधि का अनुसरण करके मेरी आराधना करेगा, वह मेरी कृपा का पात्र बनेगा। फिर विजयदशमी के दिन भगवान् राम विजय के लिए प्रस्थान करते हैं और उसका परिणाम होता है रावण

का विनाश, सीता की प्राप्ति, पुन: अयोध्या में आकर राज्यासीन होना।

यह देवीभागवत में आता है कि भगवान् राम पहले चैत्र के नवरात्रों में आराधना करते हैं और बाद में आश्विन की नवरात्रि का व्रत करके, भगवती की आराधना करके फिर रावण का वध करते हैं। इन दोनों नवरात्रि में भगवान् राम ने भगवती की आराधना की। आश्विन की नवरात्रि शरद ऋतु की और दूसरी चैत्र की नवरात्रि हैं। ये दो नवरात्रि प्रत्यक्ष हैं जिसमें मानव आराधना करता है। दो नवरात्रियाँ गुप्त हैं, एक अषाढ़ और दूसरी माघ की, इसमें सिद्ध लोग, देव लोग भगवती की आराधना करते हैं। वैसे चार नवरात्रियाँ होती हैं, इन चारों में महामाया पराशक्ति की उपासना होती है। उसकी उपासना के लिए और भी दो श्रेष्ठ दिन हैं जो प्रत्येक मास में आते हैं, अष्टमी और चतुर्दशी। प्रत्येक मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी, ये दोनों दिन भगवती की आराधना के हैं। इसमें बताया गया है कि अष्टमी वा चतुर्दशी के दिन भक्ति भाव से प्रेरित होकर के "ददाति प्रति गृह्णाति", जो कुछ अपने पास हो हृदय से प्रार्थना करते हुए भगवती को समर्पित कर दें। दुर्गा सप्तशती में ऐसा क्रम समझाया गया है कि अपना जो कुछ है हमारा नहीं है, माँ सब तेरा है और बदले में भगवती का प्रसाद समझकर उस सब कुछ को संभाल कर उसका प्रयोग करें। जो इस प्रकार का आचरण करता है, वह भगवती की कृपा का पात्र बनता है। अष्टमी वा चतुर्दशी को इस प्रकार की भावना से भावित होकर रात्रि में भगवती की स्तुति वा प्रार्थना करते हुए यह निश्चय करें कि हे भगवती! शरीर से लेकर परिवार तक जो कुछ हमारे पास सम्पत्ति, ऐश्वर्य आदि है सब कुछ तुम्हारा है, ऐसा हृदय में भाव करते हुए माँ को समर्पित करके, बाद में उसे प्रसाद रूप में ग्रहण करके लोक हित के लिए प्रयोग करें, यह भगवती को प्रसन्न करने का दूसरा तरीका बताया गया है।

यहाँ पर एक बात और आप लोगों को समझा दें, भगवती के प्रति समर्पण की जो भावना है वह भी एक प्रकार की व्यवहारिक है। वैसे तो न अपना कुछ है और न अपन समर्पित कर सकते हैं। सर्वरूप में भगवती है, उसमें अपना क्या है जिसे हमने समर्पित करना है। आप ज़रा विचार कीजिये, जब सर्वरूप में भगवती है, उसके सिवाय कुछ है ही नहीं पृथ्वी से लेकर ब्रह्म तक, स्थूल से लेकर सूक्ष्म, कारण तक तो उसे क्या समर्पित करें?

सर्वरूपमयी देवी सर्व देवीमयं जगत्।

सर्व रूपों में देवी प्रकट है और यह सारा विश्व देवीमय है। जब यह सिद्ध है, इसमें हमारा अपना क्या है जो हम देवी को समर्पित करें और फिर प्रसाद समझ

कर ग्रहण करें। जैसे एक छोटे से अबोध बालक के हाथ में कोई मीठा हो, कोई खिलौना हो, कोई भी वस्तु हो और माँ उसे कहे—देखो, मैं आँख बन्द करती हूँ, मेरा लाल मेरे को खिलौना देगा। बच्चा माँ को खिलौना देता है तो माँ खूब प्यार करती है, चूमती है और कहती है—वाह रे मेरे लाल, वाह रे मेरे बेटे! तू बहुत उदार है। बेटे ने कोई अपनी वस्तु दी या बेटे के पास कुछ अपना था जो माँ को दिया? बेटे के पास जो कुछ था वह माँ का ही दिया हुआ था, केवल बेटे के हृदय की भावना को देखने के लिए माँ ने उसके सामने हाथ फैलाया। जैसे एक छोटे बालक के साथ सामान्य माँ क्रीड़ा किया करती है और उस बालक की उदारता और भावना को देखकर माँ प्रसन्न हो जाती है वैसे ही वह महामाया भगवती, जिसके पास जो कुछ है सर्वरूप में उसी का दिया हुआ है और सर्वरूप में वही है किन्तु फिर भी वह अपनी लीलामय सृष्टि में देखती है कि कौन सा बालक उसके दिए हुए को उसे समर्पित कर रहा है। कौन सा ऐसा बालक है जो उसके दिए हुए को अहं भाव से पकड़े हुए है। नहीं, नहीं यह तो हम किसी को नहीं देंगे, यह तो मेरा ही है। आप देखते नहीं, यदि बालक के पास कोई वस्तु है और उसने माँ के माँगने पर दे दिया और दूसरे बहन-भाईयों के माँगने पर इन्कार कर देता है तो माँ दो चाँटे ऊपर से मारकर, उससे जबरदस्ती छीन लेती है कि तेरा कैसे है? यही गति जीवों की होती है, हम अज्ञानतावश, अहं भाव वश, अबोधता वश जब उस भगवती के दिए हुए प्रसाद को अपना समझ लेते हैं, उसमें ममत्व स्थापित कर लेते हैं और सोचते हैं कि मेरे समान और कोई है ही नहीं, यह सब कुछ मेरा ही है तो वह महामाया काल के द्वारा दो थपेड़े मार कर सब कुछ छीन लेती है। बाद में रोने-बिलखने के सिवाय जीव के हाथ में कुछ नहीं आता। इसलिए शास्त्रकारों ने समझाया कि यद्यपि सब कुछ माँ का है फिर भी तुम अपने हृदय की भावना को, उदारता को व्यक्त करने के लिए जो माँ ने तुम्हें दिया है, वह सब कुछ माँ को समर्पित करो। यही बात भगवान् ने गीता में समझाई—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(गीता ३/१०,११)

भगवान् कहते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति ने, परमात्मा ने यज्ञ के साथ प्रजा का निर्माण किया, प्रजा की रचना की और प्रजा को बताया कि यज्ञ के द्वारा

तुम अपना विकास करो, उन्नति करो। यह यज्ञ तुम्हारे लिए कामधुक होगा। कामधुक माने सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु होगी। यज्ञ के द्वारा देवता लोग प्रसन्न होंगे और प्रसन्न हुए देवता कृपा करके तुम्हें अपना सर्वस्व देंगे। देवता को तुम प्रसन्न करो और फिर देवता लोग तुम्हें देंगे, तुम्हें प्रसन्न करेंगे। यही हम देखते हैं कि जो पुत्र पिता को प्रसन्न रखता है, पिता के पास जो कुछ होता है, वह पुत्र को दे देता है। जो शिष्य गुरु को प्रसन्न रखता है, गुरु के पास जो कुछ होता है वह शिष्य को दे देता है, जो पुत्र माँ को प्रसन्न रखता है, तो माँ के पास जो कुछ होता है वह पुत्र को दे देती है, यह सृष्टि का नियम है।

हमारे देश में एक संत हुए हैं, आप लोगों ने उनका नाम सुना होगा। उनका नाम था रामकृष्ण परमहंस। बंगाल के रहने वाले थे, कलकत्ता में उनका आश्रम था, वहीं दक्षिणेश्वर में वह रहा करते थे। उनके बहुत शिष्य थे किन्तु सोलह शिष्य ऐसे थे जो सदा साथ रहा करते थे। संयोगवश उनके गले में कैंसर हो गया। कैंसर हो जाने का परिणाम यह हुआ कि जब डॉक्टरों ने देखा तो कहा कि यह छूत की बीमारी है। जो कोई इनके साथ सदा रहेगा, उसे भी यह बीमारी होने का भय है। इतना सुनकर उनके जो शिष्यगण थे, उनसे दूर हो गये। अब सभी शिष्य अलग कमरे में रहने लगे, गुरु जी को केवल प्रणाम करने को जाया करते थे। रामकृष्ण जी परमहंस का बाल्यावस्था में विवाह हो गया था, उनकी पत्नी शारदा माँ सदैव उनकी सेवा में रहा करती थी, उनकी देखभाल करती थी। उनके एक शिष्य थे नरेन्द्र देव, बाद में उनका नाम पड़ा स्वामी विवेकानन्द। जब गुरु जी के कैंसर का पता चला तो विवेकानन्द वहाँ नहीं थे। जब उनको पता चला कि गुरुदेव बहुत बीमार हैं, सुनकर वह चल पड़े। कुछ दिनों के बाद जब वहाँ पहुँचे तो अपने अन्य गुरु भाइयों को देखा। उनके गुरु भाई सभी संन्यासी थे, महात्मा थे। उनसे पूछा—तुम यहाँ क्या कर रहे हो? ठाकुर कहाँ हैं? वह अपने गुरुदेव को ठाकुर कहा करते थे। शिष्यों ने कहा—अपने कमरे में हैं। उनकी सेवा में कौन है? कहा—उनकी सेवा में तो माँ बैठी हुई है। तुम लोग यहाँ किसलिए बैठे हो? डॉक्टर ने मना किया है, उनको छूत की बीमारी, कैंसर हो गया है। डॉक्टर ने कहा है कि जो उनके पास रहेगा, उसे भी यह बीमारी होने का भय है, इसलिए हम लोग अपने कमरे में रहते हैं। तुम लोग ठाकुर की सेवा नहीं करते? कहने लगे—हम केवल प्रातः-सायं दर्शन करने और प्रणाम करने जाते हैं। यह सुनकर विवेकानन्द को बहुत दुःख हुआ, रोते हुए चल दिए। अरे नालायको! भगवान् को छोड़कर तुम सभी यहाँ बैठे हुए हो, सोच रहे हो कैंसर

हुआ है, छूत की बीमारी है। इतना कहते हुए बड़े दुखित हृदय से अन्दर चले गये।

रामकृष्ण परमहंस के गले में कैंसर था, बात-चीत किया करते थे, जो कोई आता उसे उपदेश दिया करते थे। डॉक्टरों ने उनको बोलने के लिए मना किया था। उन्होंने पूछा यदि मैं बोलूँगा नहीं, तो मरूँगा नहीं? डॉक्टरों ने कहा—नहीं, ऐसा तो नहीं होगा। उन्होंने कहा—यदि बोलने पर भी मुझे मरना है और न बोलने पर भी मरना है तो मैं जितने दिन जी रहा हूँ उतने दिन अपने ज्ञान से लोगों को वंचित क्यों रखूँ? इसलिए तुम्हारी यह राय मैं स्वीकार नहीं करता, मैं तो बोलूँगा और बातचीत करूँगा। डॉक्टरों ने कहा—आपको कष्ट होगा। कहने लगे—कष्ट शरीर को होगा मुझे कहाँ कष्ट होगा? मैं तो जितने दिन हूँ उतने दिन सभी को ज्ञान दूँगा; इसलिए जो कोई उनके पास जाता वे बड़े प्रेम से बातचीत करते। विवेकानन्द अपने भाइयों को झिड़कते हुए आगे बढ़े और गुरुदेव के पास जाकर चरणों में गिर कर रोने लगे—भगवन्! आप इस अवस्था में हो और अकेली माँ आपकी सेवा में है, ये सारे के सारे रोग लगने के भय से दूर बैठे हुए हैं। अपराधी मैं हूँ, जो ऐसी स्थिति में मैं दूर रहा। रोने लगे, रोते हुए चारों ओर देखा। रामकृष्ण को जब बलगम होती तो पास में एक मिट्टी का कूल्हड़ पड़ा हुआ था, उसमें थूकते। विवेकानन्द ने उस पात्र को उठा लिया जो कफ से, बलगम से भरा हुआ था। अपने अन्य गुरु भाईयों से पूछा—कहाँ हैं रोग के किटाणु? इसी में हैं न, यही है जिसके लिए डॉक्टरों ने तुम लोगों को बताया है, जिससे तुम्हें रोग होने का भय है, इसी में हैं न? सभी गुरु भाई देखकर घबराये कि यह क्या कर रहा है। उन्होंने सभी को दिखा कर कहा कि देखो इसमें रोग के किटाणु नहीं, इसमें तो गुरुदेव की कृपा है, ऐसा कह कर उन्होंने सारा बलगम से भरा हुआ पात्र पी लिया। आप ज़रा कल्पना कीजिए! विवेकानन्द कहने लगे—हम देखेंगे, कहाँ से आता है कैंसर। गुरुदेव ने कहा—नरेन्द्र यह क्या कर रहा है? प्रभो! आप कुछ न बोलिए, यह तो आपका प्रसाद है। जब वह पी गए तो गुरुदेव ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा, नरेन्द्र! हाँ भगवन्! कहा, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। अन्य शिष्यों से कहा-तुम लोग चले जाओ। सभी चले गये तो किवाड़ बन्द करवा दिया। उस समय उनके जीवन में जो कुछ था, नरेन्द्र को अपने सामने बैठा कर कहा—मेरी आँख में देख, अपनी सारी शक्ति नरेन्द्र को दे दी। उसके बाद वह नरेन्द्र से विवेकानन्द बने और दुनिया के प्रत्येक देश में जा-जा कर हिन्दू धर्म की ध्वजा फहराई।

मैं आप लोगों यह बता रहा था कि जो पूर्णरूप से समर्पित पुत्र हैं, वे पिता की कृपा के पात्र बनते हैं किन्तु भाव समर्पण का हो। केवल समर्पण के भाव को दृढ़ करने के लिए पुराण में इस बात का सन्देश दिया गया है कि तुम उस करुणामयी माँ को प्रसन्न करने के लिए जिसमें तुम्हारा अहं है,वह उसे समर्पित करो। समर्पित करने के पश्चात् प्रसाद रूप में तुम्हारे पास जो कुछ भी हैं, तुम उसका प्रयोग करो। इससे तुम परम श्रेय को प्राप्त करोगे—

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।

(गीता ३/१०)

गीता में भगवान् कहते हैं कि यह समर्पण की भावना, यह यज्ञात्मक जीवन तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करेगा और तुम महान् बनोगे।

मैं आप लोगों को समझा रहा था कि भगवती के प्रति समर्पण की भावना केवल अबोधता-जन्य है या प्रभु के प्रति समर्पण की भावना भी अबोधता जन्य है। कौन दे? किसको दें? क्या दें? जब उसके सिवाय कोई दूसरा है ही नहीं तो कौन समर्पण करे? किसका समर्पण करे? क्या समर्पण करे? किन्तु फिर भी भक्ति भाव से युक्त हो करके व्यक्ति की वृत्ति को समझने के लिए, जब तक हमारा अहं जीवित है, जब तक हमारा 'मैं' जीवित है, तब तक ये सारी क्रियायें उपयोगी होती हैं। एक बार एक सज्जन मेरे पास आये, उन्होंने कहा कि आप जो मूर्ति पूजा करते हो, समर्पण करते हो, भगवान् को कुछ चढ़ाते हो, इसमें क्या रखा हुआ है? भगवान् तो कण-२ में व्यापक हैं, जो कण-२ में व्यापक है, उसको क्या देना? उसकी क्या पूजा करनी? उन्होंने हमें एक कविता सुनाई, वह भजन गाते थे। उन्होंने कहा, एक संत ने लिखा है—

तुम्हीं बसते हो फूलों में, तुम्हीं बसते हो मूर्ति में।
कहो भगवान् को भगवान् पे कैसे चढ़ाऊँ मैं॥
अजब हैरान हूँ भगवान् तुम्हें कैसे रिझाऊँ मैं॥

मैंने कहा, यह पद तो तुम्हें बहुत जल्दी याद आ गया किन्तु तुम एक पंक्ति मेरी ओर से भी जोड़ लो। बोले वह क्या है? मैंने कहा, जब भोजन करने बैठो तो यह सोचो—

तुम्हीं बसते हो रोटी में, तुम्हीं बसते हो दाँतों में।
कहो भगवान् को भगवान् से कैसे चबाऊँ मैं॥

भगवान् को भगवान् से चबाने की कोई तकलीफ नहीं है, जिस रोटी को तुम खाते हो, उसमें भगवान् हैं कि नहीं हैं? बोले-हैं। जिन दाँतों से चबाते हो, उसमें

भगवान् हैं कि नहीं हैं, बोले वहाँ भी हैं। हमने कहा—अरे भले आदमी, यदि भगवान् से भगवान् को चबाया जा सकता है तो भगवान् को भगवान् पर चढ़ाया क्यों नहीं जा सकता? चढ़ाने की क्या तकलीफ हो रही है? मेरे कहने का अभिप्राय, जो लोग इस प्रकार बातें करते हैं, इस प्रकार के भाव रखते हैं, उनको शास्त्रीय विधान का कुछ बोध नहीं है। वह यह नहीं सोच पाये कि मनुष्य का अहं जब तक है, 'मैं' जब तक है और उस 'मैं' से जुड़ी हुई उसकी दुनिया जब तक है, तब तक वह सर्वरूप में भगवान् है, केवल कहता है, अनुभव नहीं करता। यह बहुत ऊँची अवस्था की बात है, जब सर्वत्र उसे भगवान् दिखाई देने लगे। रामकृष्ण परमहंस के जीवन की घटना है। वह पहले फूल तोड़ कर हार बनाते और भगवती काली को पहना देते थे क्योंकि वह काली की उपासना और पूजा करते थे किन्तु जब उनकी तन्मय अवस्था हो गई तो हार बनाते,मूर्ति को नहीं बल्कि आँख बन्द करके अपने को ही पहना लेते थे। अपने आपको क्यों पहनाते थे? फिर वे अपने आपको भी कालीमय देखने लगे। उसके बाद एक ऐसी अवस्था आई कि जब फूल तोड़ने जाते तो फूल तोड़ते नहीं थे, वह सोचते कि ये तो पहले ही काली पर चढ़े हुए हैं, इनको क्या चढ़ाना। क्या समझे? उनको यह बोध होने लगा कि यह तो पहले ही काली पर चढ़े हुए हैं अर्थात् सर्वरूप में काली का दर्शन होने लगा। इसी रूप से हम रामायण के राम को तुलसी की दृष्टि से देखते हैं। पहले तुलसीदास जी राम को अपने राम के रूप में देखते थे, उस समय राम से प्रार्थना करते थे कि हे प्रभो!

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहों।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहों॥

(वि०प० १०४)

वे कहते थे कि हे प्रभो! मैं इन कानों से किसी और की कीर्ति नहीं सुनूँगा, जिह्वा से राम के सिवाय किसी और की कीर्ति नहीं गाऊँगा और मेरा सिर केवल राम के समक्ष ही झुकेगा, यह उनकी प्रतिज्ञा थी। एक बार तुलसीदास जी मथुरा में पहुँचे, मथुरा में एक संत थे, उनका नाम परशुराम था। द्वारकाधीश के मन्दिर में जब तुलसीदास जी गये तो उन्होंने व्यंग में एक बात कही—

अपने-अपने इष्ट को नमन करे सब कोए।
परशुराम बिन इष्ट को नमय सो मूरख होए॥

उन्होंने कहा, सब अपने-२ इष्ट को नमन करते हैं, इष्ट के समक्ष ही सिर झुकाते हैं, जिसका कोई इष्ट नहीं, यदि उसके सामने सिर झुका दे तो वह नासमझ कहा

जाएगा। तुलसीदास जी मुस्कराये, उन्होंने भगवान् कृष्ण के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—

कहा कहौं छवि आज की भले बिराजे नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे जब धनुषबाण लो हाथ॥

उन्होंने कहा, प्रभो! आज आप बहुत सुन्दर लग रहे हो और मैं आपको प्रणाम कर रहा हूँ, आप बंसी बगल करके ज़रा धनुष-बाण हाथ में ले लो क्योंकि वह राम के पुजारी थे? तुलसीदास जी की प्रार्थना सुनते ही वह मूर्ति जो द्वारकाधीश की थी, राम के रूप में परिवर्तित हो गई।

कित मुरली कित चन्द्रिका कित गोपिन के साथ।
अपने जन के कारणे कृष्ण भए रघुनाथ॥

कृष्ण की मूर्ति में भगवान् राम की मूर्ति प्रकट हो गई, यह अनन्यता थी। किन्तु वही तुलसीदास जो कहते थे कि मैं केवल अपने इष्ट को राम के रूप में देखूँगा, राम का दर्शन करूँगा और राम को ही प्रणाम करूँगा। एक समय ऐसा आया, अब उनका राम एक मूर्ति में नहीं रहा। अब उनके राम केवल धनुषधारी नहीं रहे। वही तुलसीदास जी अपनी रामायण में लिखते हैं—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

(रा० १/७ग)

वह कहते हैं कि मेरा राम केवल चेतन में ही नहीं है, जड़ में भी मेरा राम विद्यमान है—

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा० १/८-१)

वह कहते हैं कि सारा विश्व ही सीता-राममय है। वहाँ पर किसको प्रणाम करें, किसको न करें? किसकी महिमा सुनें, किसकी न सुनें? किसका गान करें और किसका न करें? भेद समाप्त हो गया, सब रूप में उन्हें राम दिखाई देने लगे।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि साधना में जब साधक प्रवृत्त होता है तो उसमें उसका अहं ज़ीवित होता है। जब तक अहं जीवित होता है तब तक उसे सर्वरूप में भगवान् दिखाई नहीं देता और जब तक उसको सर्वरूप में भगवान् दिखाई नहीं देता तब तक उसका एक इष्ट होता है, एक मंत्र होता है और एक गुरु होता है। गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र को इष्ट की उपासना के लिए जाप करता है, उसकी

पूजा करके उसको समर्पित होता है। इस प्रकार की साधना करते-२ उसकी ऊँची अवस्था आ जाती है तो उसी इष्ट का सर्वरूप में दर्शन करने लगता है, ऐसी स्थिति में फिर अब लेना और देना, दोनों समाप्त हो जाते हैं।

एक ऋषि के पास शिष्य गया। शिष्य ने कहा—गुरुदेव! आप हमें तत्त्वज्ञान का उपदेश दीजिए! ऋषि ने कहा, दीक्षा के लिए तो दक्षिणा की जरूरत होती है। तुम दक्षिणा ले आये हो? उसने कहा, गुरुवर! दक्षिणा तो ले आया हूँ, पहले तो आप हमें दीक्षा दीजिए, तत्त्व बोध करवा दीजिए, फिर मैं आपको दक्षिणा दूँ। गुरु मुस्कराये और कहा पगले जब तुम्हें तत्त्वज्ञान हो जाएगा तो न तो मैं गुरु रहूँगा और न तुम शिष्य रहोगे। उस समय कौन दक्षिणा देगा और कौन लेगा? जो देना हो पहले दे दे, बाद में तत्त्वज्ञान की बात करेंगे। इस कहानी से हमें क्या बोध होता है? बोध यह होता है कि एकाएक प्रारम्भ में ही सर्वरूप में परमात्मा दिखाई नहीं देने लगता। परमात्मा सर्वरूप में है, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। यही बात गीता में भगवान् ने समझाई है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि के अनुसार परमात्मा को समझ पाता है, जान पाता है। जिसकी सतोगुणी बुद्धि है वह परमात्मा को सर्वरूप में देखता है, जिसकी रजोगुणी बुद्धि है वह परमात्मा में सबको देखता है, एक में अनेकता को देखता है, जिसकी तमोगुणी बुद्धि है उसके समक्ष भगवान् खड़ा रहे तब भी दिखाई नहीं देता। एक शायर ने लिखा है—

है फर्क कुछ गर नज़र में, तो नज़र आता नहीं।
है बुतों का खौफ जिसको, वह खुदा पाता नहीं॥

जिसकी दृष्टि में मूर्ति दिखाई देती है, उसे भगवान् कहाँ दिखाई देगा और जिसकी भगवद् भावना है, वहाँ मूर्ति नहीं भगवान् दिखाई देता है।

आप लोग जानते हो कि जो लोग आते हैं, वे हाथ जोड़ कर चित्र को प्रणाम करते हैं, फूल चढ़ाते हैं, वे किस दृष्टि से चढ़ाते हैं? क्या वे यह कहते हैं कि हे कागज़ के ऊपर अमुक प्रकार के रंग से, अमुक प्रकार के चित्रकार के द्वारा रचे हुए चित्र रूप भगवान् हम आपको प्रणाम करते हैं? नहीं, ऐसा तो नहीं कहते। हम जब किसी मूर्ति को देखते हैं तो मूर्ति के सामने जाकर क्या कहते हैं? ओ, मकराना के खान से निकले हुए संगमरमर के भगवान्, जयपुर में गढ़े हुए, अमुक तराश के द्वारा तराशे हुए भगवान् मैं आपको प्रणाम करता हूँ। ऐसा कहते हैं? नहीं, हम क्या कहते हैं? यदि भगवान् राम की मूर्ति है तो हम हृदय से

प्रणाम करते हुए कहते हैं—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

(रा० २ श्लोक-३)

हम वहाँ राम को याद करते हैं, हम चित्र को देखकर कागज़ और चित्रकार को नहीं याद करते, रंग को याद नहीं करते, हम प्रभु को याद करते हैं। चित्र में, मूर्ति में, जहाँ भी हमारे सामने भगवान् की छवि आती है वहाँ हम भगवान् को याद करते हैं। क्यों? उस चित्र में हम कलम, स्याही और कागज़ नहीं देखते। मूर्ति में हम पत्थर और तराशने वाले को नहीं देखते, हमें तो भगवान् की छवि दिखाई देती है। ऐसे ही स्थिति होती है जब हमारी और ऊँची अवस्था हो जाती है, इस संसार में हमें संसार दिखाई नहीं देता, हमें भगवान् दिखाई देने लगता है। जब सर्वरूप में भगवान् दीखता है, तब भगवान् को समर्पित करने की बात नहीं रहती। किन्तु जब तक यह स्थिति नहीं आई, जब तक इसका बोध नहीं हुआ, तब समर्पित करने वाला भी है, अभी अहं और समर्पित कराने वाला भी बैठा हुआ है और परमात्मा भी है। इसीलिए हमारे यहाँ सनातन धर्म में तीन प्रकार के सिद्धान्तों को स्वीकार किया जाता है-कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। वेद के ये तीन दृष्टिकोण हैं—कर्मकाण्ड में हम जीव हैं, यह जगत् है और वह जगदीश है। वह कहाँ है? आकाश मण्डल में, सूर्य में बैठा हुआ अर्थात् सूर्य में जगदीश है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

(ईशा० १५)

जीवन का स्रोत तो सूर्य ही है। इस पृथ्वी पर जो जीवन है, वह सूर्य के नाते ही है, यदि सूर्य न हो तो यहाँ पर जीवन भी न हो। कर्मकाण्ड की दृष्टि में त्रैत है, जीव, जगत् और जगदीश! लेकिन जब हम उपासना में चले जाते हैं तो वहाँ तीन नहीं होते, फिर वहाँ दो हो जाते हैं। कौन-२ से?

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवंत।

(रा० ४/३)

''मैं सेवक हूँ और यह चराचर मेरे प्रभु का स्वरूप है'', यहाँ दो रह गये मैं और तुम। जब और ऊँचे पहुँच गये, फिर वहाँ मैं और तुम दोनों नहीं रहे—

न हम हम हैं न तुम तुम हो, न तुम तुम हो न हम हम हैं।
हमीं हम हैं तुम्हीं तुम हो, मगर या हम हैं या तुम हो॥

वहाँ पर मैं और तुम का झगड़ा ही समाप्त हो जाता है। भगवान् गीता में बताते हैं कि ज्ञानी भक्त जो है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६/३०)

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६/३२)

वह अपनी आत्मा के रूप में ही सारे जगत् को देखने लगता है और उस योगी के लिए वहाँ कोई न मैं है, न तू है, न जड़ है, न चेतन है, केवल एक ब्रह्म है। सर्वरूप में ब्रह्म की अनुभूति करना, यह ज्ञान की परम अवस्था है। सर्वरूप में भगवान् हैं और मैं भक्त हूँ, यह उपासना की उत्तम अवस्था है। मैं हूँ, परमात्मा है, जगत् है, ये मेरे कर्म हैं, उनका यह फल है, यह कर्म का दृष्टिकोण है। सनातन धर्म में इन तीनों को स्वीकार किया गया है।

जो लोग अभी निचले स्तर पर हैं, सामान्य स्तर पर हैं, उनके लिए त्रैतवाद है, जो इनसे ऊँचे उठ गए हैं उनके लिए द्वैतवाद और जो वहाँ पहुँचे हुए हैं उनके लिए अद्वैतवाद। देवी भागवत में भी इस प्रकार से समझाया गया है। जहाँ पर सर्वरूप से भगवती दिखाई दे रही है वहाँ अद्वैत है। वहाँ देवी अलग और हम अलग हैं, ऐसा नहीं है। किन्तु जहाँ पर यह स्थिति नहीं आई, जहाँ पर मेरा अपना व्यक्तित्व है वहाँ पर सर्वरूप में देवी है और मैं देवी का पुत्र, भक्त, उसका सेवक हूँ, यह द्वैत की भावना बनी रहती है। जब इससे भी नीचे हैं तो मैं जीव हूँ, यह दुनिया पाप-पुण्य से सनी हुई है और वह पराम्बा आकाश में बैठी हुई है। उस भगवती की आराधना करेंगे तो हमें उत्तम फल मिलेगा। त्रैत भाव की स्थिति, यह निचले स्तर पर रहने वाले लोगों की है, सामान्य स्तर पर रहने वाले जीवों की है। प्रार्थना कहाँ से प्रारम्भ होती है, जानते हो? द्वैत में। त्रैत में साधना नहीं होती, त्रैत में कर्म होता है। इसे पुनः समझिए; त्रैत में साधना नहीं कर्म होता है। त्रैत माने मैं अलग हूँ, ईश्वर अलग है और दुनिया अलग है, यह त्रैत भाव है। हम जैसा करेंगे वैसा भरेंगे, अच्छा करेंगे तो स्वर्ग में जायेंगे और बुरा करेंगे तो नरक में जायेंगे। अच्छे-बुरे का मिश्रण करेंगे तो मर्त्यलोक में जायेंगे, यह

कर्मवाद है। इस कर्मवाद के चक्कर में सारी दुनिया घूम रही है। यह साधना नहीं है, मेरी बात याद रखना।

साधना प्रारम्भ होती है जब हम कर्मवाद से ऊपर उठते हैं तब। कर्मवाद से ऊपर उठकर यह स्वीकार करें कि **''मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।''** मैं सेवक हूँ और यह सारा चराचर जगत् परमात्मा का ही स्वरूप है, यह द्वैतवाद है। द्वैतवाद से ही साधना प्रारम्भ होती है और अद्वैत में जाकर उसका लय हो जाता है। जब हम चलते हैं तो मैं होता हूँ और जब पहुँच जाते हैं तो वहाँ मैं नहीं रहता। यही साधना का स्वरूप है। देवी भागवत में ब्रह्मा, विष्णु, महेश के द्वारा अभी जो चरित्र मैंने आप लोगों को सुनाया, इससे यह पता लगता है कि तीनों देव जहाँ थे वहाँ से जब विमान पर गए तो भिन्न-२ लोकों में जाकर देखा कि वहाँ अलग-२ ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। जब भगवती के सामने चले गये तब देखा कि वे हैं और भगवती है लेकिन जब उसके निकट जाकर पहुँचे तो देखा कि वे तो हैं ही नहीं केवल भगवती है। देवी भागवत में यही बताया गया कि त्रिदेव जब जाते हैं तो उनका पुलिंग अर्थात् पुरुष का रूप समाप्त हो जाता है और देवी रूप में परिणत हो जाते हैं और देखते हैं कि जो भगवती है वही वे हैं। यहाँ द्वैत के लिए स्थान नहीं है और जब अद्वैत की अनुभूति हो जाती है उसके बाद त्रिदेव आ जाते हैं और अपने ब्रह्माण्ड में कार्य करते हैं। इसका रहस्य क्या है, जानते हो? एक बार अद्वैतानुभूति हो जाए, फिर आप अपने कर्त्तव्य को सही रूप में पूरा करेंगे। इस सृष्टि में आप रहते हुए भी उस दिव्य शक्ति में ही रहेंगे। किसी भी अवस्था में, किसी भी स्थिति में रहते हुए आप परमात्मा में ही रहेंगे। भगवान् ने गीता में बताया—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

(गीता ७/१९)

जिसकी ऐसी दृष्टि हो गई है कि सर्वरूप में वासुदेव ही है, उसके सिवाय कोई है नहीं, ऐसा महात्मा दुर्लभ है। इस दुर्लभ पद को प्राप्त करना जीव का लक्ष्य है, जीवन का उद्देश्य है।

इसलिए विभिन्न कथाओं के माध्यम से उस महिमामयी देवी का स्वरूप बताया गया किन्तु एक बात और याद रखिए, साधना में यदि त्रैतभाव रहा, आप कितनी भी कठोर से कठोर साधना करें तब भी आप जीवन के विकास की सीढ़ी पर नहीं चढ़ सकते। उत्तम से उत्तम महापुरुषों के जीवन में भी प्रार्थना करते-२ इस प्रकार के अहं भाव का जागरण हो जाता है, जहाँ से वे अपने स्तर से आगे

नहीं बढ़ पाते। देवी भागवत में भी ऐसी अनेकों कथायें बताई गईं। उच्चतम अवस्था में पहुँचे हुए व्यक्ति के जीवन में भी निकृष्टतम क्रिया में प्रवृत्ति हो जाती है, यदि उनमें अद्वैत भाव की अनुभूति न हो तो। इसी प्रकार की एक कथा देवी भागवत में आती है। आप लोगों को कथा बड़ी विचित्र लगेगी।

एक बार प्रसंग आया कि भगवान् कृष्ण स्वयं श्रीमन्नारायण होकर के द्वापर में यहाँ मर्त्यलोक में अवतार लिए। पूछा गया कि उनकी माँ और पिता के रूप में जो वासुदेव और देवकी हुए, वे कौन थे? कहा—देवकी जो थी वह देवताओं की माँ अदिति थी और वसुदेव जो थे वह देवताओं के पिता कश्यप थे। कश्यप और अदिति को इतना कष्ट और यातना क्यों सहनी पड़ी? इसकी कथा बड़ी दु:खद है। अदिति जेल में रही, वहीं भगवान् का जन्म हुआ और जन्म के साथ ही भगवान् उससे अलग हो गए। जब भगवान् पन्द्रह वर्ष के हुए तो पुन: आए। देवकी विवाह से लेकर जब भगवान् पन्द्रह वर्ष के हुए तब तक जेल में ही पड़ी रही। उसको यह दुर्गति क्यों हुई? वह तो देवताओं की माँ अदिति थी। इतने ऊँचे पहुँच करके उसकी यह गति हुई, इसका कारण क्या? देवी भागवत में इसका कारण बताया गया कि दिति कश्यप मुनि की दूसरी पत्नी थी। आप लोग सुने होंगे कि देवता और दैत्य एक ही बाप की सन्तान हैं।

महात्मा कश्यप मुनि की दो स्त्रियाँ थीं। स्त्रियाँ तो उनकी कई थीं, सभी के अलग-२ सन्तानें हुई लेकिन बड़ी दिति और छोटी पत्नी अदिति थी। दिति से हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप दो पुत्र पैदा हुए और अदिति के बारह पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें सबसे बड़ा इन्द्र था। आप लोगों ने सुना होगा बारह आदित्य कहे जाते हैं। अदिति के बारह पुत्रों में से इन्द्र का तेज देखकर दिति ने अपने पति के चरणों में प्रणाम करके प्रार्थना की—हे प्रभो! आप मुझे ऐसा वरदान दें कि मेरे एक ऐसा पुत्र पैदा हो जो परम तेजस्वी हो, जिसके समान कोई तेजवान् न हो। कश्यप ने कहा—प्रिय! इसके लिए तुम्हें कठोर तप करना होगा। दिति ने कहा—प्रभो! आप जो कुछ भी कहोगे, मैं तप करने के लिए तैयार हूँ। दिति कठोर तप में लग गई, उसने उपासना करके पति को प्रसन्न किया, कश्यप ने वरदान दिया कि तुम्हें एक परम तेजस्वी पुत्र पैदा होगा, इसके बराबर का कोई नहीं होगा। वरदान प्राप्त करके दिति गर्भवती हुई। बालक के गर्भ में आने से उसका तेज चारों ओर फैलने लगा। उसके तेज को देखकर के अदिति को ईर्ष्या हुई। सोचने लगी, मेरी सौत ने अभी जब पुत्र पैदा नहीं किया तभी इतने तेज से युक्त है, जब पुत्र पैदा होगा तो वह कितना तेजस्वी होगा? उसने इन्द्र को बुलाया और कहा—बेटा! तुम्हारी

जो विमाता है, तुम उसको देख रहे हो, वह कितनी तेजस्वी हो गई? माँ! देखता हूँ, क्या बात है? कहा—उसके एक पुत्र होने वाला है। तुम्हारे पिता ने वरदान दिया है कि उसके समान तेजस्वी और कोई नहीं होगा। फिर हमें क्या करना चाहिए? अदिति ने कहा, पुत्र! इस समय तुम जो कर सकते हो, करो। देवताओं में भी कभी-२ इतनी निम्न वृत्ति जागृत होती है। इन्द्र ने कहा—माँ! तुम कृपा करो तो मैं इसके गर्भ को ही नष्ट कर दूँ। गर्भ को कैसे नष्ट करोगे? उसने कहा—तुम कृपा करो तो हम कर देंगे, तुम्हारा आशीर्वाद मिलना चाहिए। अदिति बहुत प्रसन्न हुई, बहुत अच्छा। इन्द्र जाकर अपनी बड़ी माता दिति के चरणों में गिर गया, माँ! क्या बात है, तुम इस समय बड़ी कलान्त, थकी हुई सी रहती हो? दिति ने कहा—पुत्र, क्या बताऊँ? तुम्हें पता है, मेरे सन्तान होने वाली है। ऐसी अवस्था में तो स्वाभाविक है शरीर ढीला हो जाता है, थकान हो जाती है। इन्द्र ने कहा—माँ! यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं तुम्हारी सेवा करूँ, तुम्हारे चरण दबाया करूँ, तुम्हारी परिचर्या किया करूँ? बड़ी माता तो माता से भी श्रेष्ठ होती हैं, सेवा करके मैं तुम्हारी कृपा का पात्र बन जाऊँगा। उसकी मीठी-२ बातों को सुनकर दिति ने कहा—पुत्र! तू तो बड़ा ही योग्य है, बड़ा धर्मात्मा वृत्ति वाला है, भला इससे सुन्दर बात क्या होगी? तुम मेरे साथ रहा करो, दिति ने उसे आज्ञा दे दी।

वह कपटी दिति का पाँव दबाने लगा, सहलाने लगा। उसके द्वारा पाँव दबाते-२ दिति जब सो गई, घोर निद्रा में चली गई तो इन्द्र बड़ा सूक्ष्म रूप धारण कर उसके गर्भ में प्रवेश कर गया। गर्भ में प्रवेश करके, गर्भ का जो बालक था, वह भ्रूण रूप में था, अभी कुछ महीनों का था, इन्द्र ने उसके सात टुकड़े कर दिये। सात टुकड़े करने के बाद इन्द्र ने देखा, उनमें गति थी, अभी ये मरे नहीं। उसके पश्चात् एक-२ टुकड़े के पुनः उसने सात-२ टुकड़े कर दिये। इस प्रकार उसने दिति के गर्भ के उन्नचास टुकड़े कर दिए। उन्नचास टुकड़े करने के बाद वह शीघ्र ही बाहर निकल कर भागा। कहीं ऐसा न हो माँ जाग जाए और मेरे को श्राप दे दे। दिति को जब होश हुआ, उसने देखा—अरे दुष्ट, तुमने यह क्या किया? दिति समझ गई कि यह सारी उसकी माँ की करतूत है। दिति ने जाकर अपने पति से प्रार्थना की कि भगवन्! आप मेरी दशा देखिए। मैंने तो इन्द्र को अपना पुत्र समझ कर उसकी बातों में आकर उसको सेवा का अवसर दिया किन्तु उसने मेरे साथ इतना घोर अन्याय किया। कश्यप मुनि मुस्कराये, उन्होंने कहा—देवि! तुम दुःखी न हो। उसने अपनी तरफ से तो तुम्हारा अहित किया लेकिन भगवान् की बड़ी कृपा थी, तू एक तेजस्वी पुत्र के लिए दुःखी हो रही थी, अब

तुम्हारे उन्नचास तेजस्वी पुत्र होंगे। एक की जगह पर उसने जितने टुकड़े किए हैं उतने तेजस्वी पुत्र होंगे। ये पुत्र इतने महान् होंगे कि ये देवताओं से भी ऊपर रहेंगे और इनको यज्ञ का भाग मिलेगा। इनको मारा गया है, मारने पर वे मरे नहीं बल्कि वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिए उनका नाम होगा मरुत्। आप लोग पढ़ते होंगे—**'मरुतो देवता।'** कश्यप ने उस समय अदिति को श्राप दिया, अपनी ही बहन, जो तुम्हारी बड़ी बहन के समान है, उसके साथ मानवी की तरह ईर्ष्या करके धोखा दिया, इसलिए तुम पतित होकर मर्त्यलोक में जाकर मानवी हो जाओ। जैसे तुमने इसके पुत्र के सात टुकड़े करवाये हैं ऐसे ही तुम्हारी भी सात सन्तानें तुम्हारे देखते-२ नष्ट हो जायेंगी। इतना घोर श्राप मिलने पर अदिति बहुत दुःखी होकर पति के चरणों में गिर कर प्रार्थना करने लगी, प्रभो! आपको छोड़कर में कहीं नहीं जा सकती। उन्होंने कहा—तुम शक्ति हो और मैं तुम्हारा शक्तिमान हूँ इसलिए मैं भी अंश रूप से वसुदेव के रूप में वहाँ अवतरित होऊँगा और तुम्हारे साथ मैं भी रहूँगा। तुम्हारे सात पुत्र नष्ट तो हो जायेंगे लेकिन भगवान् की उपासना करने से भगवान् स्वयं पुत्र रूप में तुम्हारे यहाँ अवतरित होंगे। भागवत में आया, उस श्राप के बदले अदिति को देवकी के रूप में जन्म लेना पड़ा। देवकी के रूप में जन्म ले करके उसे अपने पति के साथ कारागार में रहना पड़ा और उसके सात पुत्र कंस द्वारा नष्ट कर दिये गये। आठवें पुत्र के रूप में भगवान् का अवतार हुआ लेकिन भगवान् का भी वह प्यार नहीं प्राप्त कर सकी। पन्द्रह वर्ष की आयु तक भगवान् उससे दूर रहे। कभी-२ जो देव आत्माएँ हैं उनमें भी हम ईर्ष्या और द्वेष देखते हैं क्योंकि देव आत्माएँ गुणातीत नहीं हैं, यह बात याद रखना। गीता में भगवान् का कथन है—

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥

(गीता १४/१७-१८)

सतोगुणी देवता गुणातीत नहीं हैं, ये सतोगुण के अधिपति हैं और रजोगुणी देवता गुणातीत नहीं और तमोगुणी तो गुणातीत हैं ही नहीं। गुणातीत तो इन तीनों से परे होता है। गुणातीत के विषय में गीता में बताया गया है कि जो उस परब्रह्म परमात्मा की अनन्य भक्ति करता है, वह गुणातीत होता है। गुणातीत होने के लिए देव योनि से भी ऊपर जाना होगा। इन्द्रादि देवता तो इस सृष्टि के चक्र

में हैं, वे चक्र से मुक्त नहीं हैं। गुणातीत वह होता है जो चक्र से मुक्त हो जाता है, इससे परे हो जाता है। इसलिए गीता में बार-२ बताया गया—

त्रैगण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

(गीता २/४५)

भगवान् अर्जुन से कहते हैं—अर्जुन! ये वेद तो तीनों गुणों में वर्तने वाले हैं, तूँ इनसे परे हो जा अर्थात् गुणातीत हो जा। जो गुणातीत नहीं होगा वह मोक्ष को, कल्याण को प्राप्त नहीं कर सकता। गुणातीत होने के लिए इस सामान्य स्तर से ऊपर उठना होगा। हम देखते हैं कि सतोगुण में रहने वाले देवता भी ईर्ष्यालु हो जाते हैं। इसलिए ऋषियों ने कहा कि जो देवलोक को प्राप्त करते हैं, वे भी पुण्य क्षीण होने पर पुनः इस मर्त्यलोक में पहुँच जाते हैं। गीता के नवें अध्याय में भगवान् ने बताया—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

(गीता ९/२१)

जो लोग पुण्य के बल से देवलोक में चले जाते हैं वहाँ अपने भोग को भोग करके पुनः इस मर्त्यलोक, पृथ्वी लोक में आ जाते हैं। कहाँ तक गया हुआ जीव पुनः वापिस आता है? भगवान् कहते हैं—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

(गीता ८/१६)

ब्रह्मलोक, प्रजापति के लोक तक गया हुआ जीव पुनः मर्त्यलोक में आ जाता है। "**मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते**" 'जो मेरे को नहीं पाते उन्हीं की अधम गति होती है लेकिन जो मेरे को प्राप्त कर लेते हैं उनकी पुनः अधोगति नहीं होती, उनको पुनः संसार में आना नहीं पड़ता।'

इसलिए मैं आप लोगों को समझा रहा था कि वह महामाया भगवती जो तीनों गुणों की अधिष्ठात्री देवी है, वह गुणमयी नहीं गुणातीत है, उसकी आराधना करने से ही इन तीनों गुणों से पार जाया जा सकता है और कोई साधन नहीं है। गीता में भगवान् ने बताया—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७/१४)

जो ब्राह्मी शक्ति की शरण लेता है, परब्रह्म परमात्मा की शरण लेता है, वही

त्रिगुणात्मिका शक्ति से, जगत् के इस प्रपंच से मुक्त होता है अन्यथा इन्द्रादि देवता तो तीनों गुणों में रमने वाले हैं और उनमें इन तीनों गुणों का प्रभुत्व रहता है। इसलिए इन तीनों गुणों के अनुसार उनमें ईर्ष्या, द्वेष, कामना, वासना आदि के कारण उत्तम और मध्यम दोनों प्रकार के चरित्र होते हैं अर्थात् उनके जीवन में दो प्रकार की क्रियायें होती रहती हैं। इसलिए देवी भागवत की इन कथाओं से हमें यह बोध होता हैं कि जब इन्द्रादि देवताओं में भी वासनावश द्वेष आ जाता है तो हमें सावधान रहना चाहिए। कुछ लोग सोचते हैं कि यदि इन्द्रादि देवता पतित हो गए तो हम यदि पतित हो जायेंगे तो कौन बड़ी बात हैं! इन कथाओं का यह अभिप्राय नहीं कि अगर वे पतित हुए हैं तो तुम भी पतित हो जाओ? इन कथाओं का अभिप्राय यह है कि तुम मनुष्य हो इसलिए सावधान रहो, सतर्क रहो। देवता तुम्हारे आराध्य नहीं तुम देवताओं से भी श्रेष्ठ हो सकते हो क्योंकि देवयोनि तो भोग योनि हैं इसलिए तुम जहाँ हो वहाँ तुलसीदास जी ने बताया—

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥

इस योनि से तुम नरक भी जा सकते हो, स्वर्ग भी जा सकते हो और मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हो। मनुष्य शरीर मोक्ष प्राप्त करने के लिए हैं, स्वर्ग और नरक जाने के लिए नहीं है। देवी भागवत के इस प्रसंग से आपको प्रेरणा लेनी चाहिए कि उस त्रिगुणातीता, पराम्बा, जगदम्बा जो परम चैतन्य सच्चिदानन्दमयी हैं, उसकी आराधना करके हम इन गुणों से परे होने की कोशिश करें, उससे प्रार्थना करें। उस करुणामयी माँ की कृपा से अपने पास जो कुछ हैं सब उसको समर्पित करते हुए, उसका हो करके, इन गुणों से परे जाने की कोशिश करो, प्रयत्न करो। जो सतोगुणी लोग हैं, वे देवता हैं और जो तामसी वृत्ति के लोग हैं, वे महिषासुर हैं। जब महिषासुर का बोलबाला होता है, एक-२ करके देवता पराजित होते रहते हैं। यदि वे आपस में संगठित हो जायें, दैवी शक्ति का एक विशाल संगठन हो, तो वे महिषासुर को पराजित कर सकते हैं। हमारे सामने प्रत्यक्ष भारत का उदाहरण हैं, भारत में अनेकों राजा थे, सभी राजा अलग-२ होकर लड़ते रहे तो वे मुसलमानों से भी हारे और अंग्रेजों से भी हारे। जब सारे भारत की शक्ति एक हो गई और सारी जनता खड़ी हो गई तो अंग्रेजों को निकाल कर बाहर फैंक दिया, पता ही नहीं वे कहाँ गए।

आज भारत एक विशाल देश के रूप में परिणत हो गया है। जहाँ भी दैवी शक्ति का संगठन होगा वहाँ आसुरी शक्ति उसके सामने पराजित हो जायेगी, कभी खड़ी नहीं हो सकती, यह नियम है किन्तु कठिनाई यह है कि दैवी शक्ति

मुश्किल से संगठित होती है। दुर्दशा सहने के पश्चात् आज भारत कितने वर्षों पश्चात् संगठित हुआ है। इसी रूप से अपने अन्दर भी मोह रूपी महिषासुर है और देवता भी रहते हैं अर्थात् जितने सद्‌गुण हैं, ये सभी मोह रूपी महिषासुर से पीड़ित होते हैं। यदि प्रज्ञा का मूल स्रोत जिसे तांत्रिक भाषा में कुण्डलिनी शक्ति कहा जाता है, जो सब सुखों की जननी है, उस शक्ति को जागृत किया जाये, संगठित करके प्रकट किया जाये तो उससे मोह रूपी महिषासुर को भस्म किया जा सकता है, यह इस कथा का आध्यात्मिक चरित्र है। इसको आप लोग मनन करें, पुनः कल मिलेंगे, विचार करेंगे।

हरि ॐ तत्सत्।

४

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् का मंगलमय विधान आप सभी के लिए कल्याणप्रद हो, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना! आज हमारे यज्ञ का चौथा दिन है। शाश्वत सनातन धर्म के सिद्धान्तानुसार उस पराशक्ति के स्वरूप, उसकी महिमा से सम्बन्धित आप लोग विचार सुन रहे हैं। ये सारे शास्त्र जीवन को सुन्दर, सात्त्विक और उन्नत बनाने के लिए ऋषियों ने रचे हैं। इनका जहाँ पर व्याख्यान होता है, उसके पीछे भी यही अभिप्राय होता है कि मानव अपनी बुद्धि को शुद्ध करके शास्त्रों के बताये हुए राह पर चले। अपने जीवन को सुन्दर, सुखद और उन्नत बनायें। शास्त्र को सुन करके और समझ करके भी यदि मनुष्य का जीवन उज्ज्वल नहीं होता, उन्नत नहीं होता, विकसित नहीं होता तथा अपने स्तर से थोड़ा ऊँचा नहीं उठता तो यह समझना चाहिए कि कहीं कोई भूल जरूर है, कहीं कोई कमी जरूर है वा कहीं कोई गलती जरूर है। वह भूल, कमी वा गलती किस रूप में है, यह भी एक बहुत गंभीर प्रश्न है, जिसका समाधान स्वयं को खोजना चाहिए! कभी-२ ऐसा होता है कि शास्त्र की बात समझाने वाला सही रूप में नहीं समझा पाता। कभी ऐसा भी होता है कि शास्त्र को समझाने वाले का जीवन उसके अनुसार नहीं होता। जो बात वह कहने जा रहा है, वह स्वयं अपने जीवन में नहीं उतार पाया। इसका परिणाम क्या होता है? जिसके लिए वह

कहने जा रहा हैं उस पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वाणी में जो बल हैं, वह पुस्तक का नहीं जीवन का होता है। यदि व्यक्ति ने अपने जीवन को साधा है, स्वयं में संयम बरता हैं तो उसका एक-२ वाक्य जो सात्त्विक, संस्कारयुक्त श्रोता है, उनके जीवन को परिवर्तित करने में कारण बन जायेगा और यदि स्वयं का जीवन ऐसा सधा हुआ, संयमित तथा निस्पृह नहीं है तो उसके शब्दों का कोई प्रभाव नहीं होगा। कहने वाला कह गया और सुनने वाले ने सुन लिया।

हमारे भारत में एक नारायण स्वामी नाम के संत हुए, उन्होंने एक दोहा लिखा है—

कथनी कथकेते गये कर्म उपासना ज्ञान।
नारायण या जगत् में करनी है प्रधान॥

कहने के लिए तो सभी त्याग, वैराग्य का उपदेश दे देते हैं। जगत् मिथ्या हैं परमात्मा ही सत्य है, इसको कहने में कोई अन्तर नहीं आता। जीवन में इसकी अनुभूति वा प्रतिष्ठा यदि नहीं है तो उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरी बात हैं कि कहने वाला बहुत ही सुयोग्य हो, समझदार हो व स्वयं वैसा जीवन जी भी रहा हो लेकिन यदि सुनने वाला उसके लिए तैयार नहीं है, उसकी भूमिका ठीक नहीं है तो उस कहने वाले का भी कोई प्रभाव नहीं होता। आप लोगों को शायद कभी सुनने को मिला हो कि भगवान् ने अपना दो बार विराट् रूप दिखाया। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि पहले उन्होंने दुर्योधन को दिखाया, उसके पश्चात् अर्जुन को दिखाया। जिस विराट् रूप को देखकर अर्जुन को परमात्मा का बोध हुआ और वह परमात्मा को समर्पित हो गया, उसी विराट् रूप को देखकर दुर्योधन ने कहा कि यह तो बाजीगर है, इसकी खबर अभी ले ली जाए तो अच्छा है, नहीं तो मैदान में देखा जाएगा। जो उपदेश भगवान् अर्जुन को दिए, ऐसे ही भगवान् स्वयं दूत रूप में उपदेष्टा बन करके दुर्योधन की सभा में जाकर बहुत लम्बी व्याख्या करके दिए और अन्त में कहा कि मेरी राय है पाँचों पाण्डवों के लिए पाँच गाँव रहने के लिए दे दिए जायें जिससे उनकी जीविका चल सके क्योंकि वे क्षत्रिय हैं, भीख नहीं माँग सकते। ब्राह्मण होता तो भीख माँग कर अपना निर्वाह कर लेता, वैश्य होता तो व्यवसाय करके अपना निर्वाह कर लेता, शूद्र होता तो सेवा करके अपना गुजारा कर लेता। पाँचों पाण्डव क्षत्रिय हैं, वीर हैं, न तो वे भीख माँग सकते हैं, न व्यापार कर सकते हैं और न कोई और काम कर सकते हैं; इसलिए उनके जीने के लिए जीविका रूप में केवल पाँच गाँव दे दिए जायें जिससे यह महाभारत का युद्ध बन्द हो जाए। पाण्डव संतोषी हैं, मैं

स्वयं उनको मना लूँगा, यह भगवान् ने प्रतिज्ञा की है। दुर्योधन ने कहा, पाँच गाँव ? पाँच गाँव तो बहुत बड़ी बात है, केशव ! तुम याद रखो सुई की नोक के ऊपर जितनी मिट्टी आती है, हम उतनी मिट्टी भी बिना युद्ध के उन्हें नहीं दे सकते। तुलसीदास जी ने अपनी दोहावली में लिखा है—

जो पे खल उपदेश के होते पात्र जहान।
क्यों न सुयोधन बोध करि आये श्रीभगवान ।।

यदि नासमझ व्यक्ति उपदेश का पात्र होता तो भगवान् दुर्योधन को स्वयं समझाने गए थे, उसको क्यों नहीं समझा दिया ? इसलिए समझाने वाले के ऊपर ही निर्भर नहीं करता बल्कि देखना है कि समझने वाले की भूमिका भी तैयार है वा नहीं, वह समझने के लिए तैयार है वा नहीं, अपने आपको उसके अनुकूल बनाया है वा नहीं ? गल्ती कहाँ है ? समझने वाले, समझाने वाले में या शास्त्र में गलती है कहीं ? कभी-२ समझने वाला भी अच्छा मिल जाये लेकिन शास्त्र ही यदि ठीक न हो तो, क्या करेंगे आप ! क्योंकि समझाने वाला तो शास्त्रानुसार ही समझायेगा ! शास्त्र में जो लिखा है वही समझायेगा और समझने वाला भी शास्त्रानुसार ही समझेगा। जितनी उसकी बुद्धि ग्रहण करेगी उतना समझ लेगा।

जिन धर्मों के पास कोई तात्त्विक विवेचन नहीं है, कोई तर्कयुक्त शास्त्र नहीं है, वे धर्म के अनुयायी अन्धविश्वास में फँस जाते हैं। क्यों फँस जाते हैं ? क्योंकि उनकी पुस्तक में वही बात लिखी हुई है, उससे आगे वे समझ ही नहीं सकते। कई ऐसे धर्मग्रन्थ हैं, मैं उनका नाम नहीं लूँगा, उनमें कई इस प्रकार की बातें हैं, यदि आप पढ़ो तो आपको भी हैरानी होगी कि इन ग्रन्थों को भी धर्मग्रन्थ कहा जाता है, यह आश्चर्य की बात है क्योंकि उनमें कोई बात समझने वाली नहीं है। इधर-उधर की कहानियाँ दी गई हैं जिनका कोई मतलब नहीं और समाज को अन्धविश्वास में डाला गया है। समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो अन्धविश्वास में पड़ जाते हैं, फिर उनका निकलना कठिन होता है क्योंकि वे सुनी हुई उन्हीं अन्धविश्वास युक्त बातों में पड़े रहते हैं। उनसे आप बात कीजिए तो वे तुरन्त कहेंगे कि बात तो आपकी अच्छी है किन्तु हमारे धर्मग्रन्थ में यह नहीं लिखा। हम तो रातों-दिन देख रहे हैं, विदेशों में मुझे १२ वर्ष काम करते हो गए। कितने तर्क की बात, युक्ति की बात, साईक्लोजी की बात आप उनको समझाइये, जो रिजिड हैं, आर्थोडॉक्स हैं, आपकी सारी बात सुनेंगे, सुनने के बाद कहेंगे, यह हमारे ग्रन्थ में नहीं लिखा। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि जिस ग्रन्थ को हम ग्रंथ मानकर स्वीकार करते हैं, वह बुद्धिसम्मत है वा नहीं ? समझाने

वाला बुद्धिमान्, चरित्रवान् है वा नहीं और दूसरा समझने वाला तैयार है वा नहीं है ? ये तीन बातें देखनी होती हैं और इन तीनों की कसौटी पर जो खरा उतरे वही जीवन में उन्नत, उत्थान और सुख का पात्र बन पाता है अन्यथा नहीं।

आप लोग यहाँ शाश्वत सनातन धर्म के सिद्धान्त को सुन रहे हैं, उस सिद्धान्त को पुराण के माध्यम से मैं आप लोगों को समझा रहा हूँ। पुराणों में जो कथाएँ हैं, इनके विषय में एक बात आप लोगों को समझा दूँ कि कथाएँ जो हैं. वे वेद की व्याख्या हैं। शास्त्रकारों एवं हमारे ऋषियों ने कहा है कि **'इतिहास पुराणाभ्याम्'** इतिहास और पुराण के द्वारा वेद का उपबृंहण अर्थात् वेद की व्याख्या की गई है वा वेद को विशद रूप में समझाया गया है लेकिन पुराणों में जो कथा जिस रूप में लिखी गई है, वैसे उसका अर्थ नहीं समझ लेना, नहीं तो वहाँ अनर्थ हो जाएगा। वह रूपक है। रूपक का अर्थ है किसी बात को समझाने के लिए कहानी बताई गई है। जब हम पुराण पढ़ते हैं तो उसमें तीन बाते मिलती हैं—कथा, उपाख्यान तथा आख्यान। जहाँ कहीं उपाख्यान है, उपाख्यान माने कहानी, जिसको अंग्रेजी में Mith कहते हैं, जिससे माइथोलॉजी बनता है। जहाँ उपाख्यान है वह है मिथ और जहाँ पर आख्यान है, वह है इतिहास। आख्यान मिथ नहीं है, आख्यान इतिहास है, घटना है। जो घटना घटी है, उसको ज्यों का त्यों बता देना, आख्यान है। एक कहानी बनाकर किसी बात को समझाना, उसे उपाख्यान कहते हैं। किसी के जीवन का वृत्तान्त वा चरित्र बताना, उसको कथा कहते हैं। ये तीन बातें भिन्न-२ रूप में समझाई गई हैं और ये तीनों बातें सभी पुराणों में मिल जाती हैं। पुराणकार वहाँ पर संकेत भी करते हैं और कभी-२ संकेत नहीं भी करते। जब संकेत नहीं करते तो समझ लेना चाहिए कि यहाँ क्या है। उसके अर्थ से पता चलता है कि वह क्या है। उसके पढ़ने से पता चलता है कि आख्यान है, उपाख्यान है अथवा चरित्र या कथा है। चरित्र में दो प्रकार की बातें कही जाती हैं, एक तो यथार्थ होता है जो चरित्र के आधार रूप में होता है और एक यथार्थ के साथ अर्थवाद होता है जैसे किसी की महिमा को व्यक्त करने के लिए उसके साथ कुछ काव्यमय कलात्मक बातें जोड़ दी जाती हैं। इसके विषय में मैं आपको एक उदाहरण दूँ।

रामायण में एक कथा आती है भगवान् राम समुद्र के किनारे बैठे हैं। समुद्र ने प्रकट होकर कहा—भगवन्! आप इस पर सेतु बाँध कर जायें। राम को पता चला कि हमारे दल में नल और नील, ये दो शिल्पी, इंजीनियर हैं जो समुद्र पर सेतु बाँध सकते हैं। भगवान् ने निश्चय किया कि जल्दी से जल्दी पुल बन

जाना चाहिए। भगवान् ने जाम्बवन्त, विभीषण, सुग्रीव आदि को बुलाया कि अब पुल बनने में क्यों विलम्ब कर रहे हो? जल्दी से जल्दी पुल बनाना प्रारम्भ कर दो। जिस समय भगवान् यह कह रहे थे तो हनुमान जी ने खड़े होकर हाथ जोड़कर कहा—प्रभो! समुद्र पार होने के लिए पुल की कोई जरूरत नहीं।

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी।
सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥

(रा० ६/१-२)

बड़वानल उसे कहते हैं जो समुद्र के अन्दर आग है, जिस आग में समुद्र का पानी बढ़ता नहीं अपितु उसी में समाप्त होता रहता है। आपके प्रताप रूपी बड़वानल ने पहले ही समुद्र के जल को सोख लिया था। फिर इसमें पानी कहाँ से आ गया? हनुमान जी कहते हैं—

तव रिपु नारि रुदन जल धारा।
भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा॥

(रा० ६/१-३)

प्रभो! आपके शत्रुओं की स्त्रियों ने जो आँसू बहाये उससे समुद्र पुनः भर गया। जैसे आँसू खारे होते हैं वैसे ही समुद्र का जल भी खारा हो गया, अब इसको क्या कहेंगे? तुलसीदास जी आगे लिखते हैं—

सुनि अति उकुति पवनसुत केरी।
हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥

(रा० ६/१-४)

'अति उकुति' माने अतिश्योक्ति। यह एक अलंकार है अर्थात् काव्यात्मक भाषा में हनुमान जी ने यह बात कही कि भगवान् के प्रताप ने समुद्र का जल सोख लिया था वा शत्रुओं की स्त्रियों के रोने से समुद्र भर गया। यह सही घटना नहीं है, इसे अतिश्योक्ति अलंकार कहते हैं। इसके उपदेश को हमारे यहाँ प्रिया-सम्मत वा कान्ता-सम्मत उपदेश कहा गया है। हमारे यहाँ शास्त्रों में ज्ञान प्रदान की तीन प्रकार की विधा बताई गई है। किसी को ज्ञान देना हो तो तीन प्रकार से दिया जाता है। कैसे? एक स्वामी वा गुरु के समान आदेश वा आज्ञा तथा दूसरा मित्र के समान उपदेश। हित की बातें कहीं और कहने के बाद कहा कि यह तुमको बता दिया, आगे तुम्हारी रुचि, करो वा न करो, इसे कहते हैं मित्रवत उपदेश। तीसरा—कान्ता-सम्मत उपदेश। जैसे स्त्री बड़े प्यार से, अवसर देखकर अपने पति के चरण पकड़ मधुर वाणी में उसके हित की बात कहना चाहती है

तो उसको कान्ता सम्मत उपदेश कहते हैं। ये तीन प्रकार से ज्ञान देने की प्रक्रिया हैं—गुरुवत्, मित्रवत् और स्त्रीवत्। अब उसमें गुरु के समान जो आदेश है, उसमें नमुनच के लिए गुंजाइश नहीं है, वह तो पालन करना ही है क्योंकि गुरु जो कुछ कह रहा है, वह शिष्य के हित में कह रहा है। यदि शिष्य में उतनी समझ हो जाये तो गुरु की जरूरत ही क्या पड़ेगी? वहाँ पर गुरु जो कह रहा है उसका पालन करना शिष्य का धर्म है। यदि शिष्य वहाँ पर अपनी बुद्धि लगाता है तो गलती करता है, उसका परिणाम उसे अच्छा नहीं मिलेगा। गुरु अपने ज्ञान और अनुभूति के बल पर जो समझता और जानता है, वह शिष्य के कल्याण के लिए आदेश वा आज्ञा देता है तो उसमें प्रश्न के लिए स्थान नहीं है। मित्र आदेश नहीं दे सकता, वह सलाह देता है और तीसरा स्त्री के समान विनम्र भाव से प्रार्थना करना कि आप इसे अवश्य मानें, यहाँ सलाह नहीं निवेदन है।

इसी प्रकार से हमारे यहाँ बताया गया कि जो वेद और शास्त्र हैं, वे गुरुवत् आदेश हैं, वहाँ न करने के लिए गुंजाइश नहीं है। वेद ने कहा—'**सत्यं वद् धर्मं चर**' यह आदेश है। वहाँ यह नहीं है कि तुम मानो वा न मानो। वेद के आदेश को शिरोधार्य करना पड़ेगा, उसमें कल्पना के लिए गुंजाइश नहीं है। इसलिए उसको स्वतः प्रमाण माना गया, '**अपौरुषेय**' माना गया। दूसरा वेद के साथ स्मृतियाँ हैं। स्मृतियों में आपको मित्रवत् सलाह दी गई। यह बात अच्छी है वा बुरी है, तुम्हें जो अच्छा लगता है करो, हमने तुम्हें बता दिया है। इतिहास और साहित्य में कान्ता-सम्मत उपदेश है। बड़ी रोचक वा मीठी भाषा में उन्हीं तत्त्वों को समझाने की कोशिश की गई है, इसलिए पुराण की प्रत्येक कथा को सही मान लेना, यह भूल होगी, ऐसा नहीं। उसके कई अभिप्राय हैं। जिस अभिप्राय को बताने के लिए उस कथा, उस उपाख्यान की रचना की गई है, उस अभिप्राय को ग्रहण करना और कहानी को कहानी समझ लेना, यह एक उत्तम बात है। हमारे यहाँ गलती क्या है? कुछ शताब्दियों से यह विवेचन, यह विश्लेषण समाप्त हो गया। लोगों ने पुराण की प्रत्येक कहानी को सत्य रूप में पकड़ लिया। कई स्थानों पर ऐसी कहानी लिखी गई जहाँ पर उनका कोई सिर-पैर नहीं मिलता क्योंकि वह तो समझाने के लिए उपाख्यान बताया गया। कुछ लोग उसी में उलझे रहते हैं कि यह कैसे कह दिया? बाद में कवियों ने भी अपनी भाषा में अनुवाद करके ज्यों का त्यों जनता के समक्ष ला दिया। जनता उसी को समझती है कि यह कैसे हुआ। आपको एक कहानी सुनाऊँ, हम सब हनुमान चालीसा पढ़ते हैं।

तुलसीदास जी ने उसमें एक चौपाई लिखी है—

जुग सहस्त्र जोजन पर भानू।
लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥

हनुमान जी के लिए कहा गया—चार सहस्त्र योजन से दूर जो सूर्य भगवान् हैं उनको आपने मधुर फल जान करके लील लिया। इस वैज्ञानिक युग में यदि किसी से बताओ कि हनुमान जी हमारे इतने बड़े हुए हैं कि यहाँ से उड़े और सूर्य भगवान् को अपने मुँह में डाल लिया तो वह आपको क्या कहेगा? यही न कि यह या तो पागल है या मूर्ख है अथवा नासमझ है। आपको यह पता नहीं है कि पृथ्वी से अनेक गुणा बड़ा सूर्य है और पृथ्वी जैसे अनेकों उसके ग्रह एवं उपग्रह हैं जो उसके टुकड़े से बने हुए हैं। उस विशाल सूर्य को कोई मर्त्यलोक में उत्पन्न हुआ व्यक्ति उड़ा और अपने मुँह में ले लिया, आखिर क्या बात है? जब तक सूर्य देवता थे तब तक तो यह बात मानने के लिए रही होगी कि जो रथ पर चढ़ करके गोले-२ दिखाई देते हैं, बिल्कुल फल जैसे लगते हैं, जरूर किसी ने मुँह में डाल लिया होगा। उन्हें क्या अन्तर पड़ता है? उन्होंने यहाँ से छलाँग मारा और उसे मुँह में डाल लिया क्योंकि हमारे से तो वे बहुत बड़े थे लेकिन यदि इसी को सत्य मान लें तो सारा अनर्थ हो जाएगा। विज्ञान कहता है, यह तो तुम्हारी बुद्धि का दिवालियापन है,फिर तुलसीदास जी ने ऐसा क्यों लिख दिया? तुलसीदास जी ने हनुमान जी की महिमा लिखी है। हनुमान जी की महिमा में उन्होंने सबसे पहले बताया कि वे वायु के पुत्र हैं। वेद में जानते हो वायु के पुत्र कौन हैं? वायु का पुत्र अग्नि—

वायोरग्नि अग्निराप:।

वेद का मन्त्र है कि वायु से अग्नि उत्पन्न होता है। इसका अभिप्राय हनुमान जी अग्नि हैं? अब हनुमान जी यदि अग्नि हैं फिर अग्नि के लिए तो यह सम्भव नहीं कि इतने बड़े सूर्य के गोले को अपने अन्दर कर ले। जो सर्वव्यापी अग्नि है, जो वायु से उत्पन्न हुई अग्नि है, यह अग्नि का गोला उसके मुँह में नहीं है तो क्या बाहर है, क्या बताओगे? कोई भी वैज्ञानिक इस पर मेरे से विचार कर ले, तर्क कर ले। यह जो सूर्य का गोला दिखाई दे रहा है, यह किसके मुँह में है? वह सर्वव्यापी अग्नि के मुँह में है, उसके उदर में है, उससे बाहर नहीं है। ऐसे अनन्त गोले उसके मुँह में पड़े हुए हैं। यही नहीं कि जिस हनुमान की कल्पना तुलसीदास जी करते हैं, वे हनुमान ऐसे अनेकों सूर्य निगले हुए हैं क्योंकि वे वायु पुत्र हैं। उस वायु का पुत्र अग्नि है, अग्नि में अनन्त तारागण, ग्रह, उपग्रह समाये हुए हैं। उस

रूपक को समझाने के लिए यदि यह बात कही जाये तो उसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होती। सामान्य स्तर पर यदि तुम मानो कि हनुमान जी एक व्यक्ति थे, वे यहाँ से छलांग मार कर सूर्य को अपने मुँह में ले लिए, फिर असंभव हो जाएगा। इसी रूप से शास्त्रों में जो तत्त्व समझाया गया है, उन तत्त्वों को यदि तात्त्विक दृष्टि से सही रूप से समझाया जाये, तो उस रहस्य को समझ करके मनुष्य अपने आप में निमग्न हो जाता है। हनुमान, राम और सीता, ये जो तत्त्व हैं, ये रामायण की कथा के मूल आधार हैं। इनको यदि वेद के सिद्धान्तानुसार समझा जाये तो प्रत्येक व्यक्ति सही में संसार में पुन: लौट करके नहीं आयेगा, यह तुलसीदास जी की प्रतिज्ञा है। उन्होंने कहा कि वह आनन्द के समुद्र में पहुँच जायेगा, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं। लेकिन यदि तुम राम को यही समझोगे कि अयोध्या एक नगरी थी, वहाँ दशरथ नाम का राजा था, उनके एक लड़का पैदा हुआ, उसका नाम राम था, उसकी पत्नी सीता थी जिसको लंका का राजा रावण हर ले गया। ये कहानियाँ रातों-दिन पढ़ने से कल्याण नहीं होगा। जब तक राम के तत्त्व को तुम लोग नहीं जानते तब तक तुम आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकते। रामायण में स्थान-२ पर यह बात समझाई गई है, तुलसीदास जी ने स्थान-२ पर यह संकेत किया है कि जिस राम की मैं बात कर रहा हूँ, उसे याद रखें। मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण मूर्छित पड़ गए और सायंकाल को युद्ध करके सेना लौट आई तो राम पूछते हैं कि लक्ष्मण कहाँ है? तुलसीदास जी कहते हैं—

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर।
लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥

(रा० ६/५५-५)

जो कण-२ में व्यापक है, ब्रह्म है, जो जगत् रूप में विस्तृत है, अजित है, जिसे दुनिया में कोई जीत नहीं सकता, अनन्त भुवनों का जो ईश्वर है, वह राम है और वही ब्रह्म राम यह पूछ रहा है कि लक्ष्मण कहाँ है? इसका अभिप्राय जिस राम की वे कथा कह रहे हैं, वे राम तो परम तत्त्व हैं और जो यहाँ पूछ रहे हैं कि लक्ष्मण कहाँ है, यह उनकी लीला है। भगवान् शंकर कहते हैं, उमा!

उमा एक अखण्ड रघुराई।
नर गति भगति कृपाल देखाई॥

(रा० ६/६१-१८)

"वे तो अखण्ड हैं, अनन्त हैं, उन्होंने तो मनुष्य का चरित्र करके बताया, अबोध

मनुष्य के सामने उन्होंने लीला करके दिखाई।'' उनके अवतार को केवल लीला समझो फिर तो आप रामायण को सही समझोगे। यदि राम के अवतार को, उनकी कथाओं को लीला न समझ, सही समझोगे, राम के जीवन को मनुष्य का जीवन समझोगे तो तुम रामायण के सही अर्थ को नहीं समझ पाओगे, आनन्द सिन्धु में नहीं पहुँच पाओगे, फिर तुम मोह में गिर करके दुःखी होओगे। तुलसीदास जी ने लिखा है—

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

(रा० ३/१)

जो उनके रहस्य को नहीं समझ पाते, ऐसे विमूढ़ लोग मोह को ही प्राप्त होते हैं, आनन्द को प्राप्त नहीं होते, इसलिए मैं आप लोगों को समझा रहा था कि पुराणों में जो कथाएं हैं, उनके रहस्य को समझने की चेष्टा करनी चाहिए। कहीं-२ पर तो हम देखते हैं कि वेद के किसी मंत्र को ऋषि ने ले लिया, उस मंत्र के ऊपर उन्होंने पूरी कथा तैयार कर ली। उस छोटे से मन्त्र की व्याख्या में पूरी कथा लिख डाली परन्तु जब तक तुम उस मंत्र के अर्थ को नहीं समझोगे तब तक उसके भाव को नहीं समझ पाओगे। अभी मैं जो आप लोगों को आज के प्रसंग में आई कथा को सुनाने जा रहा हूँ, वह भी एक रहस्यात्मक कथा है। देवी भागवत की वह कथा जिसमें आप लोगों ने नाम सुना होगा महिष मर्दिनी का, यह भगवती का एक नाम है। इसमें भगवती ने महिषासुर का वध किया है, इस कथा को सुनिये और समझिये। महिषासुर कौन था, पहले उसकी कहानी समझ लीजिए?

कश्यप मुनि की एक स्त्री थी जिसका नाम दनु था। दनु के दो पुत्र हुए, दोनों पुत्रों में बहुत बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी कि वे दुनिया में ऐसे हों कि उनके समान दूसरा कोई न हो। उसके लिए दोनों पुत्रों ने घोर तपस्या करने का विचार किया। रम्भ और करम्भ, ये उनके नाम थे। ये दोनों दनु के पुत्र तपस्या करने के लिए चले, करम्भ ने जल में समाधि लगाकर तपस्या करना प्रारम्भ किया। इन्द्र को जब पता चला कि रम्भ और करम्भ दोनों तपस्या कर रहे हैं, इन्द्र उनके विनाश की योजना बनाने लगा कि किस प्रकार से इनको खत्म किया जाये। दानव यदि तपस्या करके वरदान ले लिए तो उसकी दुर्गति करते हैं। जो असुर तपस्या करके वरदान प्राप्त करता है, वह इन्द्रासन को प्राप्त करने की कोशिश करता है। करम्भ तपस्या में मग्न था, इन्द्र मगर का रूप धारण करके गया और उसे पकड़ा और निगल कर मार दिया। दूसरी ओर रम्भ पंचाग्नि जलाकर तपस्या

कर रहा था। वट के नीचे बैठकर अपने चारों ओर अग्नि जलाकर उसके मध्य में बैठकर तपस्या कर रहा था। उसकी तपस्या से ब्रह्मा प्रसन्न हुए और उसके समक्ष आकर वरदान माँगने के लिए कहा। कभी-२ लोग यह प्रश्न करते हैं कि ये दानव लोग तपस्या के द्वारा वरदान प्राप्त करके दूसरों का अहित ही तो करते हैं फिर ये देवता उनको वरदान देने के लिए क्यों आ जाते हैं? इसका समाधान शास्त्र करता है कि कर्म का फल देना विधाता का कर्त्तव्य है। विधाता किसी के कर्मफल को बदल नहीं सकता, इन्कार नहीं कर सकता। किसी के कर्म का फल विधाता न दें, ऐसी उनमें सामर्थ्य नहीं, यह तो वेद का नियम है, प्रकृति का सिद्धान्त है कि कर्म का परिणाम देना ही पड़ेगा और वे प्राप्त करेंगे ही चाहे देवता हों वा दानव। जो भी कर्म करेगा, उस कर्म के फल को देने के लिए उसके रचयिता विधाता को आना पड़ेगा और वह कर्म के फल को प्राप्त करेगा। अब उस फल का चाहे कोई सदुपयोग करे वा दुरुपयोग करे, यह तो उस पर निर्भर है। जैसे पृथ्वी के नीचे जल है और कोई व्यक्ति जल की प्राप्ति के लिए पृथ्वी को खोदना शुरु करेगा, तो क्या जो दुष्टात्मा है उसके लिए पृथ्वी कह देगी कि मैं तुम्हें जल नहीं दूँगी, क्या राय है? पृथ्वी के अन्दर से उसके लिए जल नहीं निकलेगा? जो पुण्यात्मा है, उसी के लिए नीचे से जल आयेगा? अग्नि को जो जलाना चाहे, चाहे वह धर्मात्मा हो वा पापात्मा, क्या अग्नि कहेगी कि मैं पापात्मा से नहीं जलती? कभी नहीं कह सकती। अग्नि को जलाने के लिए जो क्रिया करेगा तो अग्नि को जलना ही पड़ेगा और जल प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न करेगा तो जल को ऊपर आना ही पड़ेगा। यह कर्म का परिणाम है, जो कर्म करेगा उसके लिए उसका फल देना ही पड़ेगा, इसको कोई टाल नहीं सकता।

इसलिए जब कोई असुर तपस्या करता है तो विधाता को आकर उसे वरदान देना ही पड़ता है। उसको कोई परिवर्तन नहीं कर सकता, यह ईश्वरीय विधान है। रम्भ को विधाता ने आकर वरदान दिया, तुम्हें क्या चाहिए? उसने कहा कि मैं त्रिलोक विजयी एक पुत्र चाहता हूँ लेकिन आप देखेंगे कि असुरों की ऐसी वृत्ति होती है, परमात्मा भी इनके सामने आ जाये, ये दुनियावी वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ माँग भी नहीं पाते। कोई मांगेगा हम अमर हो जायें, कोई मांगेगा कि हमें कोई न मारे, कोई मांगेगा हमें धन मिल जाये, इसके अतिरिक्त और कुछ माँग ही नहीं सकते। यह नहीं मांगेगे कि प्रभु हमें भक्ति मिल जाये, मोक्ष मिल जाये, हमें ज्ञान हो जाये। एक बात और समझ लें, जो लोग भगवान् की उपासना करके दुनियावी वस्तुएँ माँगते हैं, वे भक्तों की कोटि में नहीं हैं, वे

एक प्रकार के असुर हैं। वे उन्हीं के रास्ते पर चल रहे हैं, भगवान् के रास्ते पर नहीं चल रहे क्योंकि वे भगवान् की महिमा को नहीं जाने? भगवान् से कह रहे हैं कि हमें यह दे दो। अविनाशी से नाशवान् पदार्थों की याचना, यह बुद्धिहीनता नहीं तो और क्या है? जिसमें बुद्धि का प्रकाश नहीं है, उसे असुर कहते हैं। वेद में असुर का अर्थ बताया गया जहाँ सूर्य का प्रकाश न हो—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।

(ईशा० ३)

जो घोर अन्धकार से परिपूर्ण है, वह असुर है। ऐसे असुर लोग परमात्मा की घोर तपस्या करेंगे, बड़ी मेहनत करके बदले में क्या मांगेंगे? कुछ कुम्भकर्ण के भाई हैं जो मांगते हैं कि प्रभो! हमें छः मास सोने का ही वरदान दे दो। आप विचार करो, घोर तप किया कुंभकरण ने, विधाता ने प्रकट होकर पूछा—क्या चाहिए तुम्हें?

मागेसि नीद मास षट केरी।

(रा० १/१७६-८)

वह कहता है छः मास सोऊँ। यह भी कोई वरदान है। जिसका जो अभीष्ट है वही तो मांगेगा। रंभ ने विधाता से माँगा कि हमें एक बलवान पुत्र चाहिए। एवमस्तु! हो जायेगा। वह कहता है, होगा कैसे, यह बताते जाओ? पुत्र तो तब होगा जब पहले स्त्री मिले। विधाता ने उससे कहा कि जिस स्त्री को देखकर तुम्हारा मन मोहित हो जाये, कामातुर हो जाये, उसी से तुम्हें पुत्र मिल जायेगा। यह सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ किन्तु वृत्ति तो उसकी पाशविक थी। तपस्या करने के पश्चात् जब वहाँ से चला तो दैवयोग देखिए कि रास्ते में एक बहुत सुन्दर भैंस जा रही थी। वह कामातुर तो था ही, जब उसने भैंस की इन्द्री को देखा तो उसी पर मोहित हो गया और परिणाम यह हुआ कि उस भैंस से एक लड़का पैदा हुआ। सन्तानोत्पत्ति की क्रिया तो एक ही होती है चाहे वह मनुष्य हो, पशु, पक्षी कोई भी हो। उस विधाता के वरदानानुसार वह लड़का उसे तेजस्वी मिला। वह लड़का भैंस (महिषी) से पैदा हुआ था, इसलिए उसका नाम पड़ा महिषासुर। आप इस पर थोड़ा सा विचार कीजिए, क्या यह सम्भव हो सकता है? देवी भागवत कहता है ऐसा हुआ है। वर्तमान समय में यह सम्भव नहीं क्या? विज्ञान ने तो सब कुछ करके बता दिया है, आजकल तो इंजैक्शन के द्वारा पशुओं के सन्तान पैदा हो रही हैं, पशुओं की ही नहीं मनुष्य की भी होने लगी हैं। आप लोगों ने सुना होगा अमेरिका में छः हज़ार ऐसे बच्चे हैं जिनका बाप नहीं है। बाप

नहीं माने,इंजैक्शन से पैदा हुए हैं। अब एक स्वतन्त्र वृत्ति चल रही है कि कोई स्त्री किसी की पत्नी बनकर रहना पसन्द नहीं करती, लेकिन एक अवस्था आती है जब उसे माँ बनने की चाह होती है। बिना पत्नी बने माँ बनना है तो उसके लिए क्या करेगी? किसी डॉक्टर के पास जाकर इंजैक्शन लगवा कर बच्चा होने पर माँ बन जाती है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि वर्तमान में विज्ञान ने खोज करके पौराणिक कहानियों को जिसे लोग गप समझते थे, उनको उसने सिद्ध किया कि यह सम्भव हैं, असंभव नहीं। एक आसुरी वृत्ति के व्यक्ति से आप क्या आशा कर सकते हैं, आप ज़रा विचार कीजिए। वरदान के बदले में यदि उसे संतान मिली, पशु के द्वारा ही हुई, उसमें दैवी गुण आयेगा? नहीं। वही गुण आयेगा जो माँ और बाप में है। संतान तो "आत्मा वै जायते पुत्रः" ही होगी। पशु बुद्धि पुरुष के लिए दैवी बुद्धि स्त्री नहीं पाशविक बुद्धि की स्त्री मिलेगी। यदि पाशविक बुद्धि वाली स्त्री होगी तो उत्तम उससे सन्तान हो, दैवी गुणों से सम्पन्न हो, ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। उसको पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम उसने महिषासुर रखा। महिष तो नाम था, उसके साथ असुर लगा गया तो महिषासुर हो गया। महिष असुर ही महिषासुर हुआ। महिषासुर ने घोर तपस्या की तो ब्रह्मा जी प्रकट हुए। ब्रह्मदेव से उसने कहा कि आप मुझे वरदान दें तो ब्रह्मदेव ने कहा—तुम्हारी तपस्या से हम प्रसन्न हैं, तुम्हें क्या चाहिए? उसने कहा, आप हमें वरदान दीजिए कि दुनिया में हमें कोई मार न सके। भगवान् ने कहा, ऐसा तो नहीं हो सकता—

जातस्य ही ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

(गीता २/२७)

यह मर्त्यलोक है, यहाँ जो जन्मा है वह एक दिन जरूर मरेगा, मरना तो जरूर है लेकिन कैसे मरना है, इसमें अन्तर हो सकता है। ऐसा वरदान नहीं मिल सकता कि तुम सदैव अमर हो जाओ। तुम्हारी तपस्या के बदले में कुछ concession मिल सकता है। वह कहता है कि मैं दैत्य, देवता, मानव, दानव किसी के हाथ से न मरूँ। ब्रह्मदेव बोले ठीक है। कहने लगा—पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि कोई न हमें मारे। कहने लगे कि ठीक है। उसने कहा कि नारी के अतिरिक्त मुझे कोई न मार सके क्योंकि नारी तो मेरे हाथ का खिलौना है। ब्रह्मदेव ने कहा—एवमस्तु! वरदान मिल जाने पर सर्वप्रथम महिषासुर ने इन्द्रासन पर चढ़ाई की, उसको पकड़ कर नीचे ढकेल दिया और स्वयं इन्द्रासन पर बैठ गया। देवताओं को उठा कर बंदीखाने में डाल दिया। पुराण कहता है—ब्रह्मा, विष्णु

और महेश भी उसके साथ युद्ध करने के लिए आये लेकिन वहाँ आकर देखा तो अन्तर्ध्यान हो गये, समझ लिया कि इसकी मृत्यु हमारे हाथ नहीं है। वरदान उन्हीं का दिया हुआ है। अपने वरदान को असत्य कैसे कर सकते हैं? देवताओं के वरदान को यदि स्वयं असत्य कर देंगे फिर तो उसकी महिमा ही खत्म हो जायेगी। हम रामायण में पढ़ते हैं हनुमान जी लंका में युद्ध कर रहे हैं और राक्षसों को मार रहे हैं। मेघनाद जब आया तो उसको एक घूँसा मारा तो घूँसा खाकर उसने तौबा कर दिया। फिर वह हनुमान जी के पास कभी नहीं आया। मेघनाद ने सोचा, यह तो बड़ा बलवान है। पिता ने कहा—उसे बाँध कर ले आओ। मेघनाद ने ब्रह्मअस्त्र उठाया और हनुमान जी पर चला दिया। तुलसीदास जी लिखते हैं—

ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥

(रा० ५/१९)

हनुमान जी सोचने लगे कि देवताओं का आदर करना उनका काम है। यदि वे ब्रह्मसर वा ब्रह्मपाश की इज्जत नहीं करते तो ब्रह्मा की महिमा मिट जोयगी, अपमान होगा इसलिए हनुमान जी उसमें बँध जाते हैं। जब रावण के दरबार में गये तो बँधे हुए थे। रावण ने कहा—अब तुम्हारी अक्ल ठिकाने आई, बँधकर आये? उन्होंने कहा—नहीं, मैं अपनी रुचि से बँधकर आया हूँ। हमें किसी ने बाँधा नहीं, हमने तो केवल ब्रह्मा के सम्मान के लिए अपने को बँधवा लिया है। अब मैं ब्रह्मा का आदर कर चुका हूँ, उनको नमस्कार कर रहा हूँ, इतना कहते ही उनका ब्रह्मअस्त्र छूट गया और हनुमान जी मुक्त हो गये। मेरे कहने का अभिप्राय कि जो देवताओं ने वरदान दिया होता है, उसका आदर वे स्वयं करते हैं।

अब महिषासुर विजयी बना और इन्द्रासन पर बैठ कर यज्ञ का भाग स्वयं लेने लगा, उसने निश्चय किया कि दुनिया में धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं होगी। त्रिलोकी नाथ मैं हूँ और चारों ओर मेरा राज्य होगा और मेरी ही महिमा होगी, मेरे नाम का लोग जप करें, मेरी ही पूजा करें, केवल मैं ही ईश्वर हूँ और कोई ईश्वर नहीं। महिषासुर की इस घोषणा से त्रिलोकी में त्राही-२ मच गई, पृथ्वी व्यथित होकर देवताओं के पास आई जबकि देवता पहले से ही रो रहे थे। देवताओं ने कहा—माँ! हम क्या कर सकते हैं? देवता और पृथ्वी मिल कर ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्मा ने कहा—मैंने ही वरदान दिया है इसलिए मैं कुछ नहीं कर सकता, अपन सभी शंकर के पास चलते हैं। सभी भगवान् शंकर के पास

आए। भगवान् शंकर ने कहा—देखिए, इसमें हम भी कुछ नहीं कर सकते। वरदान ब्रह्मा ने दिया, इसलिए ब्रह्मदेव के वरदान से वह अजय हो गया है, देवता, दैत्य, मानव कोई उसे मार नहीं सकते। फिर वे विष्णु के पास गये। भगवान् विष्णु इसका कोई उपाय ढूँढ सकते हैं। देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु प्रकट हुए। उन्होंने कहा—देवताओ! आप जिस प्रयोजन से आये हो, मैं जानता हूँ लेकिन मैं भी इसमें कुछ नहीं कर सकता क्योंकि ब्रह्मदेव ने उसे वरदान दिया है कि नारी के सिवाय उसे कोई मार नहीं सकता। जब तक कोई नारी ऐसी बलवान न हो तब तक उसे कौन मार सकता है? ऐसी बलवान नारी कोई है जो उसका वध कर सके? अभी इतना विचार कर ही रहे थे कि ब्रह्मदेव के शरीर से एक तेज पुंज प्रकट हुआ, विष्णु के शरीर से एक तेज प्रकट हुआ, शिव के शरीर से एक तेज प्रकट हुआ और वह तेज़ आकाश में छा गया। सभी देवता आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे कि यह क्या है? थोड़ी देर बाद देखा कि उस तेज के मध्य में एक बहुत सुन्दर नारी विराजमान है। देवताओं ने देखा और प्रार्थना की कि देवी तुम कौन हो? देवी ने कहा, तुम सभी निश्चिन्त हो जाओ, उसका वध करना मेरा काम है। तुरन्त उनको होश आई, ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने देखा कि अहो यह तो महामाया है जिसके प्रताप से, अंश से इस सारी सृष्टि का आविर्भाव हुआ है। उन्होंने भगवती की स्तुति एवं प्रार्थना की और भगवती ने महिषासुर के वध के लिए प्रस्थान किया।

आप लोग थोड़ा इस कथा का रहस्य समझिए। भगवती कौन है? वह शक्ति कौन है? देवताओं के अंग से निकला हुआ तेज, वही भगवती के रूप में प्रकट हो गया। आज भी जब किसी जाति पर, देश पर और समाज पर विपत्ति आती है तो क्या एक-२ व्यक्ति उस विपत्ति को दूर करने में सक्षम हो सकते हैं? आप लोगों की क्या राय है? नहीं हो सकते। जो व्यक्ति बहुत संख्या में होते हुए भी अकेले-२ युद्ध करके शत्रु के पाँव के नीचे कुचले जाते हैं, वही यदि आपस में संगठित हो जायें, सभी की शक्ति मिलकर एक रूप धारण कर ले तो फिर क्या होगा? दुनिया में कोई उनको परास्त सकता है? नहीं कर सकता।

पिता मरने लगा, उसके चार पुत्र थे, लड़कों ने उससे प्रार्थना करी कि पिताजी! आप तो जा रहे हो, हम लोगों को कुछ उपदेश देते जाओ जिससे आगे की हमारी ज़िन्दगी ठीक से गुजरे। पिता ने आदेश दिया कि एक धागा मेरे पास ले आओ, वे धागे को ले आए। पिता ने कहा—इसे तोड़ो, लड़के ने खींचा,टूट गया। पिता ने कहा, इस धागे को तुम दोहरा कर दो, उस धागे को दोहरा कर देने

पर पिता ने कहा, अब तोड़ो। बच्चों ने तोड़ा किन्तु थोड़ी सी कठिनाई से। पिता ने कहा, अब इसके तीन तार मिला दो, तीन तार मिलाकर तोड़ने लगे तो तोड़ने में मुश्किल पड़ गई। धागे से हाथ में खड्डे तो पड़ गए पर टूटा नहीं। पिता ने कहा—अब इसे चार कर दो, चार कर देने पर वह पूरी रस्सी हो गई। पिता ने कहा—तुम चारों मिलकर इसे तोड़ो तो चारों मिलकर उसे नहीं तोड़ सके। लड़कों ने कहा—पिता जी! हमने तो प्रार्थना की थी कि आप हमें कुछ उपदेश दे दो, यह किस कहानी में हमें लगा दिया? पिता ने कहा—मैंने उपदेश दे दिया। यदि तुम अकेले-२ रहे तो इस धागे की तरह दुनिया तुम्हें तोड़ डालेगी, क्या समझे? जैसे अकेले धागे को तुमने तोड़ दिया, यदि तुम अकेले-२ रहे तो दुनिया तुम्हें तोड़ डालेगी। तुममें कोई बल नहीं होगा। जैसे यही धागा जब चारों ने मिला दिया तो रस्सी बन गई, इसे तोड़ना कठिन है। ऐसे ही तुम चारों भाई जब मिलकर रहोगे, रस्सी की तरह आपस में लिपट जाओगे, एक दूसरे से आत्मसात हो जाओगे तो दुनिया में तुम्हें कोई तोड़ नहीं सकता। पिता का यह उपदेश केवल पुत्रों के लिए ही नहीं है, यह शास्त्र का उपदेश मानव जाति के लिए है, समाज के लिए है।

देवी भागवत का यह संदेश कि समस्त देवताओं का तेज निकल करके एक शक्ति का रूप धारण कर लिया और उसने महिषासुर का वध किया, विनाश किया और उसकी अतुल सेना का संहार कर दिया। वही देवता जब अलग-२ लड़ते रहे तो महिषासुर से सब पराजित होते रहे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वरुण, इन्द्र और कुबेर आदि जितने देवता थे, सभी अलग-२ महिषासुर से युद्ध करके पराजित हो चुके थे। जब सबकी शक्ति एक तेज पुंज के रूप में प्रकट हुई, सबकी शक्ति संगठित हो गई तो महिषासुर का वध करने में समर्थ हुई, महिषासुर पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हुए। आसुरी प्रवृत्ति वाले लोग महिषासुर हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। दुर्भाग्य यह है कि देवताओं की शक्ति बहुत मुश्किल से एकत्रित वा संगठित होती है। हमें इतिहास में बहुत कम मिलता है जबकि हम यह देख सकें कि देवता लोग संगठित हो गए और उन्होंने अपनी शक्ति को दानवों के विरुद्ध प्रयोग किया। देवता लोग इकट्ठे क्यों नहीं होते? प्रत्येक देवता अपने आप को अच्छा और बड़ा समझता है। जितने भले आदमी हैं, उनको यदि कहें कि अपना संगठन बनाओ तो उनका उत्तर होगा उन्हें क्या लेना-देना? भगवान् अपने आप अच्छा करेगा। प्रत्येक आदमी जो सात्त्विक वृत्ति का है संगठन से दूर रहना चाहता है। वह सोचता है, उससे क्या लेना-देना।

मैं आपको एक छोटा सा उदाहरण दूँ, पिछले दिनों भारत के एक प्रांत पंजाब में बड़ी बुरी स्थिति हो गई। वहाँ हिन्दुओं को जबरदस्ती इन्हीं के भाई सिक्ख सम्प्रदाय के मारने लगे। केवल हिन्दू होने के नाते बिना किसी बात के मारने लगे। बस चली जा रही है, चार गुण्डे व्यक्ति आये, बस को रोक कर कहा—खड़ा कर दो बस को! जितने हिन्दू हैं बस से बाहर निकल आओ, बाहर निकलते ही उनको गोली मार दी। जब यह स्थिति प्रारम्भ हुई तो कुछ लोग मेरे पास आकर कहने लगे, इसके लिए क्या किया जाये? मैंने कहा—इसके लिए एक ही सरल उपाय है, संगठन! एक ऐसा वर्ग है जो इस प्रकार से अन्धविश्वासी होकर यह कार्य कर रहा है। हमने कहा जितने सम्प्रदाय के महात्मा हैं वे सभी एकत्रित होकर उस सम्प्रदाय वालों को जिन्होंने इनको भड़काया है, बैठकर बात करें कि इनको भड़का कर क्यों गलत रास्ते पर डाला है। यह उन्हीं से ठीक हो सकते हैं, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। एक ने कहा जितने सम्प्रदाय के मुख्य महात्मा हैं आप उन सभी को एकत्रित करें तो हम लोग बैठकर बात कर सकते हैं।

एक सज्जन ने बीड़ा उठाया कि मैं सभी महात्माओं को एकत्रित करूँगा और आगे का काम आपका है। मैंने कहा—बिल्कुल सही बात है। वह वहाँ के दो तीन सम्प्रदाय के महात्मा, जो उनके महन्त थे, उनके पास गया और बताया कि हम एक बैठक बुला रहे हैं, उसमें आप भाग लें। उन्होंने कहा—हमारा काम है जनता को राम नाम बताना, हम किसी संगठन में नहीं पड़ेंगे। उसने कहा कि यह कोई संगठन वा राजनीति नहीं है, यह तो जो अत्याचार हो रहा है, इसको दूर करने के लिए आपस में बैठकर विचार-विमर्श करना है। उन्होंने कहा—नहीं, हम न तो किसी विचार-विमर्श में भाग लेंगे और न इससे हमारा कोई मतलब है। वह पाँच सात दिन घूमें, जितने मठ वाले थे, उनके पास गये, अन्त में मेरे पास आकर कहने लगे—स्वामी जी! यह नहीं हो सकता। क्या हुआ? कहने लगा—जिसके पास जाते हैं, वह कहता है, इससे हमारा कोई मतलब नहीं है। यह पोलिटिकल बात है। इसमें हम क्या करेंगे? कोई आने के लिए वा संगठन बनाने के लिए तैयार नहीं है। जिन सम्प्रदाय वालों ने यह कहा कि हमें किसी संगठन की आवश्यकता नहीं है, उन्हीं सम्प्रदाय वालों को गोलियों से भून दिया। उनके मुख्य गुरु वा सहायक गुरु को भी मार दिया, बाद में उनका एक लड़का रह गया था, उनको भी मारने के लिए पीछे लग गये। हमने देखा है कि जो अपने आपको महात्मा वा धर्मात्मा समझते हैं, वे कहते हैं कि हमें संगठित होने की क्या जरूरत

है ? जितनी दैवी शक्तियाँ हैं, ये बिखरी हुई होती हैं, संगठित नहीं होती, इसलिए ये आसुरी शक्तियों पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा पाती। इतिहास वा पुराण भरा हुआ है, जब भी देवता और दैत्यों का युद्ध होता है तो देवता हारते हैं, हार करके भागते हैं, भागने के अतिरिक्त इन्हें और कुछ नहीं आता। भागने पर चिल्लायेंगे। कभी भगवान् वा कभी भगवती को पुकारेंगे। इनकी रक्षा के लिए समय-२ पर भगवान् अवतार लेते हैं या भगवती अवतार लेती हैं। इन देवताओं से कुछ नहीं होता, ये मार खाने वा भागने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते। इसके लिए आपका इतिहास साक्षी है।

पुराण की कोई भी कहानी देखिए, रावण खड़ा होता है तो उसके सामने कोई देवता टिकते हैं ? कोई नहीं टिकते। बारी-२ सभी लड़ने के लिए आते हैं। इन्द्र, कुबेर, वरुण आदि देवता लड़ने के लिए आये, एकत्रित होकर नहीं, बारी-२ लड़ने के लिए आये। सभी हार कर चले जाते हैं और रोने के लिए सभी एकत्रित होते हैं। हे भगवन्! अब हमारी रक्षा करो। तब भगवान् एवं भगवती समय-२ पर अवतार लेते हैं। दुर्गा सप्तशती में एक दिशा दी है, देवी भागवत ने हमें संकेत किया है यदि अलग-२ देवता लड़ेंगे तो महिषासुर को जीत नहीं सकते। समस्त देवताओं की शक्ति एकत्रित होकर प्रकट हो जाये तो वह चण्डी बनेगी, भगवती बनेगी, वह महिषमर्दिनी शक्ति होगी। शक्ति किसी एक की नहीं है, समस्त देवताओं की शक्ति का पुंज है। जब सारे देवता संगठित होंगे, सभी दिव्य गुणों वाले लोग संगठित होंगे और अपनी एक शक्ति जागृत करेंगे तो वह उस शक्ति से अपने आप आसुरी शक्ति का पराजय कर देगी लेकिन अलग-२ लड़ कर कोई भी देवता उन असुरों को नहीं जीत सकता, यह देवी भागवत का बहुत बड़ा संदेश है। दूसरी बात और समझ लें, तुलसीदास जी से पूछा गया— यह महिषासुर कौन है ? उन्होंने अपनी रामायण में लिखा—

महामोहु महिषेसु बिसाला।
रामकथा कालिका कराला॥

(रा० १/४७-६)

यह महामोह ही महिषासुर है। महामोह को नष्ट करने के लिए भगवत् चरित्र जो अनन्त गुण-गण निधान है, वही कालिका रूप में प्रकट होता है। तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में भी 'महामोह महीष' ऐसा बताया कि महामोह ही महीष है। मोहरूपी महिषासुर का नाश करने के लिए एक-२ देवता ने कोशिश की, किन्तु उसका नाश नहीं कर सके। ये देवता कौन हैं ? सद्गुण। जिसमें सद्गुण हैं, वे

देवता हैं और देवता कौन हैं? ये इन्द्रियाँ भी देवता हैं। हमारे यहाँ शास्त्रों में इन्द्रियों को देवता बताया गया, सद्‌गुणों को देवता बताया गया। एक-२ सद्‌गुण यदि चाहे मोह को दूर करना तो नहीं कर सकते। समस्त सद्‌गुण यदि एकत्रित होकर जोर लगायें और सारे सद्‌गुणों में जो सत् तत्त्व है, यदि वह संघीभूत हो जाये फिर तो महिषासुर का नाश हो सकता है। समस्त सद्‌गुणों का जो तेज है वह यदि पूंजीभूत हो जाये तब यह मोह का नाश कर सकता है किन्तु एक सद्‌गुण मोह का नाश नहीं कर सकता। तुलसीदास जी ने अपनी विनय पत्रिका में इसके विषय में लिखा है—हे प्रभो! हम जैसे-२ कोशिश करके एक सद्‌गुण को लाकर महिषासुर को मारने की कोशिश करते हैं, मोहरूपी महिषासुर उन्हें खा जाता है। प्रत्येक सद्‌गुण अपने में हार जाता है, निर्बल हो जाता है लेकिन यदि प्रभु कृपा से इन सद्‌गुणों का तेज एक हो जाये, समन्वित हो जाये, पूंजीभूत हो जाये तो यह मोह को नाश करने में समर्थ है।

देवी भागवत की कथा से हमें दो प्रकार की शिक्षा मिलती है, एक तो महिषासुर बाहर का है दानवी शक्ति के रूप में और दूसरा महिषासुर अन्दर की आसुरी वृत्तियाँ हैं जो मोह से उत्पन्न होती हैं। तुलसीदास जी ने बताया—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

(रा० ७/१२१-२९)

समस्त व्याधियों की जड़ मोह ही है, इससे ही अनेक प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं इसलिए मोह ही महिषासुर है, इसमें कोई संदेह नहीं। मोह रूपी महिषासुर किससे पैदा हुआ था, जानते हो? महिषी से। हमारे यहाँ कहावत है कि अकल बड़ी है या भैंस? जड़ बुद्धि, मोटी बुद्धि, पाशविक बुद्धि ही महिषी है जिससे मोह रूपी महिषासुर पैदा होता है। जहाँ भी मोह प्रकट होगा पाशविक बुद्धि से होगा। दैवी बुद्धि से कभी मोह का जन्म नहीं हो सकता, दैवी बुद्धि से तो ज्ञान पैदा होगा, वहाँ मोह पैदा नहीं होगा, मोह तो पाशविक बुद्धि की देन है। इसीलिए बताया गया कि महिषी से महिषासुर का जन्म हुआ। महिषी माने पाशविक बुद्धि, हीन बुद्धि, अल्प बुद्धि, दूषित बुद्धि, दूसरे शब्दों में तामसिक बुद्धि और उसी से मोहरूपी महिषासुर का जन्म हुआ है। मोहरूपी महिषासुर समस्त देवताओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, अलग-२ देवता उससे लड़ कर विजयी नहीं हो सकते। जब समस्त सद्‌गुणों का, समस्त देवताओं का एक तेजपुंज प्रकट होता है तो वह महिषासुर का वध करता है। समस्त देवताओं के तेज पुंज को ही

भगवती कहते हैं, वही जगदम्बा है, आद्याशक्ति हैं और वही महिषमर्दिनी है। आपके मोहरूपी महिषासुर का नाश करने के लिए जो बुद्धि में सात्त्विक संस्कार हैं, उन्हीं समस्त सद्गुणों के कारण रूपी सात्त्विक संस्कारों का जब सतोगुणी तेज प्रकट होता है अर्थात् बुद्धि में जब प्रकाश प्रकट होता है तो मोहरूपी महिषासुर का वध करता है। बिना सात्त्विक बुद्धि के मोह का नाश नहीं होता।

एक बात और याद रखना–महिषासुर को यह वरदान मिला था कि कोई पुरुष उसे नहीं मार सकता, उसी रूप से इस मोह रूपी महिषासुर को भी वरदान मिला हुआ है कि उसको कोई सद्गुण नहीं मार सकता, पुरुष माने सद्गुण। इसको तो नारी ही मार सकती है। मोह रूपी महिषासुर का नाश करने के लिए ब्रह्मविद्या के सिवाय कोई साधन नहीं। यह ब्रह्मविद्या ही भगवती है, वही ब्राह्मी बुद्धि है, वही विशुद्ध बुद्धि है, उसी को प्रज्ञा कहते हैं। बौद्ध सम्प्रदाय में उसे प्रज्ञा पारगता कहा जाता है, गीता में उसे प्रज्ञा कहा गया है। वह प्रज्ञा ही शक्ति है, समस्त गुणों की खान है, समस्त देवताओं की जननी है, समस्त दैवी गुण उस प्रज्ञा से प्रकट होते हैं और वह प्रज्ञा रूपी भगवती ही मोह रूपी महिषासुर का नाश कर सकती है और कोई दूसरा साधन नहीं, यही पुराण की कथा का रहस्य है। आप लोगों ने आंज सत्संग में महिषासुर की कथा सुनी। महिषासुर का नाश करने के लिए दैवी सद्गुणों का संगठन, दैवी वृत्ति वालों का संगठन और उनके संगठन की शक्ति जब सक्रिय हो जायेगी तो महिषासुर रूपी दानव वृत्ति का अपने आप नाश हो जायेगा। अन्तर के महिषासुर को मारने के लिए समस्त सद्गुणों की स्रोतभूता प्रज्ञा, सात्त्विक बुद्धि, विशुद्ध बुद्धि अपने तेज से मोहरूपी महिषासुर का नाश करेगी।

आज के इस प्रसंग, देवी भागवत की इस कथा में मैंने आपको मूल बातें समझाई हैं कि एक मोहरूपी महिषासुर है और दूसरा दानवी वृत्तियाँ रूपी महिषासुर है, एक बाहर का और दूसरा अन्दर का महिषासुर है, एक आध्यात्मिक महिषासुर है दूसरा भौतिक महिषासुर। आध्यात्मिक और भौतिक, दोनों प्रकार के महिषासुर का नाश कैसे किया जाये? इसके लिए आधिदैविक महिषासुर की कथा है। पुराण में जो कथा है वह आधिदैविक है। आधिदैविक माने दिव्य शक्तियों से अर्थात् देवताओं से सम्बन्धित। यह आधिदैविक कथा आध्यात्मिक और आधिभौतिक दो रूपों में महिषासुर को हमारे सामने प्रकट करती है। हमारे यहाँ वैदिक विज्ञान में बताया गया है कि शास्त्र का अर्थ करो वा चिन्तन करो तो उसके तीनों भावों से सजग रहो—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

आध्यात्मिक उसे कहते हैं जो अपनी आत्मा से सम्बन्धित हो, आधिभौतिक वह है जो जगत् में अर्थात् बाहर है और आधिदैविक वह है जो न अन्दर है न बाहर है, दिव्य लोक में है। महिषासुर की कथा आधिदैविक है। दनु के पुत्र रम्भ और करंभ, रंभ के द्वारा महिषी से महिषासुर का जन्म, ब्रह्मा द्वारा वरदान और देवलोक पर विजय, देवताओं को जीतकर इन्द्रासन पर बैठना, देवताओं की सामूहिक शक्ति का प्रकट होकर महिषासुर का वध करना, यह आधिदैविक लोक का महिषासुर है। लेकिन उसी महिषासुर की सन्तानें जड़ बुद्धि से युक्त होकर के दुष्टात्माओं के रूप में पैदा होती हैं। जो समाज में आसुरी वृत्तियों के लोग हैं, जो समाज में अनाचार-अत्याचार करते हैं, उनको दूर करने के लिए समाज में जो दैवीशक्ति के लोग हैं, उनका संगठन हो जाये, उनकी तेज पुंज शक्ति एकत्रित हो जाये तो वे महिषासुर का वध करने में सक्षम हो सकते हैं। यह तो आधिभौतिक महिषासुर की कथा हो जायेगी और अपने अन्दर में मोहरूपी महिषासुर है, जो जड़ बुद्धि रूपी महिषी से पैदा हुआ है। इस महिषासुर ने समस्त देवताओं पर, समस्त दैवी शक्तियों पर शासन जमा रखा है। इस मोह रूपी महिषासुर पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने अन्दर जो समस्त सद्‌गुणों की अधीश्वरी प्रज्ञा है, सद्‌बुद्धि है, उस सद्‌बुद्धि रूपी भगवती की आराधना करनी होगी। उसके दिव्य तेज से ही यह मोहरूपी महिषासुर का नाश होगा, तब अन्दर शान्ति होगी। अन्दर और बाहर देवराज्य की प्रतिष्ठा हो, यही इस कथा का अभिप्राय है जो मैंने अभी आप लोगों को समझाया है। मुझे विश्वास है आप लोग चिन्तन और मनन करेंगे। अपने अन्दर दैवी सद्‌गुणों के संगठन का और बाहर दैवी वृत्ति के लोगों का संगठन करेंगे। ये दो प्रकार के संगठन जब तत्पर होंगे तभी आप विश्व को आसुरी शक्तियों से रहित बना सकते हैं और विश्व में दैवी राज्य की स्थापना कर सकते हैं और अपने अन्दर दैवी राज्य की स्थापना कर सकते हैं। यही इस कथा का सार है।

हरि ॐ तत्सत्।

५

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् का मंगलमय विधान आप सभी के लिए कल्याणप्रद हो, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना है। आज हमारे इस ज्ञान सत्र का पाँचवां दिन है। आप लोग चार दिनों में बहुत सी बातें सुने। अभी आगे भी हमें बहुत सी बातें बतानी हैं। मेरा प्रयत्न यही है कि आप सभी शाश्वत सनातन धर्म के मूल अभिप्राय को समझ लें जिससे आपको अपने में स्वाभिमान और आत्म गौरव प्राप्त हो। धर्म, संस्कृति और सभ्यता मनुष्यता के मूल आधार हैं। जिस जाति, समाज और देश के पास उन्नत धर्म नहीं है, उत्तम संस्कृति नहीं है, उज्ज्वल इतिहास नहीं और व्यवस्थित सभ्यता नहीं है, वह जाति, समाज और देश गौरव के साथ, स्वाभिमान के साथ इस संसार में जीवित नहीं रह सकता। जीने के कई तरीके हैं। पशु, पक्षी भी जी रहे हैं। वे मनुष्य भी जी रहे हैं जिनका जीवन उनके अपने लिए भी अभिशाप है, जो दुनिया में होते हुए भी नहीं के समान हैं लेकिन जीवन सार्थक उन्हीं का है जो मानवता के हित में जीते हैं और अपनी साधना, तपश्चर्या और अनुसंधान से मानवता के लिए कुछ देकर जाते हैं। गंभीरता से विचार किया जाए तो प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि मनुष्यता की प्रथम किरण सूर्य की किरणों के समान ही पूर्व से उदय हुई। एक नहीं, अनेकों विद्वान् जो भारत के हितैषी नहीं बल्कि

भारतीय संस्कृति-सभ्यता के शत्रु के रूप में भारतीय साहित्य के अनुसंधान में प्रवृत्त हुए थे, उनका कथन, उनकी अनुभूति, उनके अनुसंधान का परिणाम है कि भारत वह देश है, जिसने विश्व की मानवता को सभ्यता और संस्कृति, दर्शन और नीति, जीवन जीने का विधान और कला सिखाई है। हम और आप जन्म से ही उस महान् संस्कृति और धर्म के उत्तराधिकारी हैं। हमें इसका गौरव है कि हम भारतीय हैं और हिन्दू हैं। हिन्दू होने का हमें जितना गौरव है, हमने उसे एक पुस्तिका में लिखा है। मुझे विश्वास है कि यदि आप लोग अपनी गरिमा, अपनी महत्ता और अपने अतीत की उपलब्धियों का अध्ययन करेंगे, देखेंगे, जानेंगे तो उतना ही गौरव आपको अपने पर होगा जितना कि हमें है।

दुनिया में केवल एक ही धर्म है जो वर्तमान के विज्ञान को अनुमति देता है निरीक्षण और परीक्षण का। वह बड़े दृढ़ता के साथ कहता है कि हमारे अनुसंधान में, हमारी तर्कना में, हमारी साधना में यदि कहीं तुम्हें कुछ त्रुटि दिखाई देती हो तो उसका निरीक्षण और परीक्षण बड़े आराम से कर सकते हो। आप लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि जब दुनिया की मनुष्यता सोई हुई थी, अभी उसने उठ कर खड़े होने की शक्ति प्राप्त नहीं की थी, उस समय भारत में तर्क-शास्त्र का आविर्भाव हुआ था। हमारे यहाँ छः दर्शनों में एक दर्शन है जिसका काम ही विवेचन करना है, बुद्धि का प्रयोग करना है, खण्डन-मण्डन करना है, ऊहापोह करना है; उसको तर्कशास्त्र कहते हैं। बोल-चाल की भाषा में उसका नाम न्याय-दर्शन है। हमारे यहाँ एक दर्शन है जो केवल शब्द की मीमांसा करता है जिसको 'स्फोटवाद' कहते हैं। इस दर्शन का उदय आज से हज़ारों वर्ष पूर्व हुआ था। हमारे यहाँ एक दर्शन है जिसने आज से हज़ारों वर्ष पूर्व अनुसंधान करके बताया कि समस्त सृष्टि का मूल आधार केवल परमाणु है। परमाणुओं के संघात से ही सृष्टि होती है और परमाणुओं के विघात से ही प्रलय हो जाता है, उसका नाम वैशेषिक दर्शन है। हमारे यहाँ एक ऐसा दर्शन आया जिसने उस परमाणु के भी कारण को ढूँढा, उसने अनुसंधान करके बताया कि परमाणु स्वयं में कारण नहीं हैं, वे भी कार्य हैं। जिनके ये कार्य हैं, वे भी अव्यक्त त्रिगुण हैं, उस दर्शन का नाम सांख्य दर्शन है। हमारे यहाँ एक और दर्शन आया, ऋषियों ने अनुसंधान करके उससे भी आगे पहुँच करके एक परम तत्त्व का पता लगाया। उसने घोषणा की कि नहीं यह जो नानात्त्व है, यह कुछ नहीं है। एक ही शक्ति अनेक रूपों में प्रकट हुई है, **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानाति किंचन्'**। इसे वेदान्त दर्शन कहते हैं।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भारतीय ऋषियों ने किसी बात को माना नहीं, अनुसंधान किया है। कल्पना नहीं की, उन्होंने तर्क किया। आँख मूंद करके स्वीकार नहीं किया बल्कि उसकी गहराई तक पहुँचने के लिए साधना की, इसलिए आज के युग में जहाँ विज्ञान के आघात से, विश्वास के आधार पर टिके हुए धर्म दिनोंदिन छिन्न-भिन्न होते जा रहे हैं, जहाँ पर बुद्धिवादी लोग अनेक प्रकार के दूषण निकाल कर उन धर्मों की दुर्गति कर रहे हैं, उसको दफना रहे हैं, वहाँ पर हिन्दू धर्म दिनोंदिन विश्व में प्रकाशित हो रहा है। आज दुनिया में हिन्दू धर्म का जो प्रभुत्व है, वह इसलिए नहीं है कि हिन्दू मिशनरी के पास बहुत सा धन है, लोगों को प्रलोभन देकर उनको हिन्दू बना रहे हैं या हिन्दू मिशनरी के पास बन्दूक की गोली है, तलवार की नोक है जिस पर धमका कर, डरा कर लोगों को हिन्दू बना रहे हैं। यह कुछ नहीं है। क्या है? आप मुझे देख रहे हो न? बगल में एक झोली और दो कपड़े। हिन्दू मिशनरी के पास यही धन हैं। एक झोली जिसमें उसकी दो पुस्तकें रहती हैं–गीता और उपनिषद् और दो कपड़े, एक कमर पर बाँधने के लिए और एक गले में डालने के लिए। इसके सिवाय हमारे पास कुछ नहीं है लेकिन जब दुनिया के सामने खड़े होते हैं तो हमारे पास एक अमूल्य निधि है। जानते हो उसे क्या कहते हैं? उसे कहते हैं, अपने विरासत में प्राप्त हुआ वैदिक विज्ञान। उस वैदिक विज्ञान पर हमें गौरव है। हमारे भारतीय ऋषि के पास साधना का बल है। उसके पास अपनी बुद्धि का प्रकाश है; इसलिए वह दुनिया के सामने खड़े होकर आवाहन करता है कि यदि तुम्हें अपनी बुद्धि पर गर्व हो, यदि तुम्हें अपने निरीक्षण वा परीक्षण पर गर्व हो तो बड़े प्रेम से उसके पास आओ। एक बात मैं हमेशा कहा करता हूँ, विदेशियों को भी मैं यह बात बताता हूँ कि यदि कोई मरने के बाद स्वर्ग जाना चाहे तो हमारे पास उसके लिए कोई उपाय नहीं, हमारे पास उसके लिए कोई एजेन्सी नहीं है लेकिन यदि तुम जीते जी अपने जीवन को स्वर्गमय बनाना चाहते हो तो मेरे पास आओ, मैं तुम्हें वह विधा बताऊँगा जिससे तुम जीते जी अपने जीवन में स्वर्ग उतार सकते हो। वैदिक विज्ञान यह मानता है कि जिसके जीवन में स्वर्ग नहीं है, उसे मरने के बाद स्वर्ग नहीं मिलेगा। यह हमेशा याद रखो ''**या मति सा गति**'', जैसी तुम्हारी मति है वैसी गति होगी। उसमें कोई परिवर्तन नहीं आने का। यदि जीते जी तुम्हारा जीवन नारकीय है तो मर कर तुम स्वर्ग में जाओगे, इसका भारतीय दार्शनिकों को विश्वास नहीं है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि आप भाग्यशाली हैं कि उस महान्

वैदिक विज्ञान को आप अपनी विरासत में प्राप्त किए हैं। उसके लिए बहुत तप, बहुत त्याग और बहुत बलिदान हुआ है। सात सौ वर्ष तक मुसलमान भारत की धरती पर रहे और उन्होंने ढूंढ-२ करके हमारे धर्म शास्त्रों की होली जलाई। अभी दुनिया के लोग, आ, ई नहीं जानते थे, A, B, C नहीं जानते थे, उस समय भारत में तीन विश्वविद्यालय थे—तक्षशिला, नालन्दा और विक्रमशिला। ये तीनों विश्वविद्यालय उस समय ऐसे थे जहाँ पर जर्मन के विद्यार्थी पढ़ने के लिए जाते थे। उस विश्वविद्यालय में रोम के, मिस्र के, सीरिया के और यूनान के विद्यार्थी पढ़ने के लिए जाते थे, अध्ययन किया करते थे। यह मैं आज की कहानी नहीं सुना रहा हूँ, यह मैं दो-ढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व का इतिहास बता रहा हूँ जबकि दुनिया के लोग जानते नहीं थे कि ज्ञान क्या होता है और विज्ञान क्या होता है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इंग्लैंड जो सारी दुनिया पर शासन करता रहा, इसका सारा का सारा मूल इतिहास पन्द्रह सौ वर्षों का भी नहीं, यह तो टापू का इतिहास है, इंग्लैंड तो राष्ट्र रूप में केवल चार सौ वर्ष पूर्व आया था। प्रथम एलिजाबैथ के जमाने में यह एक राष्ट्र का रूप ग्रहण किया। इससे पूर्व वहाँ पर अलग-२ वर्ग के ट्राईब्ज़ थे, जो आपस में लड़ते थे और एक-दूसरे को मारते थे। राष्ट्र नहीं था यह। उससे पूर्व नौ सौ वर्षों से वहाँ पर बस्ती थी। पन्द्रह सौ वर्ष पहले वहाँ पर कुछ गाँव के लोग आये थे, जिसको बिट्रेन कहते हैं, वह बर्तानिया एक गाँव है जर्मनी के बगल में, वहाँ से लोग आकर इसमें बसे थे। वहाँ पर जो पुरानी जाति थी, वे ड्रयूड लोग थे, जो वहाँ रहा करते थे, जो सूर्य के पुजारी थे। आजकल के इतिहासकार कहते हैं कि वे मूल भारतीय थे लेकिन वह सारी कहानी की कहानी रह गई।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भारतीय तत्त्व विज्ञान जो अब तक बचा है, वह बड़ी तपस्या से बचा है। उसके लिए बड़े बलिदान हुए हैं और आज भी हो रहे हैं। आपको एक अपनी घटना सुनाऊँ। मैं प्रारम्भ में १९७२ में जब इंग्लैंड आया, हिथरु हवाई अड्डे पर उतरा और इमीग्रेशन आफिस में गया, तो सबसे पहले मेरे से पूछा कि आपके पास पैसे कितने हैं? मैंने उनसे पूछा कि हमारे पास पैसे नहीं होते। क्यों नहीं होते? मैं संन्यासी हूँ। आपका वेतन क्या है? मुझे हँसी आ गई। मैंने उनसे कहा-वेतन माने क्या? आप महीने की कितनी तनख्वाह लेते हैं? मैंने उनसे कहा कि मैंने आपको बताया कि हम संन्यासी हैं। संन्यासी माने क्या? Are you not preacher? Yes, I am preacher. आप तनख्वाह नहीं पाते? मैंने उनसे कहा कि हम हिन्दू संन्यासी हैं। हिन्दू

संन्यासी माने? मैं क्रिश्चियन पादरी नहीं हूँ जो वेतन पर काम करते हैं। उसने मेरे से कहा कि ऐसा लगता है कि आप पढ़े लिखे हो? मैंने कहा, जी हाँ। उसे बड़ी हैरानी हुई कि क्या हिन्दू संन्यासी वेतन नहीं लेता? हमने कहा, हिन्दू संन्यासी किसी का नौकर नहीं होता इसलिए वह वेतन क्या लेगा? उसके लिए बड़े आश्चर्य की बात थी।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि आज भी भारत में ऐसे विद्वान् हैं, ऐसे महात्मा हैं जो अनेकों विषयों के पंडित हैं, अनेकों विषयों के आचार्य हैं लेकिन उनके पास नाम-मात्र का केवल दो वस्त्र और एक झोली होती है। इससे अधिक उनकी कोई सम्पत्ति नहीं होती। जिन गुरुदेव के चरणों में मैं बैठकर पढ़ा हूँ, वे अनेकों विषयों के महान् विद्वान् थे। मैं कभी-२ बैठ कर कल्पना करता हूँ। जब मैं उनके पास पढ़ने गया तो उनकी आयु ८५ वर्ष की थी। आप ज़रा कल्पना कीजिए। उस समय उनको इतना पता था कि अमुक शास्त्र के अमुक पन्ने में अमुक लाइन में यह शब्द लिखा हुआ है, हम लोगों को पढ़ाते समय ऐसा निर्देश करते थे। पच्चासी वर्ष की आयु में उनकी इतनी स्मृति थी। उन्होंने १०९ वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा। आज भी भारत में ऐसे-२ विद्वान् हैं। इतने महान् विद्वान् होने पर भी एक झोंपड़ी में सारी आयु रहे क्योंकि उनके गुरु उनको वहाँ बिठा कर गये थे और वे जीवन भर उसी झौपड़ी में रहे। लोगों ने बहुत कहा, गुरुदेव! आपको सुन्दर कुटिया बना देते हैं। उन्होंने कहा—नहीं, यह मेरे गुरु का प्रसाद है, हमें इसी में रहना है। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि हिन्दू धर्म में जो वैदिक विज्ञान अब तक जीवित है, वह केवल गीत गाने से जीवित नहीं रहा, उसके लिए बड़े-२ बलिदान हुए, तपश्चर्यायें हुई हैं। आज भी भारत में ऐसे-२ विद्वान् हैं जिनको चारों वेद कंठस्थ हैं। आज भी कुछ ऐसे ग्रन्थ हैं उनको यदि फूँक दिया जाये, समाप्त कर दिया जाये तो मैं उनको लिखवा सकता हूँ। शब्द प्रति शब्द मुझे पूर्ण रूप से याद है। ऐसे अनेकों विद्वान् भारत में हैं, यह कोई नयी बात नहीं है। इसलिए मैं बता रहा था कि आप लोग भाग्यशाली हैं कि आपकी इस जाति में, हिन्दू समाज में जिसमें प्राचीन काल से ऋषियों की यह दिव्य परम्परा चली आ रही है, तत्त्व ज्ञानियों की यह परम्परा चली आ रही है। उनमें कभी न्यूनता आ जाती है और कभी वृद्धि हो जाती है, इतना जरूर है। न्यूनता माने कभी संख्या कम हो जाती है और कभी वातावरण सुन्दर होता है तो उनकी संख्या अधिक हो जाती है। कभी वो दिन भी था जबकि भारतीय विद्वान् कहते थे कि समुद्र के पार जाओगे तो भ्रष्ट हो जाओगे और वही भारतीय विद्वान् यह

कहते हैं कि तुम मेरे पास आओ, मैं तुम्हें योग्य बनाऊँ, तुम समुद्र पार जाओ और अपना काम करो। विद्वान् वही हैं। वो जानते थे कि तब का समय ऐसा था। समुद्र पार जाने में क्यों प्रतिबन्ध लगा दिया था, आप जानते हो ? उन दिनों अरबों की बड़ी शक्ति थी और जो भी समुद्र पार जाते थे, पकड़ करके जबरदस्ती उनके मुँह में गाय का माँस डाल देते थे, जिससे ये अपने आपको भ्रष्ट समझ लें और मुसलमान हो जायें। अब ऐसा समय नहीं है। अब तो कोई अपनी रुचि से भले गौ मांस तथा कुछ भी अभक्ष्य भक्षण करे किन्तु जबरदस्ती कोई भी किसी को खिलाने वाला नहीं है। सभी अपना काम करने में स्वतन्त्र हैं और अपने धर्म की पालना करने में स्वतन्त्र हैं।

आप अब इस देश में रहते हो, यहाँ रहते हुए आप यदि साधन, स्वाध्याय करें तो मेरे विचार से आप के ऊपर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। इसी प्रकार से समयानुसार हमारे यहाँ ऋषियों ने धर्म के लिए कुछ नियम बनाये लेकिन जिन ग्रन्थों में यह नियम बने, उन ग्रन्थों को स्मृति कहते हैं, वो ग्रन्थ श्रुति नहीं हैं। सनातन धर्म का आधार स्मृति नहीं, श्रुति है। "**प्रमाणं परमं श्रुति**", ऐसा स्मृतिकारों ने भी लिखा है। "**वेदो अखिलो धर्म मूला**" वेद ही समस्त धर्मों का मूल है। वेद में कोई परिवर्तन नहीं होता, श्रुति में कोई परिवर्तन नहीं होता, वह पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्त से युक्त है। स्मृतियाँ समय-२ पर बनाई जाती हैं, उनके विधान बदलते रहते हैं। आज से पूर्व जो स्मृति का विधान था, आज वह नहीं है। हम उसे स्वीकार नहीं करते। हम कहते हैं, चलो यह तुम्हारे काम की नहीं रहा अब। पुराण की कथायें नई-२ बनायी जाती हैं, उनमें समयानुसार उनकी व्याख्या में, उनके विश्लेषण में हम परिवर्तन करते रहते हैं लेकिन श्रुति में कोई परिवर्तन नहीं होता। वेद अटल है। वेद की व्याख्या करने के जितने साधन हैं, वे समयानुसार परिवर्तित होते रहते हैं।

हिन्दू धर्म एक ऐसा धर्म है जो अपने आपको युग के अनुरूप जीवन जीने की दिशा देता है। यह उसकी विशेषता है। यही कारण था कि सात सौ वर्ष तक मुसलमान रहे तब भी हिन्दू धर्म जीवित रहा। दो सौ वर्ष तक ईसाई, अंग्रेज राज्य किये तब भी हिन्दू धर्म जीवित रहा और आज तो वह अपने में प्रफुल्लित है और दिनों-दिन अपने प्रकाश को विश्व में बिखेर रहा है। दुनिया के जो वर्तमान के भविष्य-वक्ता हैं, उनका यह कथन है कि केवल दस, पन्द्रह वर्षों में सारे विश्व में हिन्दू धर्म का पताका फहराया जाएगा अर्थात् हिन्दू धर्म की प्रभुता प्रतिष्ठित होगी। यह विदेशी विद्वानों की राय है, अपने लोगों की नहीं। ऐसा क्यों

है, जानते हो? हमारे ग्रन्थों का अपना प्रभुत्व है, इसमें हमारा कोई बल नहीं है, इसमें दूसरे की कोई महिमा नहीं है। आप देखिए, योंग हमारी एक प्रक्रिया है। दुनिया का कोई ऐसा देश है जहाँ पर योग का प्रचार न हो, सब जगह है। योग जानते हो क्या है? योग हिन्दू धर्म की रीढ़ की हड्डी है, जिसे स्पाईनल कार्ड कहते हैं। जैसे आपके शरीर की आधार–भूमि स्पाईनल कार्ड है इसी रूप से योग हिन्दू धर्म का स्पाईनल कार्ड है अर्थात् रीढ़ की हड्डी है। योग के अभाव में हिन्दू धर्म की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उस योग की व्याख्या करने के लिए अठारह अध्याय गीता, एक सौ आठ उपनिषद्, सांख्य, योग, न्याय, वेदान्त आदि ग्रन्थ और सारे पुराण हैं। योग की महत्ता सर्वोपरि है। आप देखिए, इस योग का पूर्ण रूप नहीं बल्कि उसका एक अंश सारी दुनिया में अपना प्रभुत्व जमाए हुए है। उसके बहिरंग की इतनी महता है, यदि उसके अन्तरंग में लोग पहुँच जायेंगे तब क्या समझेंगे? तब इनकी क्या गति होगी, ज़रा कल्पना कीजिए? अभी तो इन्होंने केवल आसन, प्राणायाम की महिमा समझी है, इससे आगे उनको धारणा, ध्यान, समाधि की कल्पना नहीं है। यदि कहीं सौभाग्य से किसी का उसमें प्रवेश हो जाए फिर वह क्या समझेगा? क्या अनुभव करेगा, यह तो वही जाने! इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि यह तो वैदिक विज्ञान का एक अंश है, जिसका विश्व में प्रकाश हो रहा है।

दूसरा अंश उसकी फिलॉस्फी है, उसकी तार्किक शक्ति है, उसका गीता का विज्ञान है, कर्म की मीमांसा है, भक्ति की मीमांसा है। इतनी महिमा होते हुए भी दुर्भाग्य से आज भी कुछ लोग इस धर्म की महता को न जान कर, इस धर्म की प्रभुता को न समझ कर इसके विपरीत अपना आचार और विचार रखते हैं, इसके लिए क्या कहा जाए? एक बात याद रखिए, आपके पास भोजन की सारी सामग्री उपस्थित हो और उस सामग्री के सौंदर्य पर, शुद्धता पर, उसकी Richness पर आपको गौरव हो, लेकिन केवल उपस्थित होने मात्र से आपकी भूख नहीं मिटेगी, आपकी सेहत नहीं बनेगी। घी, मक्खन, दूध, सुन्दर पकवान के साधन आपके चारों तरफ रखे हों तो उससे आप सेहतमन्द हो जायेंगे? मेरा विश्वास है नहीं। जब तक उसको पकाने, खाने और हजम करने के तरीके आपको नहीं आते, तब तक उनका होना न होना आपके लिए बराबर है। इसी रूप से आपके पास वैदिक विज्ञान है, दर्शन है, अनेकों इतिहास, पुराण हैं, अनेकों उत्तम चरित्र और आदर्श हैं लेकिन जब तक उन समस्त तत्त्वों को आप आत्मसात करने के लिए तैयार नहीं होंगे तब तक उनसे आपकी पूर्ति नहीं हो सकती, कभी नहीं हो

सकती, मेरी बात हमेशा याद रखना। आप लोगों को जो सनातन धर्म के सिद्धान्त से सम्बन्धित बातें बताई जा रही हैं, उनका यह उद्देश्य है, उनके पीछे यह धारणा है कि आप केवल अपने अगल-बगल के वैभव की जानकारी से, अपने साहित्य, सभ्यता और धर्म की महत्ता की जानकारी मात्र से अपने आपको तृप्त न समझें बल्कि उसे अपने जीवन में उतारने की कोशिश करें।

कल मैंने आप लोगों को एक बात समझाई थी कि हमारे यहाँ वैदिक साहित्य की व्याख्या करते समय तीन प्रकार के दृष्टिकोण अपनाए जाते हैं— आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक! आध्यात्मिक माने अपने जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित, आधिभौतिक माने जागतिक घटनाओं से सम्बन्धित और आधिदैविक माने जगत् और जीवन दोनों के आधार रूप उस दिव्य लोक से सम्बन्धित, जिसके द्वारा इन दोनों में अनेक प्रकार की क्रियायें और घटनायें घट रही हैं। ये तीनों बातें आप लोग समझ लें। महिषासुर का चरित्र कल मैंने इन तीनों दृष्टियों से आप लोगों को समझाया था। महिषासुर मोह है, दूसरा महिषासुर तामसिक वा पाशविक वृत्ति है और तीसरा महिषासुर एक दैत्य हुआ है जो इस लोक में नहीं अधिदेवलोक में है, ये तीन दृष्टिकोण हैं। मोह को जब महिषासुर मानेंगे तो अपने अन्दर उसे मारने की कोशिश करेंगे और तामसिक वृत्तियों को जब महिषासुर मानेंगे तो समाज में फैली हुई तमोगुणी वृत्तियों को दूर करने की कोशिश करेंगे। इन दोनों को दूर करने का साधन क्या है, इसको जानने के लिए अधिदैव महिषासुर और अधिदैविक उन साधनों को जानना पड़ेगा जिनसे देवताओं ने उस महिषासुर का वध किया था। उन्हीं साधनों को अपना कर आप अन्दर के और बाहर के महिषासुर का नाश कर सकते हैं, यह इसका अभिप्राय है। यही दृष्टिकोण इतिहास के प्रत्येक चरित्र के साथ जुड़ा हुआ है। भगवान् राम के चरित्र के साथ भी यही कहानी है। आत्मा राम है और यह सात्त्विक प्रज्ञा जिसको कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं, वह सीता है जो कि मोह रूपी रावण द्वारा आवृत है, हरी गई है। अशोक वृक्ष के मूल में सीता बैठी हुई है, चित्र में भी देखा होगा। ऐसे ही जो हमारे स्पाईनल कार्ड का मूलाधार है, यही अशोक वृक्ष है। इसको अशोक वृक्ष इसलिए कहते हैं कि आपको यह शोक से मुक्त कर सकता है। इस मनुष्य शरीर रूपी अशोक वृक्ष के मूल में, माने मूलाधार में वह सीता रूपी कुण्डलिनी शक्ति विराजमान है। अब तो उसको ढूंढने वाला साधक चाहिए। साधक कौन हो? हनुमान हों! हनुमान जब साधना में प्रवृत्त होते हैं तो उसे आसानी से प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि पहले तो उन्हें समुद्र लाँघना होता है।

समुद्र क्या है ? शरीराभिमान ! शरीराभिमान रूपी समुद्र को लांघना है, समुद्र पार करते समय उसके समक्ष एक नहीं, दो नहीं बल्कि तीन देवियाँ खड़ी होती हैं। एक कहती है खाऊँगी, दूसरी बिना कहे खाने को झपट पड़ती है और तीसरी कहती है तू तो मेरा आहार है, मैं तुम्हें खाने के लिए यहाँ आई हूँ। जो कहती है खाऊँगी, वह कौन है ? सुरसा। जो बिना कहे खाने को दौड़ती है, वह कौन है ? सिंहिका। जो कहती है तू तो मेरा आहार है, वह कौन है ? लंकिनी। एक नहीं, तीन-२ स्त्रियाँ, ये त्रिविध माया हैं—सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी माया, जो साधक के समक्ष सभी खाने के लिए ही आती हैं और खाने को तैयार हैं। इन सबसे बच कर निकलना, पुनः लंका में प्रवेश कर स्थान-२ पर सीता माँ को ढूँढना और ढूंढते हुए अशोक वृक्ष की जड़ में मूलाधार में पहुँच कर मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति रूपी सीता का साक्षात्कार करना, यह केवल हनुमान के वश की ही बात है। क्या समझे ? हनुमान वायु पुत्र हैं, प्राण की शक्ति ही वायु है और वायु की साधना के द्वारा, प्राणायाम की साधना के द्वारा यदि आपका आत्मबल पुष्ट हुआ है तभी आप हनुमान की तरह कुण्डलिनी शक्ति तक पहुँच सकते हैं, तभी आप इन मायाओं को जीत सकते हैं, तभी आप असुरों का संहार कर सकते हैं और तभी आप लंका में सीता दर्शन कर सकते हैं। यह एक आध्यात्मिक सीता की तलाश है। आधिभौतिक सीता की तलाश हनुमान ने की थी। समाज में एक और सीता है जिसको सामाजिक शान्ति कहते हैं, जिसको सामाजिक स्वतन्त्रता कहते हैं। हमारे यहाँ एक राष्ट्र रूपी सीता है, राष्ट्र की स्वतन्त्रता सीता है, उसको प्राप्त करने के लिए भी हनुमान की जरूरत है, उसके लिए भी बन्दरों और भालुओं की फौज की जरूरत है।

एक बात मैं और यहाँ पर आप लोगों को बता दूँ, सीता को ढूंढने के लिए केवल हनुमान ही नहीं गये थे, बहुत लोग गये थे। बहुत लोगों को यह पता लग गया था कि सीता लंका में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हैं किन्तु जो समुद्र पार करेगा वही सीता के पास जायेगा। उन वीर बन्दरों के लिए तुलसीदास जी लिखते हैं—

निज निज बल सब काहूँ भाषा।
पार जाइ कर संसय राखा॥

(रा० ५/२९-६)

सबने अपने-२ बल का वर्णन किया लेकिन सबने कहा कि हम पार नहीं जा सकते। अंगद ने बड़ा जोर लगाया, उसने कहा, मैं पार तो जा सकता हूँ लेकिन

लौटना कठिन होगा—

अंगद कहइ जाऊँ मैं पारा।
जिय संसय कछु फिरती बारा॥

(रा० ५/३०-१)

कहने का अभिप्राय है कि जो सीता की खोज के लिए निकला है, वह सीता को प्राप्त कर ही लेगा, ऐसा कोई नियम नहीं है। हो सकता है वह समुद्र के किनारे पर जाकर हार मान जाए। क्या समझे? जो साधक कुण्डलिनी की साधना में चला है, वह वहाँ पहुँच ही जाए, कोई जरूरी नहीं है। हो सकता है, वह शरीराभिमान रूपी समुद्र के सामने जाते ही हार मान जाये कि यह हमारे वश की बात नहीं है। इसी रूप से जो समाज की शान्ति के लिए निकले हुए हैं, वे शान्ति की प्रतिष्ठा कर ही देंगे, यह कानून नहीं है। हो सकता है समाज की अशान्ति के सामने, समाज के अत्याचार रूपी समुद्र के सामने वे हार मान जायें कि यह हमारे वश की बात नहीं है। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि अपने आप में आत्म विश्वास के साथ इस अध्यात्म विज्ञान के रहस्य को समझिये।

आज मैं आप लोगों को इस भागवत के माध्यम से एक और चरित्र सुनाने जा रहा हूँ। वह भी भगवती का चरित्र है। दुर्गासप्तशती में त्रिविध चरित्र की व्याख्या है—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। इन तीन देवियों से सम्बन्धित तीन चरित्र हैं—प्रथम चरित्र, उत्तम चरित्र और उत्तर चरित्र। उसमें प्रथम चरित्र मधु-कैटभ के वध से सम्बन्धित हैं। ब्रह्मा की प्रार्थना से मधु-कैटभ का वध करने के लिए भगवान् का आविर्भाव और भगवती के द्वारा विमोहित मधु-कैटभ का भगवान् के हाथ से विनाश, यह प्रथम चरित्र का रहस्य मैं बता चुका हूँ। दूसरा चरित्र महालक्ष्मी का है जिसमें महिषासुर का जन्म, उसकी शक्ति द्वारा देवताओं पर विजय, उसके अत्याचार द्वारा पीड़ित देवताओं की प्रार्थना से समस्त देवताओं के शरीर से उनकी शक्ति का पूंजीभूत होना और एक महाशक्ति के रूप में अभिव्यक्त होकर के महालक्ष्मी द्वारा महिषासुर का वध, जिसको उत्तम चरित्र कहते हैं। तीसरा चरित्र उत्तर चरित्र है। जिसमें शुंभ-निशुंभ, इन दो दानवों के अत्याचार से देव, मुनि, मानव सभी का संत्रस्त होना है। इनके घोर अत्याचार से पृथ्वी का व्यथित होकर के देवताओं की शरण में जाना और देवताओं का देवी को पुकारना और भगवती के शरीर से एक दिव्य शक्ति महासरस्वती का आविर्भाव और महासरस्वती के द्वारा शुंभ-निशुंभ का वध, यह तीसरा चरित्र है। इन्हीं तीनों चरित्रों का गान भगवती की आराधना में होता है, जिसे दुर्गासप्तशती कहते हैं,

इसमें देवी के तीनों चरित्रों का विवेचन है। सात सौ श्लोकों में दुर्गासप्तशती में वैदिक और तांत्रिक दोनों ग्रन्थ हैं। उसी के माध्यम से भगवती के तीनों चरित्रों का वर्णन होता है और उसी से भगवती की उपासना होती है। यह प्रक्रिया प्राचीनकाल से चली आ रही है। इन चरित्रों का वर्णन यद्यपि सप्तशती में मार्कण्डेय पुराण से लिया गया है लेकिन इसका वृहद् वर्णन श्रीमद् देवी भागवत में आता है और देवी भागवत के साथ ही कालिका पुराण तथा अन्य और भी ग्रन्थ हैं जिनमें इन चरित्रों का वर्णन किया गया है।

मैं आप लोगों को देवी भागवत के माध्यम से शुंभ, निशुंभ इन दोनों दैत्यों के वध की कथा सुनाने जा रहा हूँ। ये समस्त कथायें तीनों भावों से युक्त हैं। आपको एक और आश्चर्य की बात सुनाऊँ, प्रथम चरित्र में मधु और कैटभ दो दानव हैं और दूसरे चरित्र में केवल एक दानव महिषासुर है और उत्तर चरित्र में पुनः दो दानव आ जाते हैं-शुंभ और निशुंभ। इसका अभिप्राय जानते हो? मनुष्य के जीवन में पाँच शत्रु हैं, पाँचों बड़े प्रबल शत्रु हैं। दो एक साथ के हैं और दो एक साथ के हैं, बीच में एक रहता है। बीच वाला शत्रु कौन है? बीच वाला शत्रु मोह है। पहले (मधु, कैटभ) शत्रु काम और क्रोध हैं। अन्तिम शत्रु कौन हैं? मद और मत्सर। काम, क्रोध, मद, मत्सर-ये चारों शत्रु मोह की सन्तानें हैं, मोह से उत्पन्न होते हैं, मोह इसमें मूल होता है। इसीलिए दुर्गा सप्तशती में एक बड़ी मज़े क़ी बात बताई गई है कि यदि आप थोड़ा पाठ करना चाहते हैं तो आप प्रथम तथा उत्तर चरित्र छोड़ कर केवल उत्तम चरित्र का वा मध्य का ही अर्थात् महालक्ष्मी के चरित्र का ही पाठ करें। यदि आप महिषासुर वध का पाठ कर लेंगे तो आप को दोनों पाठों का फल मिल जायेगा। उसमें बताया गया है कि महिषासुर वध की कथा ही प्रधान चरित्र है, यह बड़े रहस्य की बात है।

मैं आप लोगों को शुंभ और निशुंभ के चरित्र के विषय में बता रहा था। देवी भागवत में इसके विषय में कुछ नहीं लिखा कि वे किसके लड़के थे और कहाँ पैदा हुए थे? उनके विषय में यही कथा आती है कि एक बार पाताल पुरी से शुंभ और निशुंभ नाम के दो दैत्य पृथ्वी पर आ गये। मद और मत्सर, दोनों कहाँ से आते हैं? कल्पना कीजिये आपकी निम्नतम वृत्तियों से। मनुष्य की वृत्तियाँ जब निम्नतम हो जाती हैं तो उसे अपनी छोटी सी बात पर भी बड़ा अहंकार होता है। उसका मद इतना हो जाता है कि वह सोचता है कि बस मैं ही हूँ और दूसरा कोई है ही नहीं। मेरे सिवाय दूसरा कौन हो सकता है?

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।

(गीता १६/१४)

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।

(गीता १६/१५)

वह कहने लगता है ''मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही बलवान हूँ, मैं ही सुखी हूँ, मेरे सिवाय दुनिया में कौन है?'' प्रत्येक चरित्र में ऐसे ही मिलता है। दानवों के चरित्र को पढ़िये तो आपको जोड़े ही दिखाई देते हैं। कहीं-२ कोई अकेला दानव मिलता है जैसे महिषासुर अकेला था। नहीं तो रावण-कुम्भकरण, जय-विजय के द्वारा हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्युप, इसी रूप से द्वापर में आकर वक्रदन्त और शिशुपाल, यानी जहाँ भी आप देखेंगे मूल में दो दानव पैदा हुए, मधु और कैटभ दो ही मिलेंगे। इसी रूप से यहाँ दो पैदा हुए शुंभ और निशुंभ। दोनों भाई हैं। मद और मत्सर दोनों एक ही माँ की सन्तान हैं। मद माने 'मैं' और मत्सर जानते हो किसे कहते हैं? डाह, ईर्ष्या को। जब 'मैं' होता है, 'मैं' के बराबर कोई दिखाई दे जाये तो नीचे से लेकर ऊपर तक आग लग जाती है। यह कहाँ से आ गया है? यह क्यों आ गया है? इसको कहते हैं-डाह, मत्सर, ईर्ष्या। इन दोनों में 'मद' बड़ा है और मत्सर छोटा है। दोनों हैं भाई। मद को आँख नहीं होती, ज्ञान नहीं होता, वहाँ तो अन्धापन होता है। उसी मद से कामना का जन्म होता है, अनेक प्रकार के अनर्थों का जन्म होता है। उसी मद को अहं भी कहते हैं। शुंभ और निशुंभ, ये दोनों एक ही माँ की सन्तान हैं, पृथ्वी पर आकर इन्होंने अपना डंका बजाना शुरु किया। ब्रह्मा के द्वारा इन्हें वरदान मिला है। दैत्य जितने वरदान पाते हैं ब्रह्मा के द्वारा ही पाते हैं। दूसरा कौन देगा? ब्रह्मा या शंकर, ये दोनों ही वरदान देते हैं। जितने दैत्य हुए हैं उनको ब्रह्मा ही वरदान क्यों देते हैं? कल मैंने बताया था कि कर्म का अटल सिद्धान्त है कि जो करेगा उसे मिलेगा। मिलने के पश्चात् चाहे वह उसका सदुपयोग करे वा दुरुपयोग करे। आप कुँआं खोदेंगे तो आपको पानी मिलेगा। आप लोगों को चाहे पानी में मिश्री डाल कर शरबत पिलायें या जहर घोल कर लोगों को विष पिलायें, यह आपके ऊपर निर्भर है। कुँआं खोदें और आपको पानी न मिले, ऐसा नहीं हो सकता। पानी का प्रयोग आप किस रूप में करेंगे, इसमें कुँआं जिम्मेदार नहीं है। क्या समझे? इसी प्रकार से आप तपस्या करेंगे, साधना करेंगे तो आपको वरदान मिलेगा, शक्ति मिलेगी। उस प्राप्त शक्ति का प्रयोग आप किस रूप में करेंगे? इसके जिम्मेदार आप हैं, विधाता नहीं है। उसने तो आपके कर्मानुसार फल दे दिया। देवी भागवत में एक श्लोक है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

जो शुभ और अशुभ कर्म तुम कर रहे हो, उसका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा। दुनिया की कोई ताकत तुम्हारे फल को बदल नहीं सकती। इसलिए शुंभ-निशुंभ को ब्रह्मा द्वारा वरदान मिला, उसने वरदान में मदान्ध होकर सारी दुनिया को जीत लिया। देवता लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। देवताओं ने व्यथित होकर आपस में सलाह किया। उन्हें स्मरण हो आया कि भगवती ने हमें वरदान दिया था कि जब तुम लोगों पर संकट आए तो मुझे याद कर लेना। देवता लोग भगवती की उपासना वा आराधना करने लगे—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मः ताम्॥

(देवीसूक्त १)

देवी की प्रार्थना वा स्तुति करने लगे। स्तुति सुनते ही वहाँ पर भगवती उमा आकर खड़ी हो गई। भगवती उमा ने कहा-देवताओ! तुम किसकी आराधना कर रहे हो? किसे पुकार रहे हो? इतने में भगवती उमा के शरीर से ही एक दिव्य शक्ति प्रकट हो गई, जिसका नाम था महासरस्वती। महासरस्वती ने प्रकट होकर कहा, ये मेरी उपासना कर रहे हैं, मेरे को पुकार रहे हैं। भगवती ने पूछा— देवताओं तुम्हें क्या कष्ट है? उन्होंने कहा, भगवती! तुम अन्तर्यामिनी हो, सब कुछ जानती हो, तुम से क्या छिपा हुआ है? शुंभ-निशुंभ के अत्याचार से पृथ्वी काँप रही है, हम लोग अपने धर्म-कर्म के काम को नहीं कर पा रहे हैं, हम तुम्हारी शरण में हैं। भगवती ने कहा—अब तुम लोग चले जाओ। शुंभ-निशुंभ के साथ क्या करना है, यह मेरा काम है। देवता लोग शान्त होकर लौट गए। भगवती ने अपनी सवारी के लिए अपना वाहन (एक शेर) प्रकट किया और उस पर बैठ गई। जिस शरीर से प्रकट हुई थी, वह कालिका थी। उस कालिका को कहा, तुम मेरे साथ आओ, दोनों देवियाँ आगे-२ चल पड़ीं। शेर पर बैठी हुई भगवती और उसके साथ काली, ये दोनों जाकर शुंभ-निशुंभ के नगर के बगल में विश्राम करने लगीं। अचानक ही शुंभ-निशुंभ का एक सेवक भगवती को देख कर विमोहित हो गया। इतना सुन्दर स्वरूप उसने कभी देखा ही नहीं था। महामाया जगत् जननी के स्वरूप का कौन वर्णन कर सकता है! वह स्वरूप को देखकर विमुग्ध हो गया। दौड़ा हुआ शुंभ-निशुंभ के पास गया और कहा— राजन! आज हमने एक अद्भुत स्वरूप को देखा है। दोनों ने पूछा—कैसा अद्भुत स्वरूप देखा है, बताओ तो सही, इतने घबराए हुए क्यों हो? उसने

कहा—घबराया हुआ नहीं हूँ, मैं तो इतना प्रसन्न हो गया हूँ कि मेरे से बात भी नहीं हो रही। शुंभ-निशुंभ ने पुनः पूछा—बताओ बात क्या है? उसने कहा—आज मैंने एक ऐसी सर्वाङ्ग सुन्दरी देखी है; दुनिया में उसके समान कोई दूसरी सुन्दरी नहीं हो सकती। फिर उसने कहा, राजन! आपने दुनिया भर के रत्नों को जीत कर अपने अधीन कर लिया है, इसी प्रकार स्त्री भी तो एक रत्न हैं। स्त्री रूपी रत्न इतना अमूल्य है जिसके बराबर दुनिया में कोई रत्न है ही नहीं। वह आपके अधीन न हो, यह बड़े आश्चर्य और दुःख की बात है। निशुंभ कहता है कि यदि तुम इतनी सुन्दर समझते हो तो जाकर उससे कहो कि वह जाकर शुंभ को पति रूप में वरण कर ले, शुंभ उसे चाहता है। उसने सुग्रीव नाम के एक दूत को भेजा। सुग्रीव दूत बन करके आया और उसने भगवती को अपने राजा शुंभ की बात कही। कहा—हे कमल लोचने! तुम्हारे ऊपर हमारा राजा प्रसन्न है। दुनिया का समस्त वैभव इस समय हमारे महाराज के हाथ में है और दुनिया के समस्त रत्नों के वे अधिपति हैं। तुम स्त्री रूपी रत्न हो इसलिए यदि तुम विश्व में महारानी बन कर रहना चाहती हो तो हमारे सम्राट को तुम पति रूप में वरण कर लो। भगवती मुस्कराने लगी। उसने कहा—दूत! तुम्हारी सलाह बहुत अच्छी है, मुझे बहुत प्रिय लगी है। मैं भी इसीलिए यहाँ पर आई हूँ लेकिन मेरी एक मजबूरी है। दूत ने पूछा—तुम्हारी क्या मजबूरी है? भगवती कहती हैं कि बालपन में जब मैं अपनी सखियों के साथ खेलती थी तो मैंने एक प्रतिज्ञा कर ली। उसने पूछा—क्या प्रतिज्ञा कर ली?

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥

''जो मुझे संग्राम में जीत ले, जो मेरे दर्प को चूर कर दे और जो मेरे समान बलवान् होगा, वही मेरा पति होगा। भगवती ने कहा कि बालपन में मैंने हठवश प्रतिज्ञा कर ली है।'' सुग्रीव हँसने लगा और कहा—अरे कोमलाङ्गी! हवा के लगने से तुम्हारा शरीर हिल रहा है, तुम्हारे शरीर पर धूल पड़ती है तो वह कुम्हला जाता है, इतने सुकोमल शरीर वाली होकर, तुम युद्ध की बात कर रही हो? वाह, मजाक कर रही हो? भगवती कहती है—नहीं, अपने राजा से जाकर कह दो,यदि वह पत्नी रूप में मुझे चाहता है तो मेरे साथ युद्ध करके फैसला कर ले। दूत ने कहा—नहीं, तुम्हारे साथ युद्ध कौन करेगा? भगवती कहती हैं, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

वह दूत जाकर शुंभ से कहता है कि भगवन्! सुन्दरी तो बहुत उत्तम है किन्तु उसने एक पागलपन की बात की है। क्या पागलपन की बात की हैं? दूत

ने कहा कि वह कहती है कि जो मेरे साथ युद्ध में विजयी हो, जो मेरे दर्प को चूर करे और जो मेरे समान बलवान् हो, वह मेरा पति हो। आपको युद्ध के लिए आमन्त्रित कर ी है। शुंभ हँसने लगा, उसने अपने धूम्रकेतु नाम के दूत को बुलाया और कहा—तुम उस सुन्दरी से जाकर कहो कि महाराज तुम्हें चाहते हैं, सीधे होकर चलो। यदि वह न आये तो तुम उसके बाल पकड़ कर, खींच कर मेरे पास ले आना लेकिन उसे मारना नहीं। धूम्रकेतु जाकर पहले तो देवी से प्रार्थना करता है। जब देवी अपनी प्रतिज्ञा दुहराती है तो कहता है कि राजा ने आज्ञा दी है कि मैं तुम्हें जबरी ले आऊँ। यदि तुम सीधे होकर नहीं चलोगी तो तुम्हारे केश पकड़ कर ले जाऊँगा। इतना सुनना था कि देवी के जोर से 'हुँ' शब्द के उच्चारण मात्र से वह भस्म हो गया। धूम्र के भस्म हो जाने पर उसके साथ गये हुए दैत्यों ने आकर बताया कि वह तो केवल हुँकार से ही भस्म हो गया। उसके बाद चण्ड-मुण्ड को भेजा कि तुम जाकर देखो, वह कौन है? चण्ड-मुण्ड जाकर देवी से वही बात करते हैं। देवी पहले तो मुस्कराती है और फिर कालिका को निर्देश देती है कि इन पशुओं को बाँध कर मेरे पास ले आ। भगवती स्वयं आगे नहीं बढ़ी, काली ने खेल-२ में उन दोनों पशुओं को बाँध लिया। जैसे खरगोश को बाँध कर खींचा जाता है, ऐसे ही कालिका दोनों दैत्यों को बाँध कर गले से खींचती हुई भगवती के सामने ले आई। भगवती ने आदेश दिया कि अब इन पशुओं की बलि करके तू मेरा यज्ञ कर। कालिका ने पहले चण्ड और मुण्ड को मार कर दोनों का मस्तक उसके सामने रख दिया। भगवती प्रसन्न हुई और उसने कहा—कालिका! तुमने मेरी आज्ञा का पालन करके इन दोनों असुरों का वध किया है इसलिए आज से तुम्हारा नाम चामुण्डा होगा। इस प्रकार काली का एक नाम चामुण्डा पड़ा।

उसके बाद फिर रक्तबीज आता है। रक्तबीज ऐसा दैत्य था जिसको ब्रह्मा से वरदान मिला था कि जितने रक्त पृथ्वी पर पड़ेंगे उतने रक्तबीज तैयार हो जायेंगे। बड़ा विचित्र दानव है क्योंकि इसका बीज रक्त में होता है। रक्तबीज जानते हो क्या होता है? काम। आप जानते हो काम का बीज कहाँ है? काम, जिसे Sex कहते हो, इसका बीज कहाँ है? रक्त में। तुलसीदास जी ने लिखा है—

सेवत विषय विवर्त जिमि नित नित नूतन मार।

क्या समझे? काम का जितना सेवन करो, वह उतना ही बढ़ता जाता है, उससे कभी तृप्ति नहीं होती। जितने बूँद गिरते हैं उतने ही रक्तबीज पैदा हो जाते हैं।

बड़ा विचित्र है, कभी तृप्ति नहीं होती। चण्ड-मुण्ड का वध करके रक्तबीज का वध करती है भगवती। काली को आदेश देती है कि इसका रक्त पृथ्वी पर गिरने ही न पाये। यदि इसका रक्त पृथ्वी पर गिरेग तो रक्तबीज तैयार हो जायेगा। भगवती रक्तबीज को मारती है और काली उसके रक्त का पान कर लेती हैं। वह रक्त को पृथ्वी पर गिरने नहीं देती। काली का रूप देखा है, उसकी जिह्वा कितनी लम्बी है, उसने रक्त को गिरने ही नहीं दिया। काली ऊपर से ही रक्त चाट गई। जब रक्त गिरा ही नहीं तो रक्तबीज कहाँ से पैदा होता? रक्तबीज के वध के बाद भगवती ने शुंभ-निशुंभ का वध किया। यह भगवती की एक कथा है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि मद और मत्सर, इनके साथ इनके दूत, इनके सहायक हैं-मद के साथ काम, जिनको मैंने रक्तबीज बताया। उनके साथ चण्ड-मुण्ड, बड़े ही प्रबल दैत्य हैं, ये मद के साथी हैं, सहायक हैं। मद के ही समर्थक हैं। इनको चाहे आप अहंकार कह लीजिए, इनको चाहे क्रोध कह लीजिए, यह हमेशा साथ रहते हैं। चण्ड-मुण्ड का वध, उसके बाद रक्तबीज का वध और फिर शुंभ-निशुंभ का वध होता है, मद और मत्सर का वध होता है। मत्सर पहले मारा गया और बाद में शुंभ अर्थात् बड़ा भाई मद अर्थात् अहंकार उसका नाश हुआ। अहंकार का नाश होने पर ही देवता प्रसन्न होते हैं। आपके शरीर में जितने दिव्यगुण हैं, उनका विकास तभी होगा, उनकी वृद्धि तभी होगी जबकि पहले आपके जीवन का अहंकार नष्ट होगा। रामायण में एक कथा है, जिसमें बताया गया कि जब कुम्भकर्ण युद्ध करने के लिए आया तो—

कोटि कोटि कपि धरि-धरि खाई।

(रा० ६/७२-२)

वह करोड़ों बन्दरों को खा जाता है। तुलसीदास जी से कहा कि आपने तो यह अनर्थ लिख दिया। बन्दर कितने-२ बड़े हैं जो वह खा जाता है? उन्होंने कहा कि बन्दर तो बहुत बड़े-२ हैं—

नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं।
जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥

(रा० ५/५३-४)

रावण से शुक-सारण कहते हैं कि ऐसा एक भी बन्दर नहीं है जो तुम्हें युद्ध में न जीत ले। मोह रूपी रावण को जीतने के लिए प्रत्येक साधन प्रबल है, तत्पर है, पूर्ण है। यह कुम्भकर्ण कौन है जो बड़े-२ बन्दरों को खा जाता है? तुलसीदास जी ने कहा कि मेरी रामायण ध्यान से पढ़ो तब पता चलेगा कि यह बन्दर कौन

हैं? उन्होंने कहा—

कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विपुत्र ज्ञान-सुग्रीव कृत जलधि सेतु॥

(वि०प० ५८/८)

जो मोक्ष के अनेकों साधन हैं, यही भालू और बन्दर हैं। पूछा गया—कुम्भकर्ण कौन है?

मोह दशमौलि तद्भ्रात अहँकार पाकारिजित काम विश्रामहारी।

(वि०प० ५८/४)

तुलसीदास जी लिखते हैं कि मोह रावण है और अहंकार कुम्भकर्ण है। जैसे कुम्भकर्ण करोड़ों बन्दरों को एक साथ खा जाता है, इसका अभिप्राय है कि तुम्हारा अहंकार जो है, वह तुम्हारे समस्त सद्‌गुणों को खा जाता है। सारे सद्‌गुण तुम्हारे पास हैं लेकिन अहंकार एक सैकिण्ड में उनको खा जाता है। अहंकारी का कोई सद्‌गुण काम नहीं करता। आप अनेकों जप, तप, पूजा, पाठ, दान, तीर्थ, यात्रा आदि सब कुछ करें किन्तु उस करने का ज़रा सा अहंकार हुआ तो सब नष्ट हो जाते हैं। जितने कैवल्य के साधन हैं, हर एक साधन में इतनी क्षमता है कि वह मोह का नाश कर दे किन्तु मोह तक पहुँचने ही नहीं पाते, उसका नाश करने के लिए बीच में ही अहंकार खा जाता है। रामायण में यही कथा है कि जब तक कुम्भकर्ण तथा मेघनाद जीवित रहा, तब तक रावण तक कोई नहीं पहुँच पाया। ये दोनों उसके रक्षक हैं। कुम्भकर्ण अहंकार है और मेघनाद काम है। तुलसीदास जी ने लिखा है—

मोह दशमौलि तद्भ्रात अहँकार पाकारिजित काम विश्रामहारी।

(वि०प० ५८/४)

कुम्भकर्ण अहंकार है और पाकारिजित माने जो मेघनाद है, वह काम है। यह इन्द्रजीत है, इन्द्रियों पर अपना पूरा प्रभुत्व रखता है; सब उससे कांपते हैं इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि यही स्थिति मद और मत्सर की है। मद ही आपका अहंकार है और अहंकार ही मद है। यदि अहंकार जीवित है तो आपके सारे साधन, सारे सद्‌गुण रूपी देवता उससे पराजित रहेंगे और तब तक आपका कोई भी सद्‌गुण आपके काम नहीं आयेगा। अहंकार का नाश होते, अहंकार का लय होते, विवेकशील साधक योगबल से, ध्यानबल से अपने अहं को प्रभु को समर्पित कर देते हैं। समझदार, ज्ञानी लोग अहं का त्याग करके उसको प्रकृति में डाल देते हैं। दोनों साधनायें हैं, या तो अपने अहं को भगवान् को समर्पित कर

दो, यह सरल रास्ता है या अहंकार को तुम साधना द्वारा, विचार द्वारा, ज्ञान द्वारा समाप्त करो। मद किसका? कौन सी वस्तु अपनी है, जिसका तुम्हें मद है, अभिमान है। विचार करो? इस शरीर पर? शरीर में तो मल–मूत्र, मज्जा, रुधिर, तान है। शरीर के अन्दर कोई ऐसी वस्तु है जिसे तुम बहुत पवित्र मानते हो?

तुम्हें एक उदाहरण दूँ—मिट्टी के चार घड़े बने थे, एक पर सोने का रंग, दूसरे पर चाँदी का, तीसरे पर ताँबे का और चौथे पर लोहे का काला रंग कर दिया गया। अन्दर से वे मिट्टी के थे और ऊपर से चार रंग कर दिये गये, उनके अंन्दर मल भरा था और ऊपर से उनको ढक दिया गया। अब किसी को यह राज़ न बतायें कि घड़े किस वस्तु के हैं और इनमें क्या भरा हुआ है? यह बिना बताये यदि तुम किसी से पूछो, इनमें से अधिक कीमती कौन सा घड़ा है? तो क्या कहेंगे? सोने वाला सबसे अधिक कीमती है। चाँदी वाले को उससे कम कीमती मानेंगे। ताँबे वाले उससे कम और लोहे वाले की सबसे कम कीमत होगी। यदि उसकी असलियत बता दी जाये तो? यदि कोई पूछे कि इसमें क्या है? कहो कि यह न पूछो। यदि पूछे कि यह सही में सोने का घड़ा है या इसके ऊपर सोने का रंग किया हुआ है? कहो कि यह भी न पूछो। पहले खरीद लो बाद में देख लेना। यदि दुर्भाग्य से कोई उसे खरीद ले और बाद में ढक्कन खोल कर देखे तो उसकी क्या गति होगी? फिर उसमें कौन सा कीमती माना जायेगा? है किसी की कीमत? भले आदमी! किसी की कोई कीमत नहीं। फिर कोई कीमत नहीं देगा। कीमत इसलिए नहीं देगा कि उसे अपने पास रखें या उसे कोई खरीद कर ले जाये, फिर कीमत लेने के लिए नहीं, फेंकने की देगा। बात समझे। यही गति हम सबकी है। जो अपने आपको गौर वर्ण देख रहे हैं, वे सोने के घड़े के समान दिखाई दे रहे हैं। अन्दर उनके भी वही मल भरा हुआ है। कुछ चाँदी की तरह चमक रहे हैं। उनकी भी वही गति है, कुछ पीले ताँबे की तरह और कुछ काले लोहे की तरह हैं, उनकी भी वही गति है। है यथार्थ एक ही, ऊपर से चमड़ी का अन्तर है, चमड़ी केवल रंग है, बहुत पतला सा कलर है—

ऊपर काली लाली चमड़ी को देखि हुआ मतवाला है।
पर याद रहे, है भूल नहीं, इसका भी रंग निराला है॥
आयेगी वह भी घड़ी कभी, दीखेगा ना कुछ खोली में।
ना सार हाथ कुछ आएगा, काया जल जायेगी होली में॥

इसके सिवाय उसका कोई परिणाम नहीं होने का किन्तु हम अज्ञानतावश, अन्धकारवश जिसको कीमती मानते हैं, इसमें अहं करते हैं। तुम मुझे क्या समझते

हो ? मैं समझता हूँ तुम्हें खाक का पुतला, यही न ? यदि तुम अपने को समझो तो तुम भी अपने को यही मानोगे। एक कवि ने बड़ी अच्छी बात कही है—

नासमझ था तब समझता था कि सब समझा हूँ मैं।
जब समझ आई तो यह समझा कि कुछ नहीं समझा ।।

जब समझ में बात आई तो लगा कि मैं कुछ नहीं समझा, बात बिल्कुल यथार्थ है। इसलिए जिस पर हम मद करते हैं, अभिमान करते हैं, अहंकार करते हैं उसमें अपना कुछ नहीं है। यह सब महामाया की लीला है। उस भगवती का ही सारा पसार है। सर्व रूपों में नहीं से यह सब कुछ हुआ है। एक बार मैंने मैटाफिज़िक्स के ऊपर अमेरिका के एक विश्व-विद्यालय में व्याख्यान देते हुए यह सिद्ध किया कि "कुछ नहीं" से ही सब कुछ पैदा हुआ है। Nothing is the source of everything. जो सब कुछ है उसका कारण क्या है ? Nothing, सब कुछ कह सकते हो ? नहीं। Something कह सकते हो उसे ? नहीं। उसे Everything कह सकते हो ? नहीं। फिर क्या कहोगे ? Can you describe that? No, that is beyond description and what is beyond description and ineffable that is nothing यही वेदान्त कहता है कि "असतां सत् जायेत्" उस असत् से, उस कुछ नहीं से सब कुछ पैदा हो गया। वेदान्त कहता है कि जो असत् है, कुछ नहीं है, वह जानते हो क्या है ? वह पूर्ण है। घटाने पर कुछ नहीं आया तो वहाँ क्या चिह्न लगाते हैं ? ज़ीरो। जीरो माने Nothing कुछ नहीं। यदि उसको ध्यान से देखा जाये तो वह पूर्ण है। वह ब्रह्माण्ड का प्रतीक है, सृष्टि का मूल कारण है, इसके सिवाय वह कुछ नहीं है। उस Nothing से सब कुछ पैदा हुआ है, यह वैज्ञानिंक तथ्य है। आजकल वैज्ञानिकों से पूछिये कि आप ज़रा एनर्जी की व्याख्या कर दो। No, that is ineffable, that is beyond description, that is weightless, colourless, limitless, they can't describe that. Whatever is beyond description, what is that? उसका केवल एक ही उत्तर है, मौन! शास्त्र में वेदान्त में बताया गया कि यदि गुरु से आकर कोई ब्रह्म के विषय में पूछे कि ब्रह्म क्या है ? गुरु मौन हो जाता है। शिष्य फिर पूछता है भगवन्! हमें बताइये, ब्रह्म क्या है ? वह कहता है कि मैं कब से तुम्हें बता रहा हूँ, मौन! जिसके विषय में कुछ न कहा जाये वही सब कुछ है। जो कुछ हम अपना मानते हैं, वह सब कुछ एक अंश है, यही है न! जो सब कुछ है उसका मूल कारण क्या है ? कुछ नहीं। अरे

भले आदमी! जब सब कुछ का मूल कारण कुछ नहीं है तो तुम कुछ नहीं पर इतना गर्व क्यों करते हो? अहंकार के लिए कौन सा आधार है तुम्हारे पास? केवल अज्ञानता के सिवाय कुछ नहीं। अहंकार किसकी सन्तान है? अज्ञानता की। यह हम सब के जीवन की कहानी है। इसी प्रकार से एक कथा और आई, उसके विषय में भी बता दूँ।

एक कथा आती है, महाराजा नहुष की। यह कथा भी बड़ी विचित्र है। मैं आप लोगों को मद के विषय में बता रहा हूँ कि मनुष्य का मद, अहंकार बढ़ते-२ कहाँ तक चला जाता है कि बड़े से बड़ा समझदार व्यक्ति भी पागल हो जाता है। नहुष राजर्षि थे, बड़े धर्मात्मा, पुण्यात्मा राजा थे। जब इन्द्र को वृत्रासुर का वध करने के अपराध में ब्रह्महत्या का श्राप लगा और वह ब्रह्महत्या से पीड़ित होकर अपना राज्यसिंहासन छोड़ कर भगा तो उस समय इन्द्र के पद पर राजर्षि नहुष को बिठा दिया गया। नहुष जब इन्द्र बने तो इन्द्र के सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने इन्द्रासन की अप्सराओं का नृत्य देखना प्रारम्भ किया। तिलोत्तमा, रम्भा, उर्वशी आदि जो स्वर्ग की अप्सरायें थीं, उनके समक्ष नृत्य करने लगी। उनके दिमाग में एक बात आई कि ये तो इन्द्रलोक की नर्तकी हैं, इन्द्र के सामने नाचने वाली हैं। जब ये इतनी सुन्दर हैं, इतनी अनुपम हैं, इतनी अद्‌भुत हैं तो इन्द्राणी कितनी सुन्दर होगी? इन्द्राणी को याद करते ही उनका दिल भर आया, सोचने लगे कि जब देवताओं ने, ऋषियों ने मुझे इन्द्र बना दिया तो इन्द्र पद से सम्बन्धित सभी पर मेरा अधिकार हो गया। जब सभी वस्तुओं पर मेरा अधिकार हो गया तो इन्द्राणी मेरे से अलग कैसे रह सकती है? उन्होंने तुरन्त आदेश दिया कि इन्द्रलोक का सभी कुछ हमारे अधिकार में है तो इन्द्राणी हमारे से अलग कैसे रह सकती है, वह भी हमारी सेवा में आये। बुद्धि जब भ्रष्ट होती है तो आदमी को कुछ नहीं सूझता। अब वह इन्द्र पद के समस्त वैभव को भूल करके इन्द्राणी को याद करने लगा। उन्होंने इन्द्राणी को कहला कर भेजा कि तुम मेरी सेवा में उपस्थित हो। इन्द्राणी पतिव्रता थी, वह घबराई कि अब मेरी रक्षा कौन करेगा? ब्रह्महत्या के कारण पतित हो कर मेरा पति न जाने कहाँ चला गया? इन्द्राणी को कोई ऐसा दिखाई नहीं दे रहा था, जो उस समय उसकी रक्षा करे, उसके धर्म वा पातिव्रत धर्म की रक्षा करे। वह आर्त होकर भगवती को पुकारती है कि हे करुणमयी माँ! इस समय तुम्हीं मेरी एक आश्रय हो, दुनिया में मेरे धर्म की रक्षा करने वाला कोई दिखाई नहीं दे रहा। मैं तुम्हारी शरण में हूँ, माँ! मेरे पातिव्रत धर्म

की रक्षा करो।

भगवती ने उसकी आराधना, तपस्या से प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि पुत्री! तू घबरा नहीं, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। मेरे पतिदेव कहाँ हैं? तुम्हारे पतिदेव मानसरोवर में जाकर छिपे हुए हैं। तुम वहाँ जाओ, मैं जल्दी ही इस अहंकारी को इसकी करनी का परिणाम देने की योजना बना रही हूँ। भगवती ने नहुष को मोहित किया, नहुष अब रातों-दिन इन्द्र पत्नी का चिन्तन करने लगा कि वह कब मुझे मिले, कब मैं उसका आलिंगन करूँ, कब मैं अपनी वासना की तृप्ति करूँ! यही योजना बनाता रहता था। शची इन्द्र के पास गई और अपनी कथा बता दी। इन्द्र ने कहा—मैं तो स्वयं पतित होकर नीचे पड़ा हूँ, मैं तो कुछ कर नहीं सकता, ब्रह्महत्या जैसे महान् पाप से युक्त हूँ किन्तु तुम्हें एक उपाय बताता हूँ कि यदि राजा नहुष तुम्हें चाहता है तो तुम उससे कहो कि यदि तुम मुझे चाहते हो तो मैं भी तुम्हें चाहती हूँ क्योंकि तुम अब इन्द्र पद पर आ गये हो, फिर तो मैं तुम्हें वरण कर सकती हूँ किन्तु एक शर्त है कि यदि तुम दिव्य वाहन पर बैठ कर मेरे पास आओ तब मैं तुम्हारा वरण करूँगी। वह मदान्ध पूछेगा कि दिव्य वाहन कैसा हो? वह पूछेगा कि एरावत पर चढ़ करके आऊँ, विश्रवा के घोड़े पर चढ़ करके आऊँ, गरुड़ पर चढ़ कर आऊँ, शंकर के वृषभ पर चढ़ कर आऊँ या ब्रह्मा के हंस पर सवार होकर आऊँ तो उस समय तुम कहना कि नहीं, ये तो सब प्रयोग किये हुए वाहन हैं, ये सब दिव्य नहीं हैं। इसलिए ऐसे वाहन पर सवार हो करके आओ जिस पर कभी कोई सवार न हुआ हो। वह तुमसे पूछेगा, ऐसा वाहन क्या हो सकता है? तुम कहना कि यदि तुम ऋषियों के, तत्त्वज्ञों के कन्धों पर सवार होकर आओ, उन्हीं को वाहन बनाओ तो मैं तुम्हें पति रूप में वरण कर लूँगी, स्वीकार कर लूँगी।

शची लौट आई, नहुष ने पुनः संदेश भेजा। शची ने कहा—हम आपका स्वागत करने के लिए तैयार हैं किन्तु आप दिव्य वाहन पर सवार होकर मेरे पास आईये। वह मदान्ध था, उसने कहा—दिव्य वाहन? उसने कहा कि विष्णु का गरुड़ वा शंकर जी का वृषभ ले आऊँ? उसने कहा कि ये तो प्रयोग किए हुए हैं। ये पवित्र और दिव्य नहीं हैं। दिव्यवाहन तो ऋषि लोग हैं। यदि ऋषि के कन्धे पर बैठ कर आओ तो मैं तुम्हें स्वीकार कर लूँगी। उसने कहा—यह तो बड़ी सुन्दर बात कही, यह तो मुझे याद ही नहीं था। किसी अन्य वाहन के लिए मुझे मेहनत करनी पड़ती किन्तु ऋषियों को वाहन बनाना तो बड़ा सरल है। उसने सभी ऋषियों के मुख्य अगस्त ऋषि को बुलाया और कहा भगवन्! आप लोग

मेरे लिए वाहन बन जायें जिससे मेरी यह कामना पूर्ण हो। अगस्त्य ऋषि ने कहा—अच्छा राजन्! तुम्हारी कामना पूरी करने के लिए हम वाहन बन जायेंगे। उन्होंने भगवती की महिमा देखी कि इसकी बुद्धि भ्रष्ट है, अब देखो कहाँ तक पहुँचता है? ऋषियों ने तुरन्त पालकी मंगवाई और नहुष पालकी पर बैठ गया और ऋषियों से कहा कि पालकी लेकर चलो। ऋषि पालकी लेकर चलने लगे, वह अहंकार में इतना फूला हुआ था कि उसे कुछ होश नहीं। अगस्त्य ऋषि सबसे आगे चल रहे थे, उसने उनके सिर पर अपना पाँव रख कर एक चाबुक मारा कि जल्दी-२ चलो। वह काम से ऐसा मोहित था, सोच रहा था कि कब पहुँच जाऊँ? ज्योंहि उसने कहा—सरपो, सरपो अर्थात् जल्दी-२ चलो। अगस्त्य ऋषि ने वहीं उसकी पालकी पटक दी और कहा—दुष्ट! चाण्डाल! जा तू सर्प हो जा! अरे मूर्ख, तू काम में इतना अन्धा हो गया है कि पहले तुझे इतना पता नहीं कि हम ऋषियों से पालकी उठवा रहा है और फिर भी हमारे सिर पर पाँव रख कर कह रहा है सरपो-२। जा तूँ सर्प हो जा। अब वह रो पड़ा, भगवन् मेरा उद्धार कैसे होगा? तुम्हारा उद्धार जल्दी नहीं होगा, अब तो तुम्हें हज़ारों वर्ष तक सर्प की योनी में रहना पड़ेगा और नाना प्रकार की यातनाओं को सहोगे। द्वापर के अन्त में जब धर्म के अंश से धर्मराज युधिष्ठर के रूप में अवतार लेंगे तब युधिष्ठर के दर्शन करने से तुम्हारा यह श्राप दूर होगा, उससे पहले नहीं हो सकता। वह नहुष जो इन्द्र पद पर बैठा था, अपने अहंकार के कारण ही वह सर्प योनि में पहुँच गया।

इन कथाओं से हमें क्या सीख मिलती है कि यदि तुम सत्कर्म करते हुए इन्द्र पद पर पहुंच जाओ लेकिन तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी वासना यदि शान्त नहीं हुई है तो वहाँ से भी तुम नीच अवस्था को प्राप्त कर सकते हो, दुनिया के वैभव की तो बात ही अलग है। दुनिया से तुम ज़रा सा ऊपर उठ गये, यह कोई महत्त्व की बात नहीं है। यदि तुम इन्द्र के पद पर बैठ जाओ, देवताओं के अधिपति बन जाओ तब भी यदि तुम्हारा अहं जीवित है तो तुम्हें नारकीय जीवन में ढकेल देगा, इसमें संदेह नहीं।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि पुराण की कथाएँ अनेक प्रकार की युक्तियों के द्वारा मनुष्य को आगे बढ़ने की सीख देती हैं, जो हमारे जीवन के विनाशकारी तत्त्व हैं उनको दूर करने की सीख देती है। इस प्रकार की कथाओं से आप लोगों को प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। अहंकार, मद, मत्सर, लोभ, मोह, क्रोध और काम, इन शत्रुओं को तिलांजलि देते हुए, इनसे बचते हुए महामाया भगवती की आराधना करते हुए दिव्य पथ पर आगे बढ़ें। यही शाश्वत सनातन

धर्म का सन्देश है। आप लोग एक बात मेरे को कह सकते हो कि हमें आप कहते हो, मद को छोड़ दो, गर्व को छोड़ दो और साथ में आप यह भी कहते हैं कि सनातन धर्म पर मुझे बड़ा गौरव है, यह क्या बात है? याद रखो, अभिमान दो प्रकार का होता है, एक को सात्त्विक अभिमान और दूसरे को राजस् और तामस अभिमान कहते हैं। तुलसीदास जी ने रामायण में एक स्थान पर लिखा है—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(रा० ३/११-११)

कहते हैं कि हे प्रभो! मेरा यह अभिमान स्वप्न में भी न जाये। क्या अभिमान? मैं भक्त हूँ और भगवान् मेरा स्वामी है, यह हमारा अभिमान बना रहे। इसको सात्त्विक अभिमान कहते हैं। दुनिया का जो अभिमान है, यह राजसिक और तामसिक है। इसी रूप से जब आपको अपने धर्म पर गौरव होगा, धर्म पर स्वाभिमान होगा, यह अभिमान नहीं, इसको कहते हैं स्वाभिमान। अभिमान और स्वाभिमान में कितना अन्तर है? अभिमान शब्द का अर्थ क्या होता है? "अभिता परिता मानः अभिमान";—आपके चारों तरफ जो वस्तुएँ हैं, पद और पदार्थ हैं, उससे जुड़ा हुआ जो आपका अहं है, उस अहं का नाम है अभिमान। स्वाभिमान माने स्व का मान। स्व माने आत्मा। आत्मा के ऊपर यदि आपको गौरव है, आत्मदृष्टि है फिर आप हैं स्वाभिमानी। स्वाभिमान क्या है? आत्म गौरव। अभिमान क्या है? पद और पदार्थ का गौरव। पद, पदार्थ आपके साथ रहने वाले नहीं हैं। वे आज हैं कल को नहीं रहेंगे। यदि पद-पदार्थ के आधार पर आप गौरव वा अभिमान करेंगे तो क्या होगा? आज पद है, अभिमान है, कल को नहीं होगा, तो क्या होगा? बैठकर रोओगे। यदि आत्मा के नाते आपको मान है तो आत्मा सदा आपके पास रहने वाली है, वह तो कभी जाने वाली नहीं है क्योंकि आप स्वयं आत्मा हो। स्व के साथ लगा हुआ अभिमान अमृत है, जीवन है और जो पर के साथ लगा हुआ अभिमान है वह मृत्यु है, पतन है। इसलिए मैं आप लोगों को समझा रहा था कि आपमें स्वाभिमान होना चाहिए अभिमान नहीं होना चाहिए। स्वाभिमान देवता है और अभिमान राक्षस है, यह बात याद रखो। इन्हीं शब्दों के साथ मैं आज के विचारों को यही विश्राम देता हूँ, कल फिर मिलेंगे, आप लोगों से चर्चा करेंगे।

हरि ॐ तत्सत्।

६

मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् का मंगलमय विधान आप सभी के लिए कल्याणप्रद हो, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना! शक्ति ही जीवन का आधार है। जीवन का गौरव, जीवन का उत्थान, जीवन की प्रतिष्ठा, यह सब कुछ शक्ति पर ही अवलम्बित है। जीवन चाहे व्यक्ति का हो, जाति का हो, संमाज अथवा राष्ट्र का हो, शक्तिहीन जीवन मृत्यु से भी बदतर है। शक्ति सम्पन्न जीवन देवताओं के लिए भी वंदनीय होता है। महिमा शक्ति की है, इसलिए विभिन्न रूपों में उस शक्ति की उपासना की जाती है। आसुरी शक्ति का जब प्राबल्य होता है तो अपने दुष्प्रभाव से दैवी गुणों को दबा देती है और दैवी शक्ति का ह्रास हो जाता है। उस स्थिति में यह समाज, यह संसार मनुष्य के लिए जीने योग्य नहीं रह जाता। चारों ओर अशान्ति, अन्याय, अत्याचार और अनर्थ के सिवाय कुछ नहीं होता जिसके परिणाम में मनुष्य त्राहि के सिवा और कुछ नहीं कह पाता। उस स्थिति में जब मनुष्य के पास और कोई अवलम्बन नहीं रह जाता तब वह अनन्त महिमामयी शक्ति भगवती को पुकारता है। वह करुणामयी माँ मानवता की रक्षा के लिए, शाश्वत शान्ति और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए अनेक रूपों में अवतरित होती है। दानवता का विनाश और सज्जनता की प्रतिष्ठा, ये दोनों उस पराशक्ति के कार्य हैं जिनको वह समय-२ पर सम्पन्न किया करती हैं।

आसुरी शक्ति का कहाँ आविर्भाव हो जाये, इसके लिए कोई ऐसा नियम नहीं है। हो सकता है वह पुलस्त्य के यहाँ विश्रवा के पुत्र के रूप में प्रकट हो जाए, जिसे आप रावण कह कर पुकारते हैं। हो सकता है वह शूरसेन वंशी महात्मा उग्रसेन के यहाँ कंस रूप में प्रकट हो जाए। कौन जानता है शान्तनु के पौत्र चित्र और विचित्रवीर्य की पत्नियों से भगवान् व्यासदेव की सन्तान धृतराष्ट्र के यहाँ दुर्योधन के रूप में प्रकट हो जाए? कौन कह सकता है कि वह कहाँ प्रकट हो सकती है? उसके लिए कोई जाति, कोई देश, कोई काल ऐसा सुनिश्चित नहीं है। आसुरी शक्ति, आसुरी वृत्ति, आसुरी जीवन, आसुरी विचारधारा कहीं भी जन्म ले सकती है। उच्च से उच्च कुल में, पुण्यात्मा के, पवित्रात्मा के यहाँ भी वह आसुरी शक्ति उत्पन्न हो सकती है। आश्चर्य होता है जब हम अपने इतिहास को पढ़ते हैं। हमारे यहाँ पंजाब में दस गुरु हुए हैं। गुरुनानक देव के दो पुत्र थे— श्रीचंद और लक्ष्मी चंद। दोनों ही सन्त, महात्मा तथा तत्त्वज्ञ थे। गुरुनानक देव ने अपना अलग सिद्धान्त स्थापित किया और उनके दोनों पुत्रों ने अपने अलग-२ सिद्धान्त स्थापित किए। इस समय पिता और पुत्रों द्वारा चलाये गये तीन सम्प्रदाय भारत में हैं। पिता ने पुत्रों को अपना उत्तराधिकार नहीं दिया, अपने शिष्य को दिया, जिसका नाम उन्होंने अंगददेव रखा। अंगददेव भी बाल-बच्चे वाले थे, गृहस्थ थे। उन्होंने भी अपना उत्तराधिकारी अपने पुत्रों को नहीं बनाया, अपना शिष्य बनाया, जिसका नाम उन्होंने अमरदास रखा। अमरदास की भी सन्तानें थीं। उनकी एक लड़की थी। उन्होंने अपनी लड़की का विवाह अपने एक शिष्य से कर दिया और उस शिष्य को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया, जिसका नाम रामदास था। आगे की कहानी बड़ी दुःखद है, जिसको मैं सुनाने जा रहा हूँ और यह बताने जा रहा हूँ कि कभी-२ पवित्रात्माओं के यहाँ भी राक्षस पैदा हो जाता है। जैसा कि विश्रवा के यहाँ रावण, पुलस्त्य के पौत्र के रूप में, उग्रसेन से कंस और वेदव्यास से उत्पन्न होने वाले धृतराष्ट्र के यहाँ दुर्योधन पैदा हो गया। उत्तम कुल वा सात्त्विक कुल में भी कभी दानवीय शक्तियाँ पैदा हो जाती हैं।

गुरु रामदास जो गुरु अमरदास के दामाद भी थे और शिष्य भी थे, वे गुरु अमरदास के उत्तराधिकारी बने। गुरु अमरदास बहुत वृद्ध हो गये थे, एक दिन स्नान कर रहे थे। स्नान करने के लिए जब वे चौकी पर बैठे तो उसका एक पाया टूट गया। जब पाया टूट गया तो वे गिरने लगे तो लड़की ने पिता को गिरने से बचाने के लिए उस पाया के स्थान पर अपना हाथ लगा दिया, हाथ से पाये को थाम लिया लेकिन पाये में जो कील थी, वह कील उसके हाथ को पार कर गई

लेकिन गुरु को बचाने के लिए उसने सी तक नहीं की और गुरु को गिरने से बचा लिया। पश्चात् शिष्यगण आये, उन्होंने गुरु को संभाला, उसने जब अपना हाथ कील से निकाला तो उससे खून की धारा बह चली। गुरु अमरदास ने देखा, उनका हृदय करुणा से भर गया और कहा—बेटी! तुमने इतना बड़ा कष्ट सह कर मेरे को गिरने से बचाया। बेटी! मैं तेरे पर बहुत प्रसन्न हूँ, जो माँगना हो मेरे से माँग ले। संयोग देखिए! पहले वह कहने लगी, पिताजी! जो कुछ आपका है, वह सब मेरा ही है। आपके चरणों में मेरा स्थान है, इससे अधिक हमें और क्या चाहिए? उन्होंने कहा—नहीं, जो कुछ तुम्हारी रुचि हो, मेरे से माँग लो। प्रलोभन विनाश की भूमि है अर्थात् लोभ विनाश की जड़ है। हमारे शास्त्रों में पूछा गया कि पाप के बाप का क्या नाम है? उत्तर मिलता है, लोभ! गुरु ने जब बार-२ माँगने के लिए कहा तो उसने कहा—यदि आप वरदान देना चाहते हैं तो मेरी एक छोटी सी प्रार्थना है। कहिए, बेटी तुम क्या चाहती हो? उसने कहा, यह गद्दी अब तक शिष्यों को दी जाती रही है किन्तु आप मुझे ऐसा वरदान दो कि आज से यह गद्दी मेरे पुत्रों में ही रहे अर्थात् इस गद्दी के स्वामी हमारे पुत्र ही हों, दूसरा कोई न हो। यह सुनते ही गुरु को बहुत धक्का लगा, उन्हें यह विश्वास नहीं था कि उनकी बेटी उनसे यह वर माँगेगी। उन्होंने कहा—बेटी, तुमने अनर्थ किया है। मैंने तुम्हें वचन दिया है इसलिए यह गद्दी आज से तुम्हारे पुत्रों में ही रहेगी। किन्तु इसके साथ एक बात मेरी ध्यान से सुन ले, जिस रक्त के बदले तुमने यह गद्दी मांगी है, आज से यह गद्दी रक्त से हमेशा सनी रहेगी। इसको आप आशीर्वाद कहेंगे वा श्राप?

उस देवी के तीन लड़के हुए, सबसे बड़ा पृथ्वी चंद हुआ और सबसे छोटे अर्जुनदेव हुए। पाँचवे गुरु अर्जुनदेव बने। पिता ने अपने बड़े लड़के को गद्दी नहीं दी, छोटे को दी क्योंकि बड़े का आचरण ठीक नहीं था। जब छोटे लड़के को गद्दी देकर पिता परलोक पधार गये तो बड़ा भाई जाकर के उस समय के बादशाह सलीम से मिल गया। उससे मिलकर अपने सगे छोटे भाई को लोहे के तपते हुए तवे पर रखवा कर बालु से भुनवा दिया। उसी वंश में गुरु गोविन्द सिंह आदि और भी गुरु हुए, ये सभी रक्तमय रहे। अन्त में गुरु गोविन्द सिंह तक आते-२ वह वंश नामूद हो गया। गुरु गोबिन्द सिंह के चारों लड़के देश के लिए शहीद हो गए, उन्होंने भी अपना सर्वस्व होम कर दिया। आज दिन तक वह स्थान रक्त से भरा हुआ चला आ रहा है, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ा।

दानवीय शक्ति कहाँ, कब और किस रूप में प्रकट हो जाए कुछ पता

है? धर्मात्मा तत्त्वज्ञ गुरु रामदास के यहाँ भी पृथ्वीचंद पैदा हो सकता है, उसी प्रकार से जैसे पुलस्त्य के यहाँ रावण। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि जब आसुरी शक्तियाँ प्रबल हो जाती हैं तो उनके द्वारा मानवता त्राहि-२ करने लगती है। फिर दैवी शक्तियों का संगठन और उनके द्वारा प्रकट हुआ वह तेज पुंज जिसको हम भगवती दुर्गा के नाम से पुकारते हैं, वही मानवता की रक्षा के लिए समय-२ पर प्रकट हुआ करती है। देवी भागवत का यह एक बहुत बड़ा सिद्धान्त है, इसके साथ और भी देवी भागवत से सम्बन्धित कुछ बातें बतलाऊँगा।

इसमें भगवान् के दस अवतारों की कथायें हैं। उसके साथ भगवान् राम के जीवन की पूरी कथा है। ब्रह्म के अवतार के रूप में भगवान् कृष्ण के जीवन का पूरा विवेचन है। राम और कृष्ण हमारे भारतीय साहित्य के सूर्य भी यदि कहे जाएँ तो उनके लिए कम है अर्थात् भारतीय साहित्य के प्राण हैं, संस्कृति और सभ्यता के आधार हैं। धर्म शास्त्र में एक बात समझाई गई है कि दर्शन बहुत महान् हो, विशाल हो, फिलॉस्फी बहुत महान् हो, उस महान् फिलॉस्फी को क्रियात्मक रूप में यदि कोई बताने वाला न हो तो जन-सामान्य को समझ में कुछ नहीं आता। इसलिए आदर्श के अभाव में जीवन का उत्कर्ष नहीं होता, विकास नहीं होता, उन्नति नहीं होती। हमारे सामने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम आदर्श हैं। हमारे सामने लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण आदर्श हैं। राम और कृष्ण का जीवन भारतीय जनता के श्वास के साथ जुड़ा हुआ है। हमारी संस्कृति, सभ्यता, धर्म और दर्शन, इन दोनों महापुरुषों से अनुप्राणित हैं। इसलिए कोई भी पुराण हो, किसी की भी महिमा गाता हो किन्तु जब तक इन दोनों महापुरुषों के चरित्र का विवेचन न करे तब तक वह अधूरा ही लगता है। इसलिए देवी भागवत में भी इसके रचयिता ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम की महिमा का गान किया है लेकिन इसमें एक विशेषता है। वह विशेषता क्या है? राम की समस्त लीलाओं में जो श्रेय है, वह भगवती महामाया सीता को है। वैसे तो वाल्मीकि ऋषि ने भी यह स्वीकार किया है कि **"सीतायां चरितं महत्"** सम्पूर्ण रामायण भर में यदि महान् उज्ज्वल चरित किसी का है तो वह सीता का है लेकिन फिर भी देवी भागवत में तो सीता साक्षात् महालक्ष्मी जगदम्बा का ही अवतार है। देवी भागवत में जहाँ पर १०८ शक्ति पीठों का वर्णन है वहाँ पर चित्रकूट में महाशक्ति के रूप में सीता की प्रतिष्ठा है। चित्रकूट की महाशक्ति सीता है, वह सीता से सम्बन्धित पीठ है। यह देवी भागवत की विशेषता है, अन्य राम कथाओं से। इसी रूप से उस परमात्मा की पराशक्ति के रूप में राधा को

स्वीकार किया गया है। श्री कृष्ण की लीला में श्री कृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं और उनकी पराशक्ति, आह्लादिनी शक्ति, अचिन्त्य शक्ति और प्राण शक्ति जो है, वह राधा है। उसे राधा क्यों कहते हैं? इस विषय में समझाया गया कि जीवन की जो धारा है वह कैसे प्रवाहित होती है? धारा माने प्रवाह। जैसे गंगा की धारा, यमुना की धारा, सृष्टि की धारा और चैतन्य की धारा। ये ऊपर से नीचे की ओर, सूक्ष्म से स्थूल की तरफ चलती हैं इसलिए उपनिषदों में और गीता में भगवान् ने कहा है—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।

(गीता १५/१)

इस जगत् रूपी वृक्ष की जो जड़ है वह ऊर्ध्व है, नीचे नहीं है। जो स्वरूप विराट् का है, वही स्वरूप मनुष्य का है। मनुष्य के जीवन की जड़ किधर है? आपके शरीर का संचालक कहाँ रहता है? किसी वैज्ञानिक से पूछ लीजिए, वह भी बताएगा सिर में। Head का अर्थ क्या होता है? जो मुख्य, प्रधान है, जो सबसे श्रेष्ठ है, वह ऊर्ध्वमूल है। इसकी शाखायें नीचे फैली हुई हैं। शरीर की सारी इन्द्रियाँ, सारे चक्र, चेतना और प्राण के समस्त केन्द्र, ये सब ऊपर से अनुप्राणित होते हैं और नीचे फैले हुए हैं। यह जीवन की एक धारा बह रही है, इस धारा का जो मुख्य स्रोत है वह ब्रह्म है। धारा का मूल प्रवाह जो परब्रह्म परमात्मा है; उसने सारे विश्व को अपने आकर्षण में बाँध रखा हैं। समस्त विश्व की जो गति चल रही है, प्रत्येक नक्षत्र और ग्रह जो अपने स्थान पर ठीक चल रहे हैं, उसमें मूल कारण क्या है? आकर्षण सत्ता। जो इन सब को अपने-२ स्थान पर बाँधे हुए है। उस आकर्षण शक्ति का नाम कृष्ण है।

कृष्ण माने जो सारी दुनिया को अपनी तरफ खींचता हो। कृष धातु है जिसमें अण् प्रत्यय लगा कर के कृष्ण शब्द बना है। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है **"कर्षति सः कृष्णः"** जो सारी सृष्टि को, विश्व को अपनी तरफ खींच रहा है, अपनी आकर्षण शक्ति से सबका जो केन्द्र बना हुआ है, वह कृष्ण है। यह सारा विश्व एक दिन उसी में समा जाएगा और सारा जगत् उसी से प्रकट हुआ है। आजकल के वैज्ञानिकों ने पता लगाया है Black Hole का। उसका काम क्या है? बड़े-२ ग्रह और उपग्रह की बात छोड़िये, बड़े-२ ब्रह्माण्ड, जिसे नेबुला कहते हैं, वे भी उसके सामने से गुजरें तो वह खींच कर अपने मुंह में ले लेगा। एक नेबुला में ४२ बिलियन सूर्य होते हैं, वह नेबुला यदि Black Hole के सामने से चक्कर काटते हुए गुजरे तो Black Hole उसे Suck कर जाएगा।

वह Black Hole में समा जाएगा। उनका कहीं पता ही नहीं चलेगा कि कहाँ गये इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि एक दिन ऐसा आयेगा कि समस्त ब्रह्माण्ड उसी Black Hole में चला जायेगा। Black Hole में इतनी आकर्षण शक्ति है कि वह बड़े-२ नेबुला को आत्मसात कर लेता है, यदि मैं कह दूँ कि हमारे कृष्ण में इतनी आकर्षण शक्ति है कि बड़े-२ अनन्त ब्रह्माण्ड उसके मुँह में समा जाते हैं तो क्या आश्चर्य की बात हो गई? Black माने काला और कृष्ण माने काला। वह शक्ति का केन्द्र है, वही सृष्टि का निर्माता है और वही सृष्टि का प्रलय करने वाला अर्थात् संहारक भी है। यही भगवान् गीता के आठवें अध्याय में बताते हैं कि मैं ही सारी सृष्टि को अपने से प्रकट करता हूँ और पुनः अपने में समेट लेता हूँ। यही सातवें अध्याय में भी बताया—

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।

(गीता ७/६)

मैं आप लोगों को बता रहा था कि वह जो विश्व को आकर्षित करने वाली परम चैतन्य शक्ति है, विश्व को आकर्षित करने वाली शक्ति का जो मूल प्रवाह है जिससे अनन्त ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं, उसकी धारा वह चेतना शक्ति व पराशक्ति है। वह धारा जब संसार तक आती है और उस को जब हम यहाँ से देखें हैं तो क्या नाम देंगे? धा रा। यह धारा उधर से इधर आई अर्थात् ऊपर से नीचे आई। यदि ऊपर से देखेंगे तो वह परम चैतन्य की धारा है लेकिन जब हम नीचे से देखते हैं तो कहेंगे राधा। उसी को व्यष्टि रूप में अपने शरीर में कुण्डलिनी शक्ति कहा गया है। यह ब्रह्मचक्र से धारा चलती है और नीचे जहाँ स्पाईनल कार्ड के मध्य की नाड़ी जो सुषुम्ना है इड़ा और पिंगला के बीच की, उसके मध्य में से गुजरती है और अंगूठे तक जाती है। हमारे शरीर में १६ स्थान हैं जो प्राणशक्ति के केन्द्र कहे जाते हैं और उन केन्द्रों को जीवनी शक्ति प्रदान करने वाली, चेतना प्रदान करने वाली जो पराशक्ति है, वह चैतन्य शक्ति है, उसका जहाँ मूल केन्द्र बनता है, उसको हमारे यहाँ मूलाधार कह देते हैं। जब योगी ध्यान में बैठता है, पैर के अंगूठे से लेकर अपने नीचे के छः अंगों से उस शक्ति को समेट कर मूलाधार में ले आता है, बैठने के पश्चात् Tailbone के पास स्थापित करता है तो फिर उसका नाम कुण्डलिनी पड़ता है। वही कुण्डलिनी शक्ति, वही 'धारा' जब उलट करके अपने कारण की ओर प्रवेश करती है, मुड़ती है तो उसे राधा कहते हैं। उस कुण्डलिनी शक्ति को नीचे से उठा करके प्रणव के द्वारा, प्राणायाम के द्वारा, ध्यान के द्वारा और अनेक प्रकार की यौगिक

क्रियाओं के द्वारा मूलाधार से उठाकर धीरे-२ जब हम ब्रह्मचक्र में ले आते हैं, वही चैतन्य की धारा चैतन्य की राधा हो जाती है, वही राधा शक्ति अपने मूल केन्द्र कृष्ण से युक्त होकर लीला विलास करती है, जिस का नाम होता है महारास।

भगवान् कृष्ण गोपियों के साथ रास करते थे, यह तो सुना होगा? एक बार कार्तिक पूर्णिमा के दिन उन्होंने महारास किया था। श्रीमद्भागवत पढ़िये, उसमें आपको पढ़ने के लिए बड़ा सुन्दर प्रसंग मिलेगा। महारास क्या है जानते हो? राधा और कृष्ण का मिलन लेकिन राधा अकेले नहीं मिलती, गोपियों के साथ मिलती है। गोपियाँ कौन हैं? यही जो प्रसुप्त प्राण वा शक्ति के केन्द्र हैं। गोपी माने गुप्त वा रहस्यमय। हमारे यहाँ शास्त्रों में बताया कि यह बड़ा गोपनीय है वा गुप्त बात है। गो माने इन्द्रियाँ। समस्त शक्ति को लेकर वह चेतना शक्ति कृष्ण के साथ मिलन करती है फिर वहाँ परम विहार होता है। आपने यह सुना होगा कि राधा-कृष्ण का मिलन सदैव निकुंज में होता है। निकुंज किसे कहते हैं? ब्रह्मचक्र को उस गहबर को, गुहा को निकुंज कहते हैं। वहाँ पर एक चिदाकाश है, आप लोगों ने पिच्यूटरी ग्लैंड सुना होगा, इसके ऊपर बहुत सूक्ष्म सा आकाश है, उस आकाश का नाम चिदाकाश है। उसका दर्शन होता है जैसे हम आप लोगों को देख रहे हैं और आप हमें देख रहे हो, ऐसे ही योगी उस चिदाकाश को ध्यान में देखता है। वही चिदाकाश निकुंज है, उसी को ब्रह्मचक्र कहते हैं। उस निकुंज में राधा और कृष्ण का मिलन होता है, गोपियां सब साथ होती हैं और मिलकर कृष्ण के साथ एक हो जाती हैं। फिर बाद में जब एक होकर के लौटती हैं तो जितनी गोपियाँ उतने कृष्ण हो जाते हैं। क्या विचित्र लीला है? वह पराशक्ति राधा है और उसकी अंशभूता जो चैतन्य वृत्तियाँ हैं, वे गोपियाँ हैं। यह राधा और कृष्ण का महारास है जो जीवन के कण-२ में हो रहा है और प्रत्येक प्राणी में हो रहा है। लेकिन अज्ञानी मनुष्य इस रहस्य को न समझ कर सोचता है, कृष्ण एक लड़का था और गोपियाँ दूसरे की स्त्रियाँ थी और वह इनके साथ नाचा करता था।

श्रीमद्भागवत परमहंस सहिंता है, यह परम हंसों का ग्रन्थ है। परम हंस जानते हो, कौन है? उन आत्माराम मुनियों को कहते हैं—'**आत्मारामश्च मुनयः**'। श्रीमद्भागवत में यहीं से कथा प्रसंग शुरु होता है। जो मुनि आत्मा में ही रमण करने वाले हैं, सदैव आत्मचिन्तंन में ही रत रहते हैं—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

(गीता ३/१७)

जिसके लिए भगवान् गीता में कहते हैं कि जो आत्मा में रमण करने वाले मुनि हैं, उनको परमहंस कहा जाता है। हंस का लक्षण क्या है ? यदि दूध और पानी को मिला कर हंस को दे दो तो वह दूध पी लेगा और पानी छोड़ देगा। रामायण में तुलसीदास जी लिखते हैं—

नीर क्षीर विवरन गति हंसि।

ऐसा सुना है कि हंस की चोंच में ऐसी शक्ति है कि यदि दूध और पानी को मिलाकर रख दो तो उसमे दूध पी लेगा और पानी छोड़ देगा। हंस में ऐसा गुण है। तुलसीदास जी ने एक और स्थान पर लिखा—

संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।

(रा० १/६)

संत जो हैं वे हंस हैं। जैसे हंस जल को छोड़ कर दूध को पी लेता है ऐसे ही संत रूपी हंसों का स्वभाव है कि वे गुण को ग्रहण करके अवगुण का त्याग कर देते हैं। उसी प्रकार से जिसने सद्रूपी गुण को लेकर असद् रूपी वारि का त्याग कर दिया, वह संत हंस कहा जाता है और उससे जो ऊँचा हो गया वह परमहंस कहा जाता है। उन परमहंसों के लिए, तत्त्व द्रष्टाओं के लिए जो ग्रन्थ बना, उसे श्रीमद्भागवत कहा जाता है। उस भागवत् को पढ़ने वाले परमहंस ही समझ सकते हैं कि वह जो कृष्ण तत्त्व, राधा तत्त्व, गोपी तत्त्व और लीला तत्त्व हैं, वे क्या हैं ? दुर्भाग्य से यह ग्रन्थ परम हंसों तक ही नहीं रहा, वह साधारण जनता तक आ गया जोकि अहर्निश विषयों में ही डूबा हुआ है। वह जब उस ग्रन्थ को पढ़ेगा तो उसके सामने विषय के अतिरिक्त और क्या दिखाई देगा? वह कभी समझेगा कि राधा क्या है और कृष्ण क्या है? नहीं समझेगा। वह तो यही समझेगा कि कृष्ण नन्द के लड़के थे और राधा वृषभानु की पुत्री थी, गोपियाँ वहाँ के गोपों की स्त्रियाँ थीं, इसके सिवाय वह क्या समझेगा? वह यही सोचेगा कि कृष्ण इनके साथ रास करते थे। एक सज्जन ने मेरे से पूछा, कृष्ण गोपियों के साथ रास करते थे? मैंने कहा—जी हाँ! रास में क्या करते थे? नृत्य करते थे। मैंने कहा—तुम्हें पता है जब कृष्ण रास करते थे तो कितने वर्ष के थे? नौ वर्ष के थे। नौ वर्ष के बच्चे में सैक्स का जन्म होता है, क्या राय है ? कोई है यहाँ पर जो शरीर विज्ञान पढ़ा हो और जानता हो? वह अच्छी प्रकार से समझेगा कि नौ वर्ष के

बच्चे में सैक्स का जन्म नहीं होता। कब होता है, कितनी आयु में होता है जानते हो? ११ से १३ वर्ष की आयु में। अधिकांश १२ वर्ष के पश्चात् ही होता है। कहते हैं पुरुष में १२ वर्ष के पश्चात् ही सैक्स का जन्म होता है उससे पूर्व नहीं होता, इसलिए नौ वर्ष का बच्चा यदि स्त्रियों के साथ, लड़कियों के साथ नाचता है तो उसको नृत्य के सिवाय और क्या कहोगे?

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भगवान् राम, भगवान् कृष्ण के दिव्य चरित्रों का गान भी इस देवी भागवत् में उपलब्ध होता है। लेकिन देवी भागवत में जो कृष्ण चरित्र की मूल आधार शक्ति है, वह स्वयं में राधा है। राधा से ही कृष्ण का सारा कृत्य है, प्रभुत्त्व है और राधा की ही प्रधानता है इसीलिए राधा तब कृष्ण और सीता तब राम कहा जाता है। हम क्या बोलते हैं–सीता राम। राम सीता तो नहीं कहते। राधे श्याम, श्याम राधे तो नहीं कहते। पहले राधे फिर श्याम, पहले सीता फिर राम, पहले शक्ति तब शक्तिमान क्योंकि शक्ति के बिना हमने शक्तिमान को जाना ही नहीं। श्री सहित राम है तो राम की महत्ता है और यदि श्री रहित राम है तो राम की वह महत्ता नहीं है। राम तो सब में है, जो हाथ फैला कर भीख माँग रहा है राम उसमें भी है। वहाँ क्या नहीं है? राम तो है किन्तु श्री वहाँ नहीं है, वह श्री रहित है। हम बातचीत में कहते हैं कि अरे वह व्यक्ति तो श्रीहीन हो गया। श्रीहीन माने व्यक्ति तो है किन्तु उसकी श्री नहीं रही। श्री रहित राम की कोई महिमा नहीं है, याद रखो। इसलिए हमारे यहाँ राम के साथ श्री की प्रतिष्ठा है, हम श्रीराम कहते हैं। एक मन्त्र १३ अक्षर का है जिसमें इसी की प्रधानता और महत्ता गाई गई है—'**श्री राम जय राम जय जय राम**' श्री से युक्त राम ही विजयी हो सकता है, दूसरा राम तो हमेशा हारता रहेगा। श्री रहित राम विजयी नहीं होता। इसी प्रकार से भगवान् शंकर के लिए भी कहा गया है कि शिव जो हैं वह 'इ' के होने से है। 'इ' माने शक्ति। यदि शिव से इकार निकाल लिया जाये तो वहाँ क्या बचेगा? शव। 'शव' माने मुर्दा, शिव से यदि इकार निकाल दिया जाये तो वहाँ शव रह जाता है और कुछ नहीं रहेगा। शक्ति के बिना शक्तिमान का कोई महत्त्व नहीं। यह देवीभागवत हमें विशेष रूप से समझाता है। इसमें एक बहुत सुन्दर कथा है—

एक दिन भगवान् विष्णु शिव के साथ बैठे हुए विनोद में कोई बात कर रहे थे और उधर लक्ष्मी पार्वती आपस में बातें करनी लगीं। उनको देख करके दोनों देवों को बुरा लगा कि हम लोग आपस में बैठे चर्चा कर रहे थे, बीच में क्या बात करने लगी। वहाँ पर दोनों देवों ने उन शक्तियों के प्रति कड़ी निगाह से देखा,

जैसे घूरते हुए आदमी देखते हैं। जब पुरुष के सामने उनकी देवियाँ कोई ऐसी बात करने लगें जो उनको पसन्द न हो तो पुरुष उनको घूर कर देखेंगे। माताओं को इस बात का अधिक अनुभव होगा। जिस समय दोनों देवों ने घूर कर देखा तो लक्ष्मी और पार्वती अन्तर्धान हो गईं तो दोनों देवता शक्तिहीन हो गये। उनसे न उठा जाये, न बैठा जाये और न बोला जाये, वहीं बेकार हो करके पड़ गये। जब विष्णु और शिव दोनों शक्तिहीन हो कर पड़ गये तो दुनिया में त्राहि-२ मच गई। देवताओं ने ब्रह्मदेव से प्रार्थना किया कि भगवन्! यह क्या अनर्थ हो गया। इन देवताओं के शक्तिहीन हो जाने पर विश्व का कल्याण कैसे होगा? संसार का क्रम कैसे चलेगा? ब्रह्मदेव ने ध्यान लगा कर देखा और कहा—देवताओ! यह तो महामाया की महिमा है और दोनों शक्तियाँ अन्तर्धान हो गई हैं। जब तक उनसे प्रार्थना नहीं की जायेगी तब तक ये देवियाँ प्रकट नहीं हो सकती और इन दोनों देवियों के बिना ये देवता कुछ नहीं कर सकते। शिव इकार के बिना शव हैं और यही गति श्री से रहित विष्णु की है। यदि श्री नहीं है तो विष्णु केवल एक चेतन मात्र है, व्यापक मात्र है और कुछ नहीं है। शक्ति रहित शक्तिमान कुछ नहीं। देवताओं ने महामाया भगवती से प्रार्थना की, जिसने अपने अंश से उमा और रमा अर्थात् लक्ष्मी और पार्वती को प्रकट किया था; उस पराशक्ति की आराधना और उपासना की। उसने देवताओं की प्रार्थना सुन कर कहा—तुम लोग घबराओ नहीं। इन दोनों देवताओं को अपनी शक्ति पर बड़ा अभिमान था, अपने आप पर बड़ा गौरव था कि हम जो चाहें कर सकते हैं। इनको केवल इतना बताना था कि हमारे बिना इनका कोई अस्तित्व नहीं है। अब इनको यह बात समझ में आ गई है। देवताओं ने प्रार्थना की कि हे भगवती! तुम्हारा पुनः आविर्भाव कैसे होगा? महामाया ने कहा कि मैं अवतार लूंगी। मैं समुद्र मन्थन के द्वारा लक्ष्मी होकर प्रकट होऊँगी। रमा ने कहा—तब मैं पुनः विष्णु का वरण करूँगी तथा उनको पुनः शक्ति प्रदान करूँगी और दक्ष के यहाँ सती हो करके अवतार लूँगी और पुनः शिव को पति रूप में वरण करके उनको शक्ति प्रदान कर दूँगी। देवताओं को यह भगवती का वरदान हुआ। देवताओं ने कोशिश करके समुद्र मन्थन किया जिससे श्री का आविर्भाव हुआ और विष्णु पुनः श्री युक्त हुए। इसी प्रकार से दक्ष के यहाँ सती का जन्म हुआ और शिव के साथ सम्बन्ध करके पुनः शिव शक्ति युक्त हुए।

इसमें एक और कथा आती है भगवान् शंकर का अपमान करके दक्ष ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया जिसमें भगवान् शंकर को नहीं बुलाया गया। सती को दुःख हुआ। सती शिव का अपमान नहीं सह सकती। उन्होंने दक्ष के यज्ञ में

अपने आप का होम कर दिया। परिणाम क्या हुआ? भगवान् शंकर ने क्रोध में आकर वीरभद्र को भेज करके दक्ष के यज्ञ का नाश करवाया और दक्ष का सिर काट लिया गया। देवताओं की प्रार्थना से बकरे का सिर लगा कर दक्ष पुनः जीवित हुआ और उसका यज्ञ सम्पूर्ण हुआ। भगवान् शंकर सती की उस लाश को लेकर विलाप करते हुए घूमने लगे। भगवान् विष्णु ने देवताओं की प्रार्थना से बाण द्वारा सती के अंगों को टुकड़े-२ कर दिया जिससे शिव मोह विमुक्त हो जायें। जिस-२ स्थान पर सती का अंग गिरा वहाँ शक्ति पीठ की स्थापना हुई। भारत में १०८ शक्ति पीठ हैं जहाँ पर शक्ति की उपासना होती है। भगवती ने यह वरदान दिया कि जिन-२ स्थानों पर सती का अंग गिरा है वहाँ-२ शक्तिपीठ होगा और जो कोई प्राणी वहाँ यात्रा करके बैठ कर शक्ति मन्त्र का पुरश्चरण करेगा, वह परम मोक्ष वा सिद्धि को प्राप्त कर लेगा। बाद में तारकासुर का वध करने के लिए शंकर के वीर्य से यदि पुत्र होगा तो वही तारकासुर का नाश कर सकता है। ब्रह्मा के इस वरदान के द्वारा देवताओं ने पुनः भगवती से प्रार्थना की. भगवती प्रकट होकर देवताओं को वरदान देती है कि तुम लोग घबराओ नहीं, मैं हिमाचल के यहाँ पुत्री रूपी में प्रकट हो रही हूँ और तुम लोगों का कल्याण करूँगी। भगवती ने जब यह वरदान दिया तो उस सभा में हिमाचल भी थे। हिमाचल ने भगवती से प्रार्थना की, हे देवि! मैं इस योग्य नहीं था कि तुम मेरी पुत्री के रूप में प्रकट होती। माँ! तुमने करुणा की कि तुम मेरी पुत्री रूप में मेरे घर में प्रकट होवोगी, उसी रूप से मुझे परम तत्त्व को प्राप्त करने का मार्ग भी बताओ। देवी भागवत का यह अमूल्य प्रसंग है जिसमें भगवती ने हिमाचल नरेश को देवी-तत्त्व का बोध कराया है और पुनः अपनी पूजा, उपासना और स्तुति की विधि बताई है। थोड़ी सी बातें मैं इस विषय में और समझाऊँगा।

हिमाचल ने भगवती से प्रार्थना की—हे देवि! तुम मुझे पहले अपने रूप का बोध कराओ। भगवती ने बताया कि मैं अचिन्त्य ब्रह्म हूँ। मेरे से ही प्रकृति और पुरुष दोनों प्रकट होते हैं। वास्तव में न मैं स्त्री हूँ और न मैं पुरुष हूँ। निर्गुण, निराकार, निरीह, निरंजन, मेरा दिव्य, चिन्मय एवं अनिर्वचनीय स्वरूप है। मेरे से ही एक शक्ति का आविर्भाव होता है, जिसे माया कहते हैं। वह माया त्रिगुणात्मिका है और उसी से मेरी ज्ञानात्मिका शक्ति पुरुष के रूप में प्रकट होती है। उस त्रिगुणात्मिका माया, प्रकृति और पुरुष से सारे संसार का निर्माण होता है। उसे प्रकृति क्यों कहते हैं? क्योंकि 'प्र' शब्द का अर्थ होता है प्रकृष्ट वा उत्तम। और उत्तम सतोगुण है। 'कृ' का अर्थ होता है क्रिया वा गति। गति रजोगुण में है

और 'ति' का अर्थ होता है तम, अचल, ठोस और वह तमोगुण में है। इन तीन अक्षरों के नाते—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुणमयी होने के नाते उसे प्रकृति कहते हैं। इसका दूसरा अर्थ और है। 'प्र' माने प्रकृष्ट, कृति माने रचना। जिसके द्वारा प्रकृष्ट रचना हो—

प्रकृष्ट रूपेण कृयते अनया इदं सर्वम्।

जिसके द्वारा प्रकृष्ट रूप से अनन्त ब्रह्माण्ड का सृजन होता है, उस पराशक्ति को भी प्रकृति कहते हैं। इसका तीसरा एक और अर्थ बताया, 'प्र' माने प्रथम, मुख्य, मूल और कृति माने कार्य जो समस्त संसार रूपी कारणों का मूल हो, मुख्य हो, प्रथम हो, आदि हो, उसको भी प्रकृति कहते हैं। इसलिए वह पराशक्ति प्रकृति कही जाती है क्योंकि वह समस्त संसार की मूल है और वह प्र-कृ-ति सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों गुणों से युक्त है, उसी के द्वारा प्रकृष्ट रूपेण अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना होती है। इन तीनों कारणों से उसका नाम प्रकृति है और उस प्रकृति को प्रकाशित करने वाला, उसके रचे हुए पुर में विश्राम करने वाला जो है उसे कहते हैं पुरुष।

"पुरीशेते इति पुरुषः" पुरी माने नगर वा शहर। मनुष्य का शरीर जो है यह पुरी है। 'पुरीशेते विश्रमते', इस पुरी में वह शयन करता है, विश्राम करता है, इसलिए उस परम चैतन्य आत्मा का नाम पुरुष है। प्रकृति और पुरुष, चेतन और शक्ति, इन दोनों के संयोग से अनन्त ब्रह्माण्ड का सृजन होता है। इसलिए भगवती हिमाचल से कहती है कि यह समस्त विश्व जो है उसके अभिव्यक्त स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, हिमाचल पूछते हैं—माँ! यदि तुम्हारा ध्यान करना हो तो किस रूप में किया जाये? भगवती कहती है—मेरे ध्यान का उत्तम स्वरूप है विराट् जो अनन्त ब्रह्माण्डों से युक्त है। विराट् ही मेरा स्वरूप है। जब तुम मेरा ध्यान करो तो मेरे बीज मन्त्र का जाप करो और सद्‌गुरु की शरण में जाकर मेरे माया बीज को ग्रहण करो। माया बीज को ग्रहण करके, उसका जाप करते हुए, मेरे विराट् रूप का चिन्तन करो, थोड़े दिन बाद तुम्हें मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान हो जायेगा और तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। फिर हिमाचल पूछते हैं—भगवती! तुम अपनी पूजा की कोई सरल विधि समझा दो। भगवती कहती है—मेरी पूजा के दो भेद हैं अर्थात् मेरी पूजा दो प्रकार से की जाती है-अन्तरङ्ग पूजा और बहिरङ्ग पूजा। अन्तरङ्ग पूजा में किसी प्रकार के बाह्य साधन की जरूरत नहीं होती। वह पूजा मानसिक है, ध्यान से की जाती है, वह रहस्यमयी है और गुरु की कृपा से प्राप्त होती है। दूसरी बहिरङ्ग पूजा है। बहिरङ्ग पूजा बाहर करते हैं। भगवती

कहती है कि बाहर पूजा दो प्रकार से की जाती है एक वैदिकी और दूसरी पूजा तान्त्रिकी है।

आप लोग जानते होंगे तान्त्रिकी पूजा में पंच मकार का प्रयोग होता है। तान्त्रिक पूजा बड़ी रहस्यमयी है, इसमें पंच मकार का प्रयोग किया जाता है। पंच मकार क्या है ? माँस, मछली, मैथुन, मदिरा और मुद्रा; इन पाँचों के द्वारा जो पूजा होती है, उसको पंच मकार कहते हैं। पंच मकार सुन कर घबराना नहीं, इनका अर्थ बड़ा रहस्यमय है। यहाँ माँस माने यह माँस नहीं है, मत्स्य माने यह मछली नहीं है, यहाँ मद्य माने शराब नहीं, मैथुन माने स्त्री-पुरुष का संयोग नहीं और मुद्रा माने रुपया नहीं है। यह बहुत गोपनीय एवं रहस्यमयी विद्या है, इसको हमारे यहाँ वाममार्ग कहते हैं। वाममार्ग माने उलटा रास्ता। दो प्रकार के रास्ते हैं—दक्षिण मार्ग और वाममार्ग। दक्षिण मार्ग संसार से होकर गुजरने वाला रास्ता है, वाममार्ग विरक्तों का रास्ता है, संसार के विमुख होकर चलने का। लेकिन दुर्भाग्य से इसका रहस्य धीरे-२ लोप हो गया और इसके पुजारी इसके शब्दार्थ का अनुकरण करते हुए स्वयं को नष्ट कर दिए और रहस्यमयी विद्या समाप्त हो गई।

हमारे यहाँ एक सिद्धान्त था जिसमें तन्त्र शास्त्रों में बताया गया कि यह ज्ञान या तो पुत्र को देना चाहिए या शिष्य को देना चाहिए, साधारण लोगों को नहीं देना चाहिए। शिष्य और पुत्र की भी परीक्षा करके यह विद्या देनी चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ कि जो अच्छे विद्या के जानकार थे, उन्होंने यह विद्या दी नहीं, बताई नहीं। बिना उनके बताए जो पुस्तक में लिखा था, लोगों ने उस पर अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया, रहस्य तो समझे नहीं क्योंकि रहस्य तो गुरु-गम्य था। उन्हें कोई गुरु मिला नहीं जो रहस्य को समझाता। पुस्तक पढ़ कर उसे प्रैक्टिकल में लाने लगे। इसलिए माँस के रहस्य को क्या जानें, माँस शब्द पढ़ा तो समझा माँस, बकरा लाकर काटा और माँस ले आये। मदिरा शब्द पढ़ा तो सोचने लगे यह तो बहुत अच्छी बात है, दो बोतल लाकर मदिरा रख लिया। अब क्या चाहिए ? मत्स्य। बोले दो-चार मछलियाँ लाकर रख दो और क्या चाहिए- मैथुन, बोले उससे बढ़ कर आनन्द की बात क्या हो सकती है। यह उस युग की बात नहीं, इस युग में भी ऐसे पतित हैं जहाँ संयम और नियम की तो जरूरत ही नहीं है। भारत में अभी-२ एक महापुरुष हुए हैं, उनके यहाँ क्रियात्मक प्रयोग होता था, वह भी अकेले नहीं सामूहिक रूप में इन पंच मकारों का प्रयोग किया जाता था। उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी थी कि यदि जल्दी समाधि लाभ लेना

हो तो एक ही रास्ता है 'सम्भोग'। उस पुस्तक का नाम था 'सम्भोग से समाधि की ओर'। ऐसे लोगों को मानने वाले लाखों मिलेंगे क्योंकि वहाँ संयम की आवश्यकता नहीं। बावरा जी के पास आओ तो सबसे पहले पूछेंगे, माँस खाते हो तो उसे छोड़ दो तब तुम प्राणायाम कर सकते हो, धूम्रपान करते हो तो उसे छोड़ दो तब तुम प्राणायाम कर सकते हो। ये सारी वस्तुएँ छोड़ने पर प्राणायाम होगा, साधन होगा। शुद्ध जीवन होगा तो तुम्हारे में दैवी लक्षण आयेंगे। आजकल के पतित समाज में २४ घण्टें सांसारिक विषयों के अतिरिक्त और किसी की चिन्ता नहीं है। जो समाज स्वयं उसी में डूबा हुआ है यदि उसको कोई ऐसा गुरु मिल जाये कि तुम इसी में डूबे रहो और हम तुम्हें बैकुण्ठ पहुँचा देंगे तो उसे और क्या चाहिए? इससे सरल रास्ता उसे और क्या चाहिए? वह तुरन्त तैयार हो जायेगा, बहुत अच्छी बात है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि वाममार्ग बहुत ही कठिन मार्ग रहा है। इसमें वही लोग सफल होते हैं जो अपने प्राण की आहुति देकर के मृत्यु के मुँह में हमेशा जाने के लिए तैयार रहते हैं, जिनको इस संसार से कोई मतलब नहीं। जो अनेक प्रकार की क्रियाओं के द्वारा इन पंचमकार का सेवन करते थे, ये पंचमकार बाहर से नहीं, अन्दर से सेवन किए जाते हैं। इसमें मैथुन का रहस्य था जो अभी मैंने आप लोगों को बताया, राधा और कृष्ण का संयोग वा निकुंज का विहार। जिसको वैष्णव निकुंज का विहार कहते हैं, उसी को शैव शिव-शक्ति मिलन कहते हैं। जिसको शैव शिव-शक्ति मिलन कहते हैं उसी को वाममार्गी कहते हैं मैथुन का आनन्द। चेतना शक्ति को नीचे से उठा करके ब्रह्मचक्र में ले जा करके आत्मा के साथ जोड़ना, वह मैथुन था। जिह्वा को लौटा करके तालु के और नीचे ले जाकर खेचरी मुद्रा के द्वारा ऊपर से गिरने वाले अमृत का पान करना, माँस भक्षण बताया गया है और उसको गो-माँस भक्षण कहते हैं। यह शास्त्रों में लिखा हुआ है लेकिन अब गोमाँस के स्थान पर कोई पुस्तक को पढ़े कि जो गो-माँस भक्षण नहीं करता वह अमर नहीं होगा, वह जाकर गऊ काट कर खाने लगे तो नरक के सिवाय उसे क्या मिलेगा? वहाँ गो शब्द का अभिप्राय जिह्वा है और माँस का अभिप्राय सार है। इसी रूप से प्रत्येक तत्त्व का गम्भीर अर्थ है। मुद्रा माने रुपया-पैसा नहीं है, उसमें योग मुद्रा, योनि मुद्रा, वैष्णवी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा आदि ये सभी योग की मुद्रायें हैं। योगी इनकी साधना करता था अपने प्राण को ऊपर ले जाने के लिए। देवीभागवत में ये सभी बातें रहस्यमयी हैं और भगवती की यह तान्त्रिक उपासना है। उस कुण्डलिनी शक्ति को जागृत

करने के लिए ही यह तान्त्रिक प्रक्रिया थी जिसका प्रयोग प्राचीन काल में लोग करते थे, आज वह विद्या ही समाप्त हो गई। अब उसका विकृत रूप ही रह गया है, जिसकी चर्चा मैंने अभी की।

भगवती की उपासना की दूसरी वैदिक विधि है। वैदिक उपासना के भी दो रास्ते हैं—एक मूर्ति की उपासना अर्थात् मूर्ति के माध्यम से भगवती की उपासना करना और दूसरा विराट् रूप में उसका चिन्तन। मूर्ति माने लोह, काष्ठ, पाषाण, धातु और मृत्तिका, इस प्रकार के तत्त्वों की मूर्ति बना करके उसके माध्यम से भगवती की उपासना। जैसे चित्र में, अंक में, पट में मेरी कल्पना करते हुए मेरी उपासना करना। अंक जिसे यन्त्र कहते हैं वह चार पंक्तियों, छः पंक्तियों वा अष्टकोण, चतुष्ट कोण और त्रिकोण आदि के रूप में बनाया जाता है, उसको पट वा यन्त्र कहते हैं। भगवती कहती है कि यन्त्र रूप में, मूर्ति रूप में, अक्षर रूप में जैसे षोडश मातृकाओं का चिन्तन करते हुए, चक्रों में अक्षरों का ध्यान करते हुए उपासना करना। भगवती कहती है, यह मेरी साकार उपासना है और अपनी इस उपासना पद्धति को बता करके वे कहती हैं कि इन में सबसे सरलतम उपासना है कि तुम अपने अहं को मेरे को समर्पित करते हुए उसके साथ मेरी भावना करते हुए विराट् रूप में जो सर्वभूतमयी देवी है, उसका चिन्तन और ध्यान करते हुए सर्वत्र अपने जीवन का संचालन करो। मेरा हो करके, मेरे नाते, मैं ही सर्व रूप में हूँ, ऐसा अनुभव करते हुए यदि तुम मेरी उपासना करते हो तो यह उपासना सर्वश्रेष्ठ उपासना है।

भगवती कहती है कि उत्तम अधिकारी विराट् रूप में मेरी उपासना करते हैं, जो उत्तम अधिकारी नहीं हैं जो मध्यम अधिकारी हैं, वे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, पृथ्वी में भावना करके मेरी उपासना करते हैं और जो निम्न अधिकारी हैं, वे किसी मूर्ति, चित्र में मेरी भावना करके मेरी उपासना करते हैं। यह अधिकारी भेद से उन्होंने उपासना का विवेचन किया। भगवती के द्वारा बताये हुए इस उपासना की विधि में आप लोग स्वयं समझ लें आपके लिए कौन सा मार्ग उत्तम है। भगवती की इस महिमा को सुनते हुए उसकी उपासना का एक माध्यम चुन लें, चुन करके किसी भी नाम और किसी भी रूप में उसकी उपासना प्रारम्भ कर दें। कल मैंने एक बात समझाई थी कि आपके पास भोजन की उत्तम से उत्तम समस्त सामग्री हो, घी, दूध, चीनी, चावल और मेवा भी आप के पास है, पुस्तक में लिखा हुआ है कि इसके संयोग से आप उत्तम तस्मयी बना कर पी सकते हो लेकिन आप बनाना नहीं जानते तो कौन सा स्वाद लेंगे? कोई लाभ

होगा? नहीं होगा। इसी रूप से देवीभागवत में यह बात बताई गई कि सारी साधना की सामग्री तो है। हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक, बुद्धि, मन, अहंकार और इन्द्रियाँ रूपी सारी साधन सामग्री आपके पास है और साधन का विधान शास्त्र में लिखा हुआ है। इन दोनों के होते हुए भी यदि तुम विधानानुसार अपनी सामग्री का प्रयोग नहीं करते तो तुम उसके लाभ से वंचित रह जाओगे। इसलिए आप लोग इस महाग्रंथ के संदेशानुसार अपने प्राप्त साधनों का शास्त्र विधि से प्रयोग कीजिए। कोई एक रास्ता अपना करके उस रास्ते पर आगे बढ़ने की कोशिश कीजिए। आप किसी भी रूप में परमात्मा की उपासना करते हो, वह शक्ति की उपासना है। आप राम के उपासक हैं तो शक्ति रूप में सीता पास बैठी हुई है, कृष्ण की उपासना करते हो तो भी शक्ति रूप में राधा उनके साथ हैं, आप शिव के उपासक हैं तो उमा उनके साथ बैठी हुई है, यदि नारायण के उपासक हैं तब भी लक्ष्मी उनके साथ बैठी हुई है। यदि आप निर्गुण-निराकार ब्रह्म के उपासक हैं तो पराशक्ति साथ बैठी हुई है। इसलिए यह सोचने की बात नहीं कि हमारा इष्ट तो देवी नहीं है; हमारे इष्ट तो राम, कृष्ण और शिव हैं। तो सीता, राधा और उमा वहाँ पर नहीं हैं क्या? माँ भगवती तो सदैव साथ बैठी हुई हैं। बिना भगवती के भगवान् हो ही नहीं सकते।

भगवान् शब्द का अर्थ ही होता है भगवती से युक्त। जब आप भगवान् कहते हैं तो वहाँ भगवती साथ है। हमारे यहाँ उपनिषदों में यह भी बताया गया कि बिना शक्ति के आप किसी शब्द का उच्चारण ही नहीं कर सकते। जैसे मातृकायें हैं, जैसे 'क' है। 'क' में जो 'अ' है वह शक्ति है यदि 'अ' न बोलकर 'क' बोलना चाहें तो आप बोल ही नहीं सकते, उच्चारण ही नहीं होता। इसलिए बिना शक्ति के कोई मन्त्र हो ही नहीं सकता। प्रत्येक मन्त्र की शक्ति है, बीज है, कीलक है, देवता है, जो भी मन्त्र आप जपते हो, वह शक्ति से सम्बन्धित है, पहले यह विश्वास होना चाहिए। तदानुसार अपनी भावना से किसी भी रूप में उस पराशक्ति की आराधना वा उपासना करें, उसके द्वारा आपको दिव्य प्रकाश, दिव्य ज्योति प्राप्त होगी, जिससे आप अपना कल्याण कर सकेंगे। जब आपका कल्याण हो जायेगा तो आप सुन्दर समाज की रचना में मूल कारण बन जाओगे। हमारा मूल सिद्धान्त है अपना कल्याण और सुन्दर समाज की रचना। मेरी एक 'जीवन विज्ञान' पुस्तक है जिसका शीर्षक यही है, उसमें जितने व्याख्यान हैं, उनका यही सार है, अपना कल्याण और सुन्दर समाज का निर्माण। वह कैसे हो? केवल शक्ति की उपासना से। संयम, नियम और सदाचार से तुम स्वयं में

'दिव्यता' की प्रतिष्ठा करो—

यद् देवा अकुर्वन् तद् कर्माणि।

जैसा देवताओं ने किया है वैसा तुम भी करो, इसलिए देवी भागवत में जहाँ कहीं भी शक्ति की उपासना की बात आई, वहाँ देवता ही कर रहे हैं। कोई मनुष्य नहीं कर रहा। प्रत्येक स्थान पर देवता ही प्रार्थना कर रहे हैं, स्तुति कर रहे हैं, सब जगह देवता मर रहे हैं, सब जगह देवताओं की रक्षा के लिए वह दौड़ रही है। इसलिए जो लोग दैवी गुणों से सम्पन्न हैं या अपने में दैवी गुणों की वृद्धि चाहते हैं, उनको उस महामाया की आराधना करते हुए उस पराशक्ति से अपने सरंक्षण की प्रार्थना करनी चाहिए। उस दैवी संगठन से ही उस शक्ति का आविर्भाव होगा जो कि आपके कष्ट को दूर करके आपको सुख और शान्ति प्रदान करेगी। इन्हीं शब्दों के साथ आज का यह प्रसंग यहीं विश्राम पाता है।

हरि ॐ तत्सत्।

७

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् का मंगलमय विधान आप सभी के लिए कल्याणप्रद हो, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना! आज हमारे इस देवीभागवत यज्ञ का सातवाँ दिन है। इन दिनों में आप लोग भगवती की माया, उसके चिन्मय स्वरूप के सम्बन्ध में बहुत सी बातें सुने। मुझे विश्वास है उसका कुछ अंश भी आपके हृदय में स्थान पा जायेगा, उससे आप अपने जीवन को उज्ज्वल और महान् बना सकेंगे।

देवीभागवत शक्ति की महिमा से परिपूर्ण सद्ग्रन्थ है। हमारे यहाँ शास्त्रों में श्रुति और स्मृति, इन दोनों को परमात्मा का नेत्र और पुराण को परमात्मा का हृदय बताया गया है। जैसे हृदय भाव पूर्ण होता है, आस्था का आधार होता है, इसी प्रकार से यह पुराण भावपूर्ण आस्था का आधार और केन्द्र है। पुराण की कथाओं को आप केवल बाह्य दृष्टि से ही न देखें, उनके अन्तरतम् में निहित भावों का मनन, चिन्तन और अध्ययन करें तब आप उसकी महिमा को समझ पायेंगे। कल मैंने आप लोगों को श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में कुछ बातें बताई थी, इसी प्रकार से सभी पुराणों की जो मूल कथाएँ हैं, वे बड़ी निगूढ़ हैं, रहस्यमयी हैं। उन कथाओं का श्रवण, मनन और उन पर चिन्तन करके आप उन निगूढ़तम रहस्यों को समझ कर जीवन में प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

देवीभागवत में बहुत सी प्रचलित कथाओं का वृहद विवेचन है। जैसे महाराज हरीशचन्द्र, सत्यवान-सावित्री, इसी प्रकार से और भी बहुत सी कथाएँ हैं जिनको आपने सुना है और जो हमारे समाज में प्रचलित हैं, इसलिए मैंने उन कथाओं की व्याख्या नहीं की। हरीशचन्द्र का जीवन सत्य से अनुप्राणित था, सत्य के लिए उन्होंने अपने जीवन में कितने कष्ट एवं विपत्तियों को सहा है, आप लोग हिन्दू होने के नाते जानते हैं। आज भी हरीशचन्द्र का सत्य एक हिन्दू को सत्य पर अटल रहने की प्रेरणा देता है। इसी रूप से सावित्री और सत्यवान् की कथा हिन्दू होने के नाते कई बार सुने होंगे। आज भी हिन्दू नारी यदि अपने पातिव्रत धर्म का पालन करते हुए उसमें दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा करती है तो सावित्री और सीता का ही स्मरण करती है। आज भी सीता, सावित्री हिन्दू नारियों को प्रेरणा प्रदान करती हैं। कितना कष्ट सह करके वह राजकुमारी अपने पति के प्राण की रक्षा करती है। अपने पातिव्रत धर्म से यमराज के अधिकार को स्तंभित कर देती है।

प्राचीनकाल में हमारे यहाँ स्वयंवर की प्रथा थी। स्वयंवर में कन्या को अधिकार होता था अपने अनुरूप पति का वरण करने का। आजकल जिसे Love marriage वा प्रेम विवाह कहते हैं, वह स्वयंवर प्रेम विवाह नहीं था। उसका यह अर्थ करना गलत होगा, अनर्थकारी होगा। यहाँ वर्तमान में आप जानते हैं विवाह पहले हो जाता है Love बाद में होता रहता है। केवल प्रेम विवाह का नाम होता है, लेकिन स्वयंवर में कन्या किसी पुरुष के साथ घूमती नहीं, उसके प्रेम में नहीं फंसती। वह किसी पुरुष के वंश परम्परा को पहले सुनती है, समझती है, तब वह उसे वरण करती है। एक प्रक्रिया थी, आमन्त्रित सभ्य समाज के लोग स्वयंवर में आकर बैठते थे, कन्या के हाथ में जयमाला होती थी और प्रत्येक पुरुष की वंशावली, उसका पुरुषार्थ, उसकी योग्यता, उसके गुण का पहले परिचय दिया जाता था। परिचय के पश्चात् वह कन्या अपनी रुचि के अनुसार किसी पुरुष के गले में जयमाला डालती थी। सावित्री ने सत्यवान् का वरण किया था, सत्यवान् राजा नहीं था बल्कि उसका पिता राजा था लेकिन वह राज्य च्युत था, अन्धा होने के नाते राज्य से निकाल दिया गया था। सत्यवान् स्वयं उस समय बालक था, दूसरे राजा ने आक्रमण करके उसे देश से बाहर निकाल कर अपना आधिपत्य जमा लिया था। बालक अपने माता-पिता के साथ जंगल में जाकर रहने लगा। परिणाम क्या हुआ? बालक सत्यवान अपने गुणों से, अपने आचरण से, माता-पिता की भक्ति और अपने सदाचार से धीरे-

धीरे दिव्यता की सीढ़ी चढ़ने लगा। सावित्री जब अपने पिता की आज्ञा से पति के वरण में पुरुषों का चरित्र वा उनके गुण-धर्म को देखने लगी तो वह सत्यवान, जिसका पिता राज्य से दूर चला गया था और जो अपने पिता के लिए जीविका के रूप में जंगल की लकड़ी काट करके उससे अपना निर्वाह करता था, सावित्री ने उसे अपने पतिरूप में वरण कर लिया। नारद जी ने आकर उसके पिता को बताया कि सत्यवान् बहुत गुणवान, बुद्धिमान, वेदज्ञ और तत्त्वज्ञ है। ऐसा वर दुनिया में दूसरा कोई नहीं है, गुण और धर्म के अनुसार वह सावित्री के योग्य है लेकिन? महाराज ने प्रश्न किया, भगवन्! लेकिन क्या है? नारद ने कहा—यह बड़े दुःख की बात है। राजा के बार-२ आग्रह करने पर उन्होंने बताया कि उसकी आयु केवल सात दिन की रह गई है। विवाह के सातवें दिन उसकी मृत्यु हो जायेगी। यह संदेश राजा के लिए बहुत ही आघातप्रद था। राजा ने कहा— नहीं, सावित्री का विवाह सत्यवान् से नहीं हो सकता। जिस पुरुष की आयु सात दिन की शेष हो, उस पुरुष से मैं अपनी कन्या का विवाह कैसे कर सकता हूँ? राजा ने अपनी पुत्री को आज्ञा दी कि तू अपने लिए और कोई पुरुष देख ले। उसने कहा—नहीं, दान एक बार होता है बार-२ नहीं, समर्पण एक बार होता है बार-२ नहीं। पिता के बहुत समझाने पर कि जिसको तुम समर्पण किए हो वह केवल सात दिन जीवित रहेगा। उसने कहा, पिता जी! आप घबराते क्यों हो, सात दिन तो बहुत होता है। यदि उसकी आयु केवल सात घड़ी की होती तब भी मैं उसे पति रूप में वरण करती। सावित्री की आस्था, उसके अडिग विश्वास ने पिता को मजबूर कर दिया। जानते हुए भी कि उसकी आयु सात दिन शेष रह गई है सत्यवान् के साथ उसका विवाह हुआ और उसके पश्चात् की कथा आप जानते होंगे कि किस प्रकार से उसने यमराज के फन्दे से अपने पति को छुड़वाया। छुड़वाया ही नहीं बल्कि उसके बदले में उसने अपने श्वसुर के खोये हुए राज्य को, अपने श्वसुर की आँखों को और अपने पति के द्वारा स्वयं से १०० पुत्रों का वरदान प्राप्त किया। यह कथा बड़े ही मार्मिक शब्दों में देवीभागवत में वर्णित है।

ये बातें बहुत विवेचना की नहीं हैं, इतिहास की घटनाएँ हैं। इन घटनाओं ने आज दिन तक हिन्दू जाति को शक्ति दी है, प्रेरणा दी है, दिशा दी है और आस्था दी है, इसलिए इनका अपना महत्त्व है। आज मैं आप लोगों को उस पराशक्ति के विषय में और कुछ बताने जा रहा हूँ। श्रीमद्भागवत में बताया गया कि शक्ति का अवतरण पाँच रूपों में हुआ। शक्ति के प्रधान पाँच रूप दुर्गा,

सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री वा राधा, ये परा प्रकृति शक्ति के पाँच रूप बताये गये हैं। इनकी उपासना का विधान है। आगे इन देवियों के अंश से और अनेकों देवियों का आविर्भाव हुआ है लेकिन देवी भागवत कहता है कि इन देवियों में दो देवियाँ ऐसी हैं जो मानव-मात्र के लिए परमाराध्य हैं। मनुष्य जब तक उन दो देवियों की आराधना नहीं करेगा तब तक उसमें पूर्णता की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। पूछा गया कि वो दो देवियाँ कौन हैं? कहा—दुर्गा और राधा। आपको देवीभागवत बताता है कि राधा ब्रह्म की प्राणशक्ति है और दुर्गा उसकी बुद्धि शक्ति है। प्राण और बुद्धि की आराधना के बिना क्या मनुष्य पूर्ण हो सकता है? प्राण ही तो सर्वस्व है। दु:ख की बात यह है कि अज्ञानी मनुष्य अपने अमूल्य प्राणों की आराधना नहीं कर पाता, उसकी सुरक्षा एवं संभाल नहीं कर पाता और अमूल्य प्राणों को व्यर्थ में ही गवा देता है। आप लोग जानते हैं कि जिस दिन मनुष्य पैदा होता है तब से लेकर जब उसके जीवन का अन्त होता है तब तक केवल प्राण ही उसका आश्रय एवं आधार होता है। प्राण ही उसकी आयु है, प्राण ही उसकी शक्ति है, प्राण ही उसका जीवन है, प्राण के बिना वह कुछ नहीं है, निष्प्राण होता है लेकिन उस प्राणशक्ति की वह संभाल नहीं कर पाता। देवी भागवत कहता है कि उसकी पूजा करो। पूजा माने संभाल करो, उसका आदर करो। यदि तुम प्राण का आदर नहीं करते तो तुम अपना आदर नहीं कर पाओगे। यदि तुम अपना आदर नहीं करते तो वेदानुसार तुम आत्म हत्यारे हो। शास्त्रों में यह बताया गया कि जो दूसरों की हत्या करता है, उसके लिए प्रायश्चित हैं किन्तु आत्महत्या करने वाले के लिए कोई प्रायश्चित नहीं है। जो लोग गलती से ब्रह्म हत्या, गौ हत्या, मातृ हत्या, स्त्री हत्या और गुरु हत्या कर देते हैं, इन पाँच हत्याओं को घोर पाप कहा गया है किन्तु इनके लिए भी प्रायश्चित है। प्रायश्चित माने इस प्रकार की साधना है जिससे आप इन हत्याओं के पाप से मुक्त हो सकते हैं किन्तु आत्म हत्यारे के लिए शास्त्र में कोई प्रायश्चित नहीं है। वेद कहता है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता:।
ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना:॥

(ईशा० ३)

जो आत्म हत्यारे लोग हैं, वे मरने के बाद 'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता:' घोर अंधकार से आवृत जो प्रकाश रहित योनियाँ हैं, वे उनको प्राप्त होते हैं। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि जो लोग अपने प्राणों की संभाल नहीं करते, वे आत्महत्या कर रहे हैं इसलिए प्राणों की उपासना का

विधान है। इसके साथ थोड़ी सी बात मैं आप लोगों को और समझा दूँ। पहले भी समझाया हूँगा लेकिन इसे पुनः सुन लें।

हमारे जीवन का मूल आधार प्राण है। शास्त्र के सिद्धान्तानुसार हम २४ घण्टों में २१६०० श्वास लेते हैं। जिसका Normal जीवन है, स्वस्थ प्राणी है, वह २४ घण्टों में २१६०० श्वास लेता है जो कि क्रमशः एक घण्टे में लगभग ९०० श्वास निकलता है। आप लोगों की क्या राय है? दुनिया में श्वास से मूल्यवान और कोई वस्तु है? मरने वाले आदमी को दुनिया भर की सम्पत्ति लाकर दे दो, किसी से कहो इसके दो श्वास वृद्धि कर दे, कर सकेगा? यदि कर सकता तो बड़े से बड़े लीडर जिनके मरने से देश का देश साफ हो जाता है, वे कभी न मरने पाते। इस वैज्ञानिक युग में भी क्या कोई ऐसा ढंग निकला है जो क्षीण हुए श्वास की वृद्धि कर दे? आप एक घण्टे में अपने ९०० श्वास व्यय करते हैं, आप चाहें तब भी खर्च होगा और न चाहें तब भी खर्च होगा, यह तो Natural Process है। आप वह घण्टा किसमें लगाते हैं, क्या उन श्वासों के बदले में आपने कोई निर्माणात्मक कार्य किया, उन श्वासों का सदुपयोग आपने किया वा नहीं किया? कल्पना कीजिए—आपने एक घण्टे में परिश्रम करके १०० गिल्डर या हज़ार गिल्डर कमा लिया। क्या उन ९०० श्वासों की हज़ार गिल्डर कीमत हो सकती है? हज़ार गिल्डर में ९०० श्वास किसी से ले सकते हैं? क्या श्वास खरीदा जा सकता है? लाख कह दो, करोड़ कह दो, अरे विश्व का वैभव देने पर भी बदले में एक श्वास नहीं मिलता। उन श्वासों को आपने किसके लिए व्यय किया है, विचार कीजिए?

आपका कोई मित्र वा परिचित आ गया, आप अपने सामाजिक व्यवहार को रखने के लिए एक घण्टे भर उससे गप हाँकते रहे, जिससे न आपको कुछ मिला, न उसे कुछ मिला। आपने भी अपने ९०० श्वास बरबाद किए और उसने भी ९०० श्वास बरबाद किए, उससे लाभ कुछ नहीं हुआ बल्कि हानि हुई। हाँ, यदि वह व्यक्ति आपके कमाने वाले समय में आता तो आपको दुःख होता और आप सोचते कहाँ से आ गया। यह समय तो हमारे व्यापार का था, इतने समय में हम इतना रुपया बना लेते। आपने विचार तो किया लेकिन कब किया? जब आपको लगा कि इसके बैठने से हमारा रुपये का नुकसान हुआ। श्रीमान जी, आपने यह नहीं सोचा कि इतना अमूल्य श्वास व्यर्थ जा रहा है, कभी ध्यान दिया? नहीं दिया। यह तो Normal श्वास की स्थिति है कि एक घण्टे में ९०० होता है किन्तु श्वास अधिक भी चलता है, जब आपको घबराहट होती है। जब

आप भयभीत होते हो तो श्वास लम्बा चलने लगता है, जब आप क्रोध में, काम के वशीभूत होते हो तब भी श्वास लम्बा चलने लगता है, स्मरण कीजिए। ये कुछ ऐसी क्रियाएँ हैं जिसमें आपके श्वास का क्षय होता है। आप जानते हो पाप किसे कहते हैं? जिसमें मनुष्य के श्वास अधिक मात्रा में नष्ट होते हों, वह महापाप है। जब कोई बुराई करते हो तो भय के कारण आपका श्वास लम्बा चलता है वा नहीं, जब आप क्रोध में आते हो तो श्वास लम्बा चलता है वा नहीं? उस समय श्वास कन्ट्रोल में होता है? बिल्कुल नहीं होता। आप ऐसे लम्बी श्वास लेकर हाँफने लगते हैं, उस समय कहा जाता है कि क्रोध पाप का मूल है। पाप माने जिससे आपकी शक्ति का बिना मतलब के क्षय हो रहा है, अधिक मात्रा में, इसलिए वह पाप है। समय का दुरुपयोग तो सदैव पाप होता ही है। इसलिए मैं आपको बता रहा था कि इतना अमूल्य यह प्राण है, उस प्राण की यह दुर्गति!

थोड़ा सा और समझ लीजिए—जैसे आप प्राणायाम की विधि सीख लें और बैठ करके प्राणायाम करने लगे, एक मिनट में यदि आप दो बार, तीन बार अथवा चार बार श्वास लें, कोई भी आदमी जो बिल्कुल गिरा हुआ है यदि वह भी थोड़ी देर बैठकर श्वास रोके तो १५ सैकिण्ड तक तो रोक ही सकता है, १५ सैकिण्ड अधिक नहीं होते। १५ सैकिण्ड में यदि आप श्वास रोके तो एक मिनट में चार श्वास हुआ और १ घण्टे में कितना श्वास खर्च हुआ? २४० श्वास। जहाँ आपका ९०० श्वास जाता था वहाँ पर आपका केवल २४० श्वास खर्च हुआ। आप एक घण्टे प्राणायाम करते हुए अपने एक श्वास को १५ सैकेण्ड रोकें, ऐसे एक घण्टा लगायें। आप जानते हो एक घण्टे में कितनी कमाई कर सकते हो, ज़रा कल्पना कीजिए। एक घण्टे में आप ९०० श्वास व्यय करते हो लेकिन यदि एक घण्टे में आपने प्राणायाम किया तो २४० श्वास आपका जायेगा, शेष आपके हिस्से आयेगा। कितना बचाया आपने? ९०० में से २४० अथवा ३०० निकाल दें तब भी ६०० श्वास बचा। ६०० श्वास की बराबरी की दुनिया में कोई वस्तु है? नहीं है। आपने एक घण्टा नहीं आधा घण्टा किया तब भी आपने ३०० श्वास बचाये, क्या कोई कम है?

देवी भागवत कहता है कि जब तक भगवती दुर्गा प्रसन्न न हो, तब तक राधा की रक्षा नहीं होती, राधा की पूजा नहीं होती। राधा प्राणशक्ति है जिसकी मैं व्याख्या कर रहा हूँ और दुर्गा परमात्मा की बुद्धि शक्ति है। बुद्धि का नाम दुर्गा है। परमात्मा के महाप्राण का नाम राधा है, ऐसा देवी भागवत कहता है। आपके प्राण की कितनी महिमा है किन्तु उसको हम बचा नहीं पाते। भगवान् ने कितना सुन्दर

System बनाया है, आप बाहर से शुद्ध ऑक्सीज़न अन्दर ले रहे हैं और आप जो कुछ भी खाते हैं, उस Heat से वह हजम होता है, उससे कार्बनडायक्साईड बनता है जिसको आप बाहर फेंक रहे हैं। लेकिन जब बुद्धि विकृत हो जाती है तो उस समय आप बड़े मज़े से सूटा लगाकर अन्दर के अन्दर हजम कर गए। आप ज़रा विचार कीजिए—भगवान् ने System बनाया है ऑक्सीज़न अन्दर लो और कार्बनडायक्साईड बाहर फेंको लेकिन आपने कार्बन अन्दर भरने की कोशिश की और आक्सीज़न को बाहर ही रख दिया। यह प्राण की उपासना है, यह राधा की पूजा हो रही है? नहीं। इसलिए मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि आप उस परमात्मा की दिव्य शक्ति को पहचानिये। वह राधा केवल चित्र व मूर्ति में नहीं है, वह राधा आपके अन्दर वाली प्राणाशक्ति का नाम है। जैसे परमात्मा की पराशक्ति, प्राणमयी शक्ति राधा है वैसे ही जीवात्मा की प्राणमयी शक्ति भी राधा है इसलिए देवी भागवत राधा की आराधना का विधान बताता है। वह कहता है जब तक तुम राधा की उपासना वा अपने प्राण की उपासना नहीं करते, प्राण को सूक्ष्म नहीं करते, प्राण को ऊर्ध्वमुखी नहीं करते, प्राण को ले जाकर ब्रह्मचक्र में प्रतिष्ठित नहीं करते, तब तक तुम राधा की कृपा के पात्र नहीं बन सकते। जीवन में कितनी महत्वपूर्ण है राधा की उपासना! लेकिन यह उपासना आप कब करेंगे? आप अपने प्राणों की रक्षा में, प्राणों की संभाल में कब सफल होंगे, कब प्रवृत्त होंगे? कहा—जब आपकी बुद्धि ठीक होगी। खतरा तो वहाँ से शुरु होता है। रावण के दरबार में विभीषण उसे समझाते हुए एक बात बता रहा है—

सुमति कुमति सब के उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥

(रा० ५/४०-५)

दुनिया में कौन ऐसा व्यक्ति है जिसमें सुमति और कुमति दोनों न हों, सब में हैं किन्तु अन्तर क्या है?

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

(रा० ५/४०-६)

किन्तु जहाँ सुमति है वहाँ सब प्रकार की सम्पत्ति है, वैभव है और जहाँ कुमति है वहाँ विपत्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं। विपत्ति में मूल कारण जानते हो क्या है? कुमति। इस कुमति का ही तो परिणाम है जो हम अपने प्राणों की भी रक्षा नहीं

कर सकते, दूसरों की तो बात ही दूर रही। साधकों ने बताया है कि जब आप कोई गरिष्ट आहार पेट में डालते हो, तब आपके प्राणों को उसे हजम करने के लिए अधिक काम करना पड़ता है। पेट में जब माँस डालते हैं तो वह चार घण्टे में हजम होता है, आपके प्राण को दुगुना जोर लगाना पड़ता है। यदि दूध, शाक, फल, सब्जी और सुन्दर पदार्थ पेट में डालें तो वह कम से कम ढ़ाई घण्टे वा तीन घण्टे में हजम होता है, दोनों में इतना अन्तर है। जो वस्तु अधिक देर में हजम होगी प्राण को अधिक मेहनत करनी पड़ेगी, यह तो आप जानते हो, अग्नि अधिक प्रज्जवलित होगी, आपकी Extra energy व्यय होगी इसलिए मिताहारी, यताहारी, स्वल्पाहारी, फलाहारी और शाकाहारी की महिमा है। प्रत्येक प्रकार से वह प्राण की उपासना है। गीता के चतुर्थ अध्याय में भगवान् ने बताया है—

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।

हे अर्जुन! बहुत से ऐसे साधक हैं जो नियत आहार के द्वारा प्राण को प्राणों में हवन करते हैं। यदि आहार नियत वा शुद्ध हो जाये तो आपका प्राणायाम रूपी यज्ञ शुरु हो जायेगा। नियताहार का परिणाम क्या होगा? ''आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धि'' भगवान् वेदव्यास जी कहते हैं कि आहार की शुद्धि से सत्त्व (बुद्धि) की शुद्धि होती है, अन्तःकरण शुद्ध होता है, इसलिए प्राणोपासना की बड़ी महिमा है। प्राण की उपासना में आप अपने आहार पर विशेष ध्यान दें। आप क्या खाते हैं, ऐसी वस्तु तो नहीं खाते जो देर से हजम होती है, ऐसी वस्तु तो नहीं खाते हैं जो आपके जीवन में शक्ति क्षय करती है, आप पेट में ऐसी वस्तु तो नहीं डालते हैं जिससे आपकी प्राणशक्ति विकृत होती है? यदि ऐसा करते हैं तो आप प्राण की उपासना नहीं बल्कि उससे द्रोह करते हैं और जो प्राण से द्रोह करेगा वह आत्म हत्यारा कहलायेगा। जो अपनी आत्मा से द्वेष करने वाला है अर्थात् आत्म-द्वेषी है, ऐसे आत्म हत्यारे के लिए नरक में भी स्थान नहीं है दूसरे स्थान की तो बात दूर रही, ऐसा शास्त्रों का मत है।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि राधा और दुर्गा परमात्मा की प्राणमयी शक्ति और बोधमयी शक्ति है। दुर्गा बुद्धि स्वरूपा है और राधा प्राण स्वरूपा है और जो परमात्मा में है वही आप में है, यह बात याद रखें। दुनिया के सभी ग्रन्थों ने यह घोषणा की है। घोषणा तो वेद की है और वेद से ही अन्य ग्रन्थों ने लिया है। वेद की घोषणा क्या है—**सहस्रस्य प्रतिमा पूरूषः** यह मनुष्य परमात्मा की प्रतिमा है। प्रतिमा माने प्रतिमूर्ति है। प्रतिमूर्ति माने उसकी अनुकृति, छोटा Model जैसा कि Old testament में बताया गया है कि— Man

is the image of God, मनुष्य जो है परमात्मा का image हैं। यदि परमात्मा macrocosm है तो मनुष्य microcosm है। दोनों की quality एक है लेकिन मात्रा भेद हैं। परमात्मा परमात्मा हैं, जीवात्मा जीवात्मा हैं किन्तु तत्त्वत: दोनों में कोई भेद नहीं है। अपने संत संदेश में एक पद में मैंने संकेत किया है—

है तत्त्वत: कुछ भेद ना, विभु विभव भेद त्रिकाल है।
पर ब्रह्म है न बावरे, तू ब्रह्म ही का लाल है॥

एक शायर ने इसके विषय में कहा है—

आदिम को खुदा मत कहो, आदिम खुदा नहीं।
लेकिन खुदा के नूर से आदिम जुदा नहीं॥

किसी मनुष्य को परमात्मा मत कहो, मनुष्य परमात्मा तो नहीं है। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं जो परमात्मा से अलग हो, मनुष्य परमात्मा की प्रतिमूर्ति है इसलिए व्यासदेव ने घोषणा की—

न हिं मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित।

मनुष्य से श्रेष्ठ और कोई प्राणी नहीं है। मनुष्य परमात्मा की प्रतिमूर्ति है। परमात्मा की जैसे प्राणमयी शक्ति राधा है वैसे ही आपकी प्राणमयी शक्ति राधा है। परमात्मा की जैसे ज्ञानमयी शक्ति दुर्गा है ऐसे ही आपकी भी बोधमयी शक्ति दुर्गा हैं इसलिए दुर्गा और राधा आपके बहुत निकट हैं, जो आपके जीवन का आधार हैं, आपके विकास का सर्वस्व है, उनकी उपासना कीजिए। यही देवी भागवत आपको सिखा रहा है। उस बुद्धि की उपासना से ही दुनिया में आप ज्ञानी बन सकते हैं, भक्त बन सकते हैं और कर्मयोगी बन सकते हैं। दुनिया में आप जो कुछ भी बनना चाहें तभी बन सकते हैं जब आपकी बुद्धि शुद्ध होगी। पश्चिम में जितने बड़े-२ विद्वान् दार्शनिक हुए हैं वे सभी शुद्ध बुद्धि वाले थे। इंग्लैंड में एक फिलॉस्फर हुए हैं। महारानी विक्टोरिया के समय के थे, उनका नाम था वर्नार्डशा। वहाँ के माने हुए दार्शनिक थे। शुद्ध शाकाहारी जीवन यापन करते थे। उनसे किसी ने पूछा— Sir, आप माँस क्यों नहीं खाते? जानते हो उन्होंने क्या उत्तर दिया? उन्होंने कहा—हमारा पेट पेट है, यह कोई कब्रिस्तान नहीं है जहाँ मुर्दे दफनाए जायें। सड़ी हुई मांस चाहे वह पशु की हो, किसी की हो, है तो शरीर की ही माँस। सड़े हुए शरीर का स्थान मिट्टी में गाढ़ने के लिए है, पेट में रखने के लिए नहीं। जब बुद्धि ही काम न करे तो क्या कहा जाए? चाहे वह इमर्सन हो, चाहे वह थोरिया हो, चाहे वह शोपेनहार हो, चाहे वह वर्नार्डशा हो, पश्चिम में

जितने भी बड़े-२ दार्शनिक हुए हैं सभी विशुद्ध शाकाहारी और महान् तत्त्व चिन्तक थे। लेकिन आजकल माँस खाना, शराब पीना, धूम्रपान करना, फैशन होता जा रहा है। यह नहीं कि इसके बिना व्यक्ति रह नहीं सकता, कुछ लोग केवल सोसाईटी मेनटेनेन्स के लिए अर्थात् सामाजिक व्यवहार के लिए ऐसा करते हैं। वे सोचते हैं कि हम नहीं करेंगे तो हमारा समाज कैसे चलेगा? यह नहीं सोचते कि समाज के लिए हम अपने अमूल्य जीवन का पतन कर रहे हैं। क्या कहा जाए? इसमें गलती किसकी है? अपनी। तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में एक पद लिखा है, जिसके अन्त में लिखा—'**जानत हूँ नहिं जानयो**' हे प्रभो! इसमें आपका कोई दोष नहीं है, आपको दोषी ठहराना तो हमारी भूल है। आपने तो हमें बुद्धि दे दी थी और उस बुद्धि से आपने जना दिया था लेकिन हम ही मूर्ख निकले-जानते हुए भी नहीं जाना, देखते हुए भी नहीं देखा, समझते हुए भी नहीं समझा, सुनते हुए भी नहीं सुना। यह दोष किसका है? अपना। प्रभु ने वह ज्ञान सबको दे रखा है जिससे धर्म का रहस्य समझ में आ जाए। वेद व्यास जी से पूछा गया कि आपने जो चार वेद का विभाजन किया, वेदान्त दर्शन की रचना की, महाभारत लिखा जिसका एक अंश गीता है, १८ पुराणों की रचना की, सनत्सुजाति आदि अनेकों दर्शन सिद्धान्त के ग्रन्थ लिखे, यह सब करते हुए भी यदि इनका सार दो अक्षरों में बता सकें तो बहुत अच्छी बात होगी। वेद व्यास जी ने कहा कि मैं तो केवल दो अक्षरों में बता रहा हूँ। हमने जो समस्त ग्रन्थ लिखें हैं, इनका अभिप्राय बड़ा छोटा सा है। क्या? उन्होंने कहा—

श्रुयतां धर्मस्य सर्वस्वं श्रुत्वाचैवावधारयताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत॥

''समस्त धर्मों को सुनों, सुन करके उसे अपने हृदय में धारण कर लो, ''आत्मनः प्रतिकूलानि'' जो तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा, वह दूसरे के साथ मत करो। धर्म का कितना सरल उपदेश है। यह सनातन धर्म का मूल सिद्धान्त है—''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत'' जो तुम्हारी आत्मा के प्रतिकूल है, वह दूसरे के साथ मत करो। तुम्हारी कोई निन्दा करे, तुम्हें अच्छा लगता है? तुम्हारे विकास में कोई बाधा बने, तुम्हें अच्छा लगता है? तुम्हारे शरीर में कोई एक चुटकी चिमटे से माँस निकाल ले, तुम्हें अच्छा लगता है? नहीं। फिर बकरे क्यों खा जाते हो? उसका भी शरीर है। वे भी तो प्राणी हैं। वे भी तो जीव हैं। उन्हें दर्द नहीं होता?

हमने पुराण में एक कहानी पढ़ी थी। एक व्यक्ति भेड़ ले आया और

उसे मारने लगा तो दूसरे व्यक्ति ने कहा, इसको ऐसे न मारो। तो फिर कैसे मारा जाए? उसने कहा—पहले इसकी खाल को धीरे-२ नोच-२ कर तब इस की माँस को निकालो, हमारे मुसलमान भाई इसे हलाल कहते हैं। कुरान में हलाल खाओ के विषय में लिखा हुआ है। हलाल खाओ माने मेहनत करके खाओ। उन भले आदमियों ने सोचा कि बकरे को नोच-२ कर खाओ तो हलाल होता है। लेकिन उसमें लिखा था कि जब भेड़ को काटने के लिए इन्तज़ाम करने लगे तो उसमें एक आवाज़ आई, नहीं, मुझे ऐसे मत काटो क्योंकि पूर्व जन्म में मैंने तुम्हें ऐसे नहीं काटा था। यमुना जी में जब नहाने के लिए जाते हैं तो उसमें बड़े-२ कच्छप होते हैं, नहाना भी मुश्किल हो जाता है, लोग भय के कारण अन्दर नहीं जाते। एक महात्मा कहा करते थे कि जब यहाँ के पण्डे मरते हैं तो कच्छुए होते हैं और जब कच्छुए मरते हैं तो पण्डे बनते हैं। इन दोनों का यहाँ पर यही काम हैं।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि सृष्टि का चक्र तो ऐसे ही चलता है, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। तुम यह मत सोचो कि जैसा तुम करते हो बाद में कोई दूसरा भोगेगा। वह आएगा तुम्हारे सामने ही, किसी दूसरे के सामने नहीं आएगा। शास्त्र कहता है कि—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत॥

जो तुम्हारी आत्मा के प्रतिकूल है, उसे तुम दूसरे के साथ व्यवहार में मत लाओ। यदि लाओगे तो तुम अधर्म करोगे। तुम्हारे द्वारा यदि कोई पीड़ित हो रहा है तो वह अधर्म है क्योंकि उसके द्वारा तुम्हें भी पीड़ित होना पड़ेगा। देवीभागवत का यह श्लोक है—

अवश्यमेव भोगत्वयं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

मनुष्यो! तुम सावधान रहो, अपने किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों को तुम्हें ही भोगना होगा, किसी और को नहीं।

महर्षि वाल्मीकि की भी कथा इसमें है। वाल्मीकि डाकू का काम करते थे। आप लोगों ने शायद कभी उनकी कथा सुनी होगी। वह जाति से ब्राह्मण थे, उनके पिता के दस पुत्र थे और सबसे छोटे दसवें पुत्र वाल्मीकि थे। उस समय उनका नाम वाल्मीकि नहीं रत्नाकर था और वे उत्तम वंश में पैदा हुए थे, उनका वंश प्रचेता का वंश था। ब्राह्मण के बालक रत्नाकर का परिवार जंगल में रहता था, संयोगवश वह किरातों की संगति में पड़ गया। सारा दिन किरातों के बच्चों के साथ उठना-बैठना, खेलना चलता था। बाप की मृत्यु हो गई, भाई समझाते तो

सुनता नहीं था। भाइयों ने उसे सुधारने की बहुत कोशिश की, अन्त में उन्होंने भी ध्यान देना छोड़ दिया कि इसकी जैसी रुचि वैसा करे। अब वह किरातों के बच्चों के साथ घूमने लगा, उन्हीं से बाण चलाना सीख लिया, बाण से पक्षी मारने लगा। बड़ा होने पर किरात की लड़की के साथ शादी कर ली और बच्चे हो गये। खाने-पीने की व्यवस्था करने के लिए और कोई काम था नहीं। उसने केवल एक लुटेरे का काम अच्छा समझा और रास्ते में खड़े होकर लोगों को लूटने लगा। संयोगवश एक दिन सप्तऋषि उसी रास्ते से जा रहे थे, उनको देखा तो ठहरो-२ कह कर उनकी ओर दौड़ पड़ा। ऋषियों ने उसकी ओर देखा कि यह किरात वेश में है किन्तु किरात है नहीं। कौन है यह? देखते-२ वह सामने आ गया। जो कुछ है वह रख दो। ऋषियों ने हँसते हुए कहा कि हमारे पास तो कुछ नहीं है। तुम कौन हो? इससे तुम्हें क्या मतलब है कि हम कौन हैं? तुम्हारे पास जो कुछ हो रख दो। हमारे पास तो कुछ नहीं। फिर भी हम तुम्हें मारेंगे। क्यों मारोगे बात क्या है? इसलिए मारेंगे कि यदि हम तुम्हें नहीं मारते तो उधर से यदि कोई मेरा ग्राहक आता होगा तो तुम उसे मना कर दोगे कि वहाँ डाकू है, मत जाओ। तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है किन्तु आने वाले के पास तो कुछ होगा। ऋषियों ने कहा—इसे तो बहुत दूर की सूझती है। अरे, जो इतनी दूर से देख रहा है, वह इससे भी दूरी तक देख सकता है। ऋषियों ने कहा—तुम बहुत समझदार हो। कहने लगा—तुम मुझे बातों में नहीं बहका सकते। ऋषियों ने कहा—हम बहका नहीं रहे, तुमसे केवल एक बात पूछनी है। यह बताओ तुम इतना घोर पाप किसके लिए करते हो? कहता है—अपनी स्त्री के लिए, अपने बच्चों के लिए। अरे पगले! तू जिन बच्चों और स्त्री के लिए इतना घोर पाप करता है, क्या वे तुम्हारे पाप में भागीदार होंगे? क्यों नहीं होंगे? अगर होंगे तो तुम जाकर पूछ आओ। वह कहता है, बड़े गुरु हो, हम पूछने जाएँ और आप अपना रास्ता पकड़ लो, ऐसा नहीं हो सकता। ऋषियों ने कहा, यदि तुम्हें हम पर विश्वास नहीं है तो हम सभी को इस पेड़ के साथ बाँध दो, तुम अपने घर जाकर पूछ आओ। एक संत के साथ इतना वार्तालाप हो तो इतना महत्त्वपूर्ण होता है, वे तो सात ऋषि थे। सप्त ऋषियों की बात सुन कर उसके हृदय में यह बात बैठ गई। उसने सप्त ऋषियों को पेड़ के साथ बाँध दिया। उनको बाँध कर घर पहुँचा।

दूर से स्त्री ने देखा कि आज माल-टाल अच्छा मिल गया लगता है जो घर पर जल्दी आ रहे हैं। आते ही पूछा, आज इतनी जल्दी आ गये? उसने कहा—एक प्रश्न है। प्रश्न क्या है? उसने कहा—हम पाप करके कमा कर लाते

हैं तो उसमें तुम सभी खूब खाते-पीते हो तो हमारे इस पाप में भी तुम भागीदार बनोगे न? स्त्री ने कहा—तुम पागल हो, हमारे माँ-बाप ने हमारा हाथ तुम्हारे हाथ में दे दिया और तुम हमारे शरीर का उपयोग करके आनन्द लेते हो। हम तुम्हारे बच्चों की माँ भी हैं, तुम्हारे लिए इतना कष्ट तो मैं सहती हूँ, केवल इस बात के लिए कि मैं तुम्हारी पत्नी हूँ। तुम पति हो, पति माने जो पालन करे। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम मेरा पालन करो। वह पालन चाहे तुम पाप से करो वा पुण्य से करो, इससे मेरा कोई मतलब नहीं। उसकी आँखें खुल गई कि जब स्त्री कह रही है कि मैं तुम्हारे पाप में भागीदार नहीं तो बच्चे क्या पाप में भागीदार होंगे! उसे वहीं से धक्का लगा, वापिस लौट आया और रास्ते में सोचने लगा कि अब तक जितना पाप मैंने किया, स्त्री और बच्चों के लिए किया। आज सबने जवाब दे दिया, आखिर इन कर्मों का परिणाम तो उसे ही भोगना पड़ेगा। सप्त ऋषियों के चरणों में जाकर गिर गए, उन्होंने आशीर्वाद दिया। रत्नाकर पूछता है, भगवन्! हमारा उद्धार कैसे होगा? ऋषियों ने सोचा—इससे भगवान् का नाम तो लिया नहीं जायेगा। भगवान् का नाम लेना बड़ा कठिन है क्योंकि जो जन्म भर यही काम करता रहा, उससे मरते समय राम निकलेगा? ऋषियों को एक उपाय सूझा, उन्होंने कहा—यह हमेशा मरो, मारो ऐसा करता रहा। इसको राम नाम का उल्टा मन्त्र दे दो, तीन बार जब मरा-२ कहेगा तो दो बार राम-राम अपने आप हो जाएगा। ऋषियों ने उसे मरा-२ कहने का आदेश दिया, मरा-२ कहते-२ राम-राम हो गया। तुलसीदास जी ने लिखा है—

उलटा नामु जपत जगु जाना।
बालमीकि भय ब्रह्म समाना॥

(रा० २/१९४-८)

महिमा उलटे नाम कि मुनि किये किरातो।

किरात जीवन को प्राप्त हुए व्यक्ति को भगवन्नाम ने मुनि बना दिया।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि जो व्यक्ति यथार्थ को नहीं समझता और व्यर्थ के व्यामोह में पड़ करके अपने जीवन को बरबाद करता है; यदि वह एक बार भी संभल जाए—

बीति ताहिं बिसार दे आगे की सुधि ले।
जो बनियावे सहज में ताहिं सो चित्त दे॥

फिर उसके जीवन का अपने आप उत्थान हो जाता है। एक बात याद रखो अभी तक मुझे अपने इतिहास में कोई ऐसा महात्मा नहीं मिला, जिसका जीवन आदि

से परम पवित्र रहा हो। अतीत सबका दूषित था, अतीत माने बीता हुआ समय, और वह सभी का दोषमय था और वर्तमान सबका शुद्ध है। आपका भविष्य आपकी मुट्ठी में है। यदि अतीत परम पवित्र रहा होता तो गीता कहती है कि फिर मर्त्यलोक में मनुष्य बनते ही नहीं। फिर क्या बनते?

ऊर्ध्वं गच्छति सत्त्वस्था।

परम पवित्र होते तो परम लोक में पहुँचे होते। हाँ, थोड़ा दूषण और अधिक गुण हुआ तो इस जीवन में आकर के तुम महात्मा बन गये। दूषण था थोड़ा जो साधन करने से दूर हो गया तो महात्मा बन गये। दूषण और गुण, दोनों का बराबर रहा तो सामान्य अवस्था में आ गये। दोष ज्यादा और गुण कम रहा तो तुम दरिद्री या पतित अवस्था में आ गये। तो तत्त्वत: दोष तो सबके साथ लगा हुआ था इसलिए उससे घबराना नहीं चाहिए, ये नहीं सोचना चाहिए कि अब तक तो मेरी ज़िन्दगी बेकार ही रही, अब आगे क्या होगा? न, घबराने वाली बात नहीं है। सनातन धर्म में निराशा के लिए, घबराहट के लिए कोई स्थान नहीं हैं। वह तो बताता है—

बिगड़ी जनम अनेक की अबहिं सुधरे आज।

अनेकों जन्मों की जो तुम्हारी बिगड़ी है, वह अभी आज सुधर जायेगी। केवल शर्त दो हैं—

होउ राम कर नाम जप तुलसी तज कुसमाज॥

आज से निश्चय कर लो कि मैंने कुसंगति का त्याग कर दिया और आज से मैं प्रभु का हो गया। यह निर्णय करना है और इस निर्णय के साथ प्रभु नाम का सुमिरन और पवित्र जीवन जीने की आस्था हो, फिर अनेकों जन्मों के जो पाप हैं, वो सब नष्ट हो जाते हैं, भस्म हो जाते हैं। गीता में भगवान् कहते हैं—

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।

(गीता ४/१९)

जैसे समिद्ध इंधन को एक छोटी सी अग्नि की चिंगारी भस्म कर देती है, इसी प्रकार से 'ज्ञानाग्नि दग्धकर्माणं' ज्ञान की अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर देती है। यह मत सोचो कि तुम्हारे पाप और तुम्हारे पुण्य जमा हुए हैं। कुछ नहीं जमा है, यदि आज से तुम अपना जीवन बदल दो तो अतीत की जो बातें हैं, सब भस्म हो जायेंगी। प्रारब्ध तो शरीर के साथ बना है। प्रारब्ध जो शरीर के साथ बना है, वह शरीर के साथ चला जायेगा, समाप्त हो जायेगा। हमारे यहाँ शास्त्रों में बताया गया कि कर्म के तीन भेद हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। प्रारब्ध उसे कहते

हैं जिससे तुम्हें शरीर मिला। प्रारब्ध तो तुम्हें भोगने के लिए मिल गया, यह कर्म विपाक है। जो कर्म पक गया था, उस का फल तुम्हें मिल गया, यह फल है शरीर। शरीर के साथ तीन चीज़ें लगी हैं-जाति, आयु और भोग। पतंजलि कहते हैं—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।

(यो०सू० २/१३)

प्रारब्धानुसार तुम्हें तीन चीज़ें मिली हैं—जाति अर्थात् मनुष्य जाति में तुम पैदा हुए, आयु अर्थात् श्वास गिना हुआ होता है, वो आयु की सीमा है और भोग-सुख और दुःख की स्थितियाँ हैं। ये तुम्हारे प्रारब्ध पर निर्भर हैं। अब बाकी रहा तुम्हारा विकास, यह तुम्हारे पुरुषार्थ पर निर्भर है, प्रारब्ध पर नहीं है। प्रारब्ध ने तुम्हें आयु दे दी लेकिन आयु का प्रयोग करना, दुष्प्रयोग करना, यह प्रारब्ध नहीं पुरुषार्थ के अधीन है। मनुष्य शरीर मिल गया। इस मनुष्य शरीर से तुम लोगों का उपकार करोगे या अपकार करोगे, यह तुम्हारे वर्तमान के ऊपर, तुम्हारे पुरुषार्थ के ऊपर निर्भर है। इसी रूप से भोगमय सामग्री तुम्हें मिल गई, अब भोग का तुम दुरुपयोग करोगे या सदुपयोग करोगे, यह तुम्हारे वर्तमान पर निर्भर है, तुम्हारे पुरुषार्थ पर निर्भर है। यह बात याद रखो, पुरुषार्थ जो है वह तुम्हारे जीवन को आगे बढ़ाने का साधन है। उसका प्रयोग करोगे तो तुम अपनी आयु, भोग और योनि (जाति), इन तीनों का सदुपयोग कर लोगे और यदि इनका दुरुपयोग किया तो तुम जहाँ गिरे हो उससे और नीचे गिरोगे; इसलिए शास्त्रकारों ने समझाया है कि तुम्हारा प्रारब्ध तुम्हारे इन तीन स्तरों पर है और इससे आगे नहीं है। जाति, आयु और भोग के सिवा प्रारब्ध और कुछ नहीं देता तुम्हें।

अब रही बात प्रारब्ध के पश्चात् संचित की। वो कर्म जो अभी भोगने के लिए संचित पड़े हुए हैं, उससे आगे अनेकों जन्म होंगे। यदि तुम्हें ज्ञान हो जाये, तुम परमात्मा की तरफ चल पड़ो, भगवान् की आराधना करो, बुद्धि का विकास करो तो वो संचित कर्म सब भस्म हो जायेंगे। वो राख के ढेर बन जायेंगे। उनका कोई प्रयोजन नहीं होगा तुम्हारे जीवन में। जो तुम अभी कर रहे हो वो तो सुधर जायेंगे क्योंकि क्रियमाण वर्तमान से सम्बन्धित है, संचित भविष्य से सम्बन्धित है और प्रारब्ध अतीत से सम्बन्धित है। इसके लिए शास्त्रों में एक प्रमाण दिया गया है कि एक व्यक्ति शिकार खेलने गया। उसके तरकश में बाण हैं और उसने एक बाण निकाला, धनुष पर चढ़ाया और चढ़ाकर खींच कर मार दिया। इतने में दूसरा बाण निकाला और उसे धनुष पर रख लिया। एक बाण तो

छूट चुका जो मार दिया उसने, दूसरा बाण धनुष के ऊपर है जो उसने हाथ में ले रखा है और बाकी बाण उसके तरकश में हैं। जो बाण छूट गया हैं उसको कहते हैं प्रारब्ध। जो बाण अभी धनुष पर रखा हुआ है उसको कहते हैं क्रियमाण और जो तरकश में रखे हैं उसको कहते हैं संचित। बाण छूटने के बाद उसको पता चला कि जिसको बाण मारा है वो हिरण नहीं, शेर नहीं, वह गऊ है। क्या करेगा वो? अब तो बाण चला गया। बाण छूट गया तो पता चला कि वो गऊ है जिसे मारा। अब वो प्रभु से प्रार्थना करता है कि प्रभु वो तो अब आपके हाथ में है, अब मैं कुछ नहीं कर सकता क्योंकि वह तो छूट गया। लेकिन जो धनुष के ऊपर है, जिसको दुबारा मारने जा रहा था, जिस समय उसे पता चला कि वो गऊ है तो तुरन्त वो बाण वहीं रख दिया और तरकश के बाण हैं ही पास में। इसी प्रकार से जो कर्म छूट गया है, जिसका प्रारब्ध बन गया है, जो मिल चुका है, इसे प्रारब्ध कहते हैं, यह तो छूटा हुआ बाण है, इसलिए जिस जाति में, जिस भोग को प्राप्त करने के लिए तुम शरीर पाये हो, यह शरीर उसी अनुसार चलेगा, उसको तुम बदल नहीं सकते।

आप ज़रा देखो, आपके बाप-दादे ड़ेढ़-सौ, सवा-सौ वर्ष पहले भारत से आये। सूरीनाम चले गये, वहाँ से यहाँ आ गये। कितने बच्चे हैं जो यहीं पैदा हुए हैं, उनके बाप भी यहीं पैदा हुए होंगे लेकिन हर एक देखने वाला व्यक्ति कह सकता है कि यह इंडियन है। तुमने अपनी भाषा छोड़ दो, हिन्दी नहीं बोलते हो, धर्म भी छोड़ दिया, हिन्दू नहीं रहे, क्रिश्चियन बन गये। गीता, रामायण, भागवत् सब छूट गया, बाईबिल पढ़ने लगे। अपनी संस्कृति, सभ्यता सब छूट गई; यहाँ का सारा कुछ अपना लिया लेकिन प्लास्टिक सर्जरी तो नहीं करवा सकते हैं? शक्ल तो बतायेगी न कि तुम कौन हो, कहाँ के हो? क्या राय है आप लोगों की। इसको क्या कहते हैं? यह है जाति। इसका नाम जाति है और इसी रूप से आयु। आयु भी जानते हो आयु की सीमा है। इसी रूप से भोग हैं। प्रारब्ध के आधीन जाति, आयु और भोग-ये तीन चीज़ें हैं, बाकी तुम्हारे ऊपर निर्भर करता है। योग वशिष्ठ में भगवान् वशिष्ठ समझाते हैं कि राम! जीवन के दो आधार हैं। जैसे तुम्हारे चलने के दो पाँव हैं ऐसे ही जीवन के दो आधार हैं-प्रारब्ध और पुरुषार्थ। प्रारब्ध सामग्री है और पुरुषार्थ उसके उपयोग की कला है। यदि सामग्री का सही उपयोग हुआ तो उससे लाभ होगा और यदि गलत उपयोग हुआ तो हानि होगी। जैसे मैंने अभी आप लोगों को समझाया कि आपको प्राण शक्ति मिली है, इस प्राण का सही उपयोग किए तो आप उन्नति के शिखर पर चलेंगे, गलत उपयोग

किया तो आपका पतन हो जायेगा। ये श्वास आपको प्रारब्ध से मिले हैं। तो प्रारब्ध ही जीवन नहीं है, प्रारब्ध ही जीवन के विकास का हेतु नहीं है। प्रारब्ध जीवन के विकास में माध्यम है, सामग्री है, इसको समझो। प्रारब्ध और पुरुषार्थ, इन दोनों के रहस्य को समझ करके अपने ज्ञान के द्वारा, भक्ति के द्वारा, भगवद् आराधना के द्वारा जितने संचित और क्रियमाण कर्म हैं, उनको आप भस्म कर सकते हैं। इसलिए घबराने वाली बात नहीं है, बात केवल समझने की है और जब समझ आ जाये तभी से बात बन जाती है। जो दिन बीत गये वो तो बीत गये। शास्त्रों में बताया गया है कि जो लोग बुराई करते हैं वो तो अज्ञानी हैं हीं लेकिन जो बुरा किए हुए को अपने दिमाग में रख कर हमेशा उसी को याद करते हैं, मेरे से बुरा हो गया, मेरे से बुरा हो गया, उससे भी बड़े अज्ञानी हैं वो। क्योंकि जितना समय बुराई करने में खराब हुआ था उससे अधिक समय बुराई के चिन्तन में खराब हो रहा है। इसलिए जो हो गया उसको छोड़ो, 'बीति ताहिं बिसार दे', जो हो गया उसको भूल जाओ, छोड़ दो। भूलना है मुश्किल,जैसे सपना देखा हो, वही नहीं भूलता तो किए हुए कर्म कहाँ से भूलेंगे? जैसे सपने का प्रभाव थोड़े काल तक रहता है—

दोष दुख सपने के जागे ही जायें।

सपने का दोष-दुख जागने पर चला जाता है, इसी रूप से जबसे आपकी आत्मा जागृत हो जाये तभी समझ लो कि जो कुछ हुआ प्रभु अन्जान में हुआ, हम क्या करें। अब आगे से ऐसा नहीं होगा। वहीं से आप अपने को संभालिए, जीवन विकास की दिशा में आगे बढ़िए। इसलिए भगवान् वेदव्यास ने बताया कि समस्त धर्मों को सुनो, धर्मों के सार को सुनो और सुन करके उन्हें हृदय में धारण करो। जो आपकी आत्मा के प्रतिकूल है, उसे दूसरे के साथ मत बर्तो। शास्त्र की यदि एक बात आप अपने ध्यान में रख लें तो आप कभी पतन के रास्ते पर नहीं जायेंगे। जिन कामों से आप दूसरे को बुरा मानते हैं, समझते हैं, जिन कार्यों के नाते आप दूसरों की निन्दा करते हैं, क्या उन कार्यों को आप स्वयं करने के लिए तैयार होंगे? यदि आपकी समझ में आ जाये कि ये बुरे काम हैं, कभी नहीं होंगे। इसलिए—'आत्मनः प्रतिकूलानि', अपनी आत्मा के जो प्रतिकूल हैं, हो सकता है वो इन्द्रियाँ के अनुकूल हो। एक बात और यहाँ ध्यान देने की है। जो शरीर, इन्द्रियों, मन और अहं के अनुकूल है, वही आत्मा के भी अनुकूल होगा, ऐसा नहीं होता। कभी भ्रान्ति में आप मन की बात को आत्मा न समझ लें। कभी इन्द्रियों की माँग को आप आत्मा की माँग न समझ लें। कभी शरीर की माँग को

आप अपनी आत्मा की माँग न समझ लें, नहीं तो पतन हो जायेगा। फिर तो आप कहेंगे कि हमारी आत्मा तो यही चाहती थी, यही मैं कर रहा हूँ, ऐसा नहीं। जो आत्मा के प्रतिकूल है, अन्तर्तम के जो प्रतिकूल है, वहाँ बुद्धि का प्रयोग कीजिए कि क्या आत्मा के अनुकूल है और क्या आत्मा के प्रतिकूल है। बिना बुद्धि के बात समझ में आती नहीं, यह बात याद रखना। इसलिए हमारे यहाँ सदैव बुद्धि की महत्ता का गान किया जाता है। गीता में भगवान् ने कहा है—हे अर्जुन! जिसके ऊपर मैं प्रसन्न होता हूँ—

ददामि बुद्धियोगं तम्।

''उसको मैं बुद्धियोग प्रदान करता हूँ।'' भगवान् जिस पर खुश होते हैं, प्रसन्न होते हैं, उसको बुद्धि देते हैं, यह बात याद रखो। कुछ लोग कहते हैं, उसके पास बड़ा पैसा हो गया, भगवान् की बड़ी कृपा है। उसका बड़ा परिवार है, भगवान् की बड़ी कृपा है। मैं कहता हूँ कि नहीं, यह भगवान् की कृपा का परिणाम नहीं है। भगवान् ने स्वयं कहा है कि जिसके ऊपर मैं कृपा करता हूँ उसको मैं बुद्धि देता हूँ। उसके पास सद्‌बुद्धि है कि नहीं है, धन तो आ गया लेकिन उस धन का सदुपयोग करने की बुद्धि भगवान् ने दी है कि नहीं दी है। नहीं तो—

धन से धर्म, धन ही से अधर्म अकर्म कर्म करे।

सूरसागर में सूरदास जी लिखते हैं कि मनुष्य धन से धर्म भी कर सकता है अधर्म भी कर सकता है। कर्म भी कर सकता है, अकर्म भी कर सकता है; दोनों धन के द्वारा हो सकता है। धन आपको स्वर्ग में पहुँचा सकता है और वही धन आपको कुम्भीपाक नरक में भी धकेल सकता है। इसलिए धन आ गया तो यह कोई महिमा वाली बात नहीं रही लेकिन धन के साथ बुद्धि आई कि नहीं। हमारे यहाँ शास्त्रों में एक बात समझाई गई है-संपत्ति के दो अधिष्ठात्री देवता हैं—एक लक्ष्मी और दूसरी कमला। कमला और लक्ष्मी ये दोनों पर्यायवाची हैं। कमला को श्री कहते हैं। वेद में एक मन्त्र है—

श्रीश्च लक्ष्मीश्च पत्नौ।

परमात्मा की दो शक्तियाँ हैं—श्री और लक्ष्मी। लक्ष्मी का वाहन उल्लू है। हमारे यहाँ जितने देवता हैं, सबका वाहन है कि नहीं? दुर्गा का वाहन शेर, भगवान् विष्णु का वाहन गरुड़, भगवान् शंकर का वाहन वृषभ, सरस्वती का वाहन हंस, इसी रूप से लक्ष्मी का वाहन उल्लू है और श्री का वाहन कमल है। लक्ष्मी उलूकवाहिनी है, श्री कमलजा है, कमल पर विराजित होती है। अब यह देखना है कि जो संपत्ति आई है वो श्री की दी हुई है या लक्ष्मी की दी हुई है। यानी उसे

प्राप्त करके मनुष्य उल्लू बन रहा है या कमल बन रहा है। कमल जानते हो पानी में रहते हुए भी उससे अलग रहता है। सूरज के प्रकाश में ही विकसित होता है, अंधेरी रात आते ही वो बंद हो जाता है। ये तो कमल के गुण हैं और उल्लू दिन में तो बिल्कुल अंधा रहता है, जैसे-२ अंधेरा आता है, वैसे-२ उसकी आँख चमकने लगती है। जो अंधकार में देखे, दिन में अंधा रहे, जो ज्ञान में अंधा हो जाये यानी ज्ञान की तरफ, प्रकाश की तरफ जिसकी दृष्टि न जाये, उसमें उसकी आँखें बंद हो जायें और जहाँ पाप है, वहाँ उसकी आँखें चमकने लग जायें, उसके पास जो लक्ष्मी है, वो उलूकवाहिनी लक्ष्मी है। उस लक्ष्मी ने उसे उल्लू बना रखा है, उसके ऊपर सवारी है। वो लक्ष्मी का वाहन उलूक बना हुआ है, कमल नहीं है और जिसके ऊपर श्री की कृपा है, भगवती की कृपा है, वो दुनिया की सम्पत्ति रहते हुए भी कमल के समान उससे अलग रहता है। सम्पत्ति प्रभु की दी हुई है।

सम्पति सब रघुपति कर आहिं।

जो कुछ दिया हुआ है भगवान् का दिया हुआ है। जो यह समझता है कि यह भगवान् की देन है तो उस देन का कभी दुरुपयोग नहीं करेगा और जो समझता है कि मैंने अपनी मेहनत से कमाई है फिर वो तो अहंकार में ही वहाँ मरता रहेगा। जिसके पास बिना मेहनत किए मुफ्त में आ जाये वो सोचता है कि यह तो हमने अपने ट्रिक से कमाया। वो ट्रिक वाला उलूकवाहिनी का ही शिकार होता है, वो कभी कमलवत नहीं हो सकता। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि मिला हुआ जो है, उसके ऊपर विचार कीजिए, प्राप्त शक्ति का सदुपयोग कीजिए और परमात्मा की ये दो शक्तियाँ जो हैं इनकी उपासना कीजिए—प्राण और बुद्धि जिसको राधा और दुर्गा कहा गया है। बुद्धि दुर्गा है और प्राण राधा है, यही देवीभागवत का कथन है। मानव मात्र के लिए इन दोनों प्रकार की शक्तियों की उपासना का विधान बताया गया है और दोनों की प्राप्ति, दोनों की उपासना एक-दूसरे से सम्बन्धित है। जैसा कि मैंने अभी बताया कि आप सद्बुद्धि से काम लेंगे तो प्राण आपका सुरक्षित रहेगा। आप सवेरे उठिए, स्नान कीजिए, थोड़ा सा व्यायाम कीजिए। बैठकर के प्राणायाम कीजिए। प्राणायाम से बुद्धि भी शुद्ध होती है, प्राण की भी रक्षा होती है। इसी रूप से जाप जो है यह बुद्धि भी शुद्ध रखता है और प्राण भी सुरक्षित रखता है। इसी रूप से आसन जो हैं वो बुद्धि भी शुद्ध रखते हैं और प्राण को भी सुरक्षित रखता है। जितनी साधन की क्रियाएँ हैं, परमात्मा की उपासना की जितनी विधियाँ हैं, योग की जितनी क्रियाएँ हैं, ये

आपके प्राण और बुद्धि, दोनों की रक्षा करती हैं, दोनों को ही विकसित करती हैं। इसलिए हमारे यहाँ जितने शास्त्र हैं, उन शास्त्रों का आधार बताया गया है योग। गीता, उपनिषद्, भागवत्, पुराण कहीं भी देखिए, सर्वत्र योग की महिमा है और उस योग के द्वारा ही दो प्रकार की देवियों अर्थात् राधा और दुर्गा की आराधना का विधान है-इन दोनों की आराधना में शास्त्र बताता है कि केवल एक ही साधन है और वह है योग। योग में भक्ति योग की महिमा है। भगवान् ने भक्तियोग की महिमा गीता में भी गाई है और उसी प्रकार के योग की महिमा इस देवी भागवत में भी गाई गई है। इसके विषय में आप लोगों को कल बतायेंगे। आज समय पूरा हो गया।

हरि ॐ तत्सत्।

८

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् का मंगलमय विधान आप सभी के लिए सदैव कल्याणप्रद हो, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना! आज मेरे इस ज्ञानयज्ञ का आठवां दिन है। जगत् की आद्याशक्ति, आदिकारणभूता, पराभूताशक्ति परमेश्वरी के स्वरूप और उसकी महिमा से सम्बन्धित बहुत सी बातें इन दिनों सुनी। शाश्वत सनातन धर्म के मूल सिद्धान्तों को आप लोगों ने सुना, मुझे विश्वास है, इससे आप लोग स्वयं को हिन्दू और सनातन धर्मानुयाई होने में गौरव अनुभव करेंगे। जिन शास्त्रों का विवेचन मैं यहाँ कर रहा हूँ, उनके आप जन्मजात अधिकारी हैं। जिन ऋषियों की संतान मैं हूँ, उन्हीं की संतान आप भी हैं, इसमें संदेह नहीं। यदि अपने मूल से बहुत काल तक बहुत दूर रहने के नाते आप अपने अतीत की उपलब्धियों का, अपने पूर्वजों की अनुभूतियों का महत्त्व भूल गये हों, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है लेकिन भूले हुए को स्मरण करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

भगवान् के सदैव साथ रहने वाला अर्जुन भी अपने आप को, अपने कर्त्तव्य को, अपने संस्कारों को, अपने धर्म को भूल गया था और वह प्रभु से प्रार्थना किया, हे प्रभो! आप मुझे अपने धर्म को स्मरण कराइये, समझाईये। गीता सुनने के पश्चात् उसने एक बात भगवान् से कही—"नष्टो मोहा:", हे प्रभो!

मेरा मोह नष्ट हो गया ''स्मृतिर्लब्धा'' मुझे स्मृति आ गई, जो मैं भूला था, अब मुझे पुनः स्मरण हो गया इसलिए—''करिष्ये वचनं तव'', अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। इसका अभिप्राय यह है कि यदि सदैव साथ रहने वाला अर्जुन भूल सकता है तो जो बहुत वर्षों से अपने समाज, देश, संस्कार और वातावरण से बहुत दूर चला गया हो यदि वह अपने यथार्थ के विषय में भूल जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। भूलना आश्चर्य नहीं आश्चर्य है उसको पुनः याद न करना। मननशील होने के नाते ही हम मनुष्य कहे जाते हैं। मनुष्य का लक्षण क्या है? यह नहीं कि उसके दो हाथ, दो पाँव, दो आँखें होने पर ही वह मनुष्य है, ऐसा नहीं। वैदिक शास्त्र में मनुष्य का लक्षण बताया जाता है— ''मननात् मनुष्यः'' जो मननशील, चिन्तनशील और विचारशील है, वह मनुष्य है। मनुष्य होने के नाते हम मननशील हैं। मनुष्य का यह स्वभाव है अथवा उसका सहज धर्म है कि जो विस्मृत हो गया है पुनः वह स्मरण में आ जाये वा उसके स्मरण के लिए प्रयत्न करें। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आप लोगों में चाह है, जिज्ञासा है और इसी को देखकर मैं चार वर्षों से निरन्तर आप लोगों को समय देता हूँ, नहीं तो मेरे जैसे व्यक्ति को बहुत कम समय मिलता है। मैं भारतवासियों को भी बहुत अल्प समय दे पाता हूँ। 12 मास में मुश्किल से दो-चार मास दे पाता हूँ। मुझे विश्वास है कि आप लोग जो कुछ यहाँ सुनते हैं, उसे ग्रहण करेंगे और आपको उसमें विकास की भूमिका वा विकास का बीज मिलेगा। आप लोग इतने दिनों से भगवती के दिव्य चरित्र को सुन रहे हैं, समझ रहे हैं, मनन कर रहे हैं।

जैसा कि कल आप लोगों को दो बातें बताई गई थीं—परमात्मा की द्विविध शक्तियाँ-प्राण और बुद्धि हैं। प्राणमयी शक्ति को राधा और बुद्धिमयी शक्ति को दुर्गा कहते हैं, यह देवी भागवत का कथन है। मनुष्य यदि स्वयं में पूर्ण होना चाहता है, सफल जीवन जीना चाहता है तो उसे इन दोनों की उपासना करनी होगी। प्राणायाम के द्वारा, शुद्ध आहार के द्वारा, सदाचार के द्वारा प्राणमयी शक्ति की उपासना होती है। स्वाध्याय, सत्संग और साधना के द्वारा दुर्गा (बुद्धि) की उपासना होती है। गीता एक बहुत सुन्दर संदेश देती है। अर्जुन अपने को प्रभु के चरणों में समर्पित करता है—

शिष्येस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।

(गीता २/७)

हे प्रभो! मैं आपका शिष्य हूँ, आप मुझे उपदेश दीजिए, मैं आप की शरण में हूँ।

भगवान् उसे समझाते हैं कि मेरी शरण में नहीं ''बुद्धौ शरणमन्विच्छ'' तुम बुद्धि के शरण में जाओ। बुद्धि की शरण में जाने से क्या मिलेगा? भगवान् ने कहा— बुद्धि की शरण में जाने से मैं मिल जाऊँगा क्योंकि बुद्धि की शरण में जाने वाला व्यक्ति—

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

(गीता २/५०)

बुद्धि की शरण में जाने वाला व्यक्ति सुकृत और दुष्कृत, दोनों को इसी संसार में त्याग जाता है, फिर वह ''योग युक्तौ'' योग में स्थित हो जाता है। ''योग में स्थिति'' माने परमात्मा के साथ एक हो जाता है इसलिए—

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।

(गीता २/५३)

''समाधि के द्वारा जब तुम्हें अचल बुद्धि मिलेगी, तब तुम योगी बन जाओगे यानी मेरे से एक हो जाओगे।'' भगवत् प्राप्ति के लिए योग परम साधन है और उस योग की सिद्धि बिना बुद्धि के हो नहीं सकती इसलिए भगवान् ने बताया कि मेरी प्राप्ति का एक ही रास्ता है, बुद्धि की शरण लेना। यही बात दसवें अध्याय में भी भगवान् ने बताई—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०/१०)

भगवान् कहते हैं कि जो सतत युक्त होकर के अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हैं, मेरा भजन, मेरी उपासना करते हैं, उन पर कृपा करके मैं बुद्धियोग प्रदान करता हूँ। फिर क्या होता है? बुद्धियोग के द्वारा वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं; इसलिए भगवान् ने बुद्धि की शरण में जाने के लिए कहा। जिस प्रकार भगवान् ने गीता में बुद्धि की शरण बताई है, उसी को देवी भागवत में दुर्गा की शरण कहा है। बुद्धि माने दुर्गा और दुर्गा माने बुद्धि। बुद्धि की महिमा है जो दुर्गम घाटियों से व्यक्ति पार हो जाता है। वह भगवती चिदांश में आपके जीवन में बुद्धि रूप से प्रतिष्ठित है। उसका बुद्धि स्वरूप ही आपके जीवन के विकास का, उन्नति का, महत्ता का आधार है। मनुष्य का पतन किसमें है? जब उसकी बुद्धि का पतन हो जाये। मनुष्य का उत्थान किसमें है? जब उसकी बुद्धि का विकास हो जाये। जो देश, समाज, जाति और व्यक्ति जितनी महान् बुद्धि रखता है, वह उतना महान् हो

जाता है। गीता के १७वें अध्याय में भगवान् ने बताया है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एवं सः॥

(गीता १७/३)

बुद्धि के अनुसार ही मनुष्य की श्रद्धा होती है और जैसी मनुष्य की श्रद्धा है वह वही है। बुद्धि ही आपके जीवन के उत्थान और बुद्धि ही आपके जीवन में पतन का कारण है। भगवान् ने गीता के दूसरे अध्याय में बताया है "बुद्धिनाशात्प्रणश्यति" जिस समय मनुष्य की बुद्धि का नाश होता है उस समय उसका सर्वनाश हो जाता है, जिस समय उसकी बुद्धि का विकास होता है, उस समय वह दुनिया में महान् हो जाता है, इसलिए बुद्धि की बड़ी महिमा है।

इस युग में जो धर्म विश्वास पर प्रतिष्ठित थे, जिनमें अक्ल की दखल नहीं थी, आज उनकी नींव हिल गई है क्योंकि उनके पास कोई आधार नहीं है, उनके पाँव नहीं, उनकी नींव नहीं। जैसे बालु की नींव अधिक दिन तक नहीं टिक सकती उसी प्रकार अन्धविश्वास पर टिका हुआ धर्म अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकता। एक बार मैं अमेरिका में था, अमेरिकन के साथ विचार कर रहा था। वहाँ यह प्रश्न आया कि हिन्दू धर्म और क्रिश्चैनटी में अन्तर क्या है? मैंने उनको बताया कि दुनिया में मूल धर्म दो हैं—एक वैदिक और दूसरा अवैदिक अर्थात् एक दैवी और दूसरा आसुरी। जब से मानवीय इतिहास मिलता है तभी से इन दोनों धर्मों का अस्तित्त्व इस दुनिया में दिखाई देता है। वे दो धर्म कौन हैं? एक वैदिक धर्म है जिसका मूल आधार वेद है, जो हिमालय के शिखर से प्रकट हुआ है और दूसरा अवैदिक अर्थात् असुर धर्म है जिसका मूल आधार हिमालय नहीं, वेद अर्थात् ज्ञान नहीं अपितु विश्वास से हुआ है। आजकल के ऐतिहासिक बताते हैं कि उस धर्म का आविर्भाव सुमेरिया में हुआ था। आप लोग शायद इतिहास में पढ़े होंगे वा कभी नक्शे में सुमेरिया देखा होगा। हिमालय के उत्तर पश्चिम के कोने में, काबुल के बगल में उनका कुछ भाग परशिया में है जिसे ईरान कहते हैं और कुछ भाग रशिया में है। सुमेरियन संस्कृति और धर्म सीरियन संस्कृति की माँ हैं। सीरियन संस्कृति बेबिलोनियन संस्कृति की माँ है। आजकल के अनुसंधानकर्त्ता इस क्रम को समझ रहे हैं, वही धर्म बेबिलोनियाँ में आकर के यहूदी धर्म नाम से प्रचलित हुआ। यहूदी धर्म मूल है, उसकी पहली संतान इसाई धर्म है और दूसरी सन्तान इस्लाम है। इस्माईल और इब्राहिम, ये दोनों एक ही वंश के हैं और इन दोनों का मूल आधार वा सिद्धान्त एक है। आप

लोग यदि कुर्आन पढ़ें तो आपको मालूम होगा कि उनके पूर्वज वही एडम और ईव हैं। वही कहानी, वही इतिहास तथा वही ज्ञान वृक्ष की कथा वहाँ भी मिलेगी। कुर्आन में भी यही बताया गया है कि पहले मौसेस फिर जैसस और इन सबके बाद मैं मुहम्मद हुआ हूँ। मेरे पश्चात् कोई आने वाला नहीं है। मैं अन्तिम मसीहा हूँ। यह बात मुहम्मद साहब ने कुरान में कही और उनमें वही सीख और सन्देश मिलेंगे लेकिन अन्त में यही कहा गया कि ये सारी बातें अब पुरानी हो गई हैं, खुदा का नया सन्देश मैं ले आया हूँ और तुम लोगों के लिए यही उपयोगी है। यही बात मुहम्मद से पूर्व क्राइस्ट ने कही है। उसने कहा, तुम्हें यह पहले समझाया गया है लेकिन अब मैं तुम्हें नया सन्देश दे रहा हूँ। तो ईसा से पहले मोसेस था। मोसेस और जेसस के बाद मुहम्मद साहब ने कहा कि मैं जो संदेश दे रहा हूँ, यह अन्तिम है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि जो बातें मुहम्मद साहब ने कही हैं, वही बातें आपको उन लोगों से भी सुनने को मिलेंगी। जैसे ये तीनों धर्म मध्य काल में एक मूल से चले हैं वैसे ही वैदिक धर्म से भी कई धर्म निकले हैं। वैदिक धर्म की एक शाखा से बुद्ध निकला, इसी रूप से जैन धर्म आया। वह भी वैदिक धर्म की एक शाखा है। उसी रूप से सिक्ख धर्म भी वैदिक धर्म की एक शाखा है। आर्य समाज भी उसी धर्म की शाखा है। वह शाश्वत सनातन धर्म जिसे वैदिक सनातन धर्म कहते थे, वह भी मूल में अनादि काल से चला आ रहा है, उनमें तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। जैसे ईसाई, इस्लाम, यहूदी में तत्त्वतः सैद्धान्तिक अथवा अन्य कोई भेद नहीं है, ये तीनों धर्म शरीर, मन और आत्मा को एक मानते हैं। वे कहते हैं कि जब शरीर मरता है तो उसी के साथ मन और आत्मा मर जाती है, इसलिए वे जाकर दफनाते हैं। कहा कि आखिरी दिन जब खुदा की आवाज़ आयेगी तो इसमे से शरीर, मन और आत्मा तीनों उठ जायेंगे, ये तीनों साथ-२ मरते हैं और साथ-२ जन्मते हैं। तीनों का यह सिद्धान्त है कि यही मनुष्य का पहला जन्म है और यही अन्तिम जन्म है। उससे पहले वह न था और न कभी होगा। इस धर्म में पूर्वजन्म नहीं मानते। ये तीनों यही मानते हैं कि यदि तुम परमात्मा में अथवा उसके दूत में विश्वास रखो और परमात्मा के भेजे हुए ग्रंथ में विश्वास रखो, परमात्मा के द्वारा अन्तिम दिन में दिये गये निर्णय में विश्वास रखो तो तुम्हारा उद्धार हो जायेगा और मर कर तुम स्वर्ग में जाओगे। अब परमात्मा के दूत के स्थान पर यहूदी मानते हैं कि मूसा में विश्वास रखो, क्रिश्चियन मानते हैं

ईसा में विश्वास रखो और मुसलमान मानते हैं कि मुहम्मद में विश्वास रखो। केवल इन व्यक्तियों का अन्तर है, इनके मूल सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं है। प्रार्थना की प्रक्रिया में अन्तर है-एक पाँच बार नमाज पढ़ता है, एक दो बार प्रार्थना करता है और एक अपने हृदयानुसार जिस रूप में हो सके प्रार्थना करता है, इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि इन सम्प्रदायों में कोई भेद नहीं, एक ही धर्म की ये सब शाखायें हैं, धर्म एक ही है। जैसे मूल धर्म यहूदी है वैसे ही मूल धर्म वैदिक धर्म है। उसकी शाखा बौद्ध धर्म है, बौद्ध धर्म में भी पुनर्जन्म माना जाता है। वहाँ भी शरीर से आत्मा अलग मानी जाती है तभी तो उसका पुनर्जन्म होता है। बौद्ध धर्म की जो एक दूसरी शाखा महायान है, उसमें वही भगवान् है, उसका अवतार है, भगवान् को वहाँ बौद्धि सत्त्व कहते हैं। समय-२ पर वह करुणा करके अवतार लेते हैं, बुद्ध उन्हीं के अवतार हैं और इस प्रकार से जीवों के उद्धार के लिए उनमें करुणा का आवर्भाव होता है। वही चार आर्य सत्य-दुःख है, दुःख का कारण है, उसे दूर किया जा सकता है और उसके लिए उपाय है। वही योग के पाँच नियम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि जिसकी साधना करके मनुष्य इस संसार से पार हो जाता है। बौद्ध धर्म, जैन धर्म में भी वही बातें हैं। सम्यक् चरित्र, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान-ये जैन धर्म का मूल सार है, इसको त्रिरत्न कहते हैं। जैन धर्म में भी पुनर्जन्म होता है, वहाँ भी आत्मा और शरीर अलग-२ हैं। ऐसे सिक्ख सम्प्रदाय में भी आप देखेंगे। सिक्ख सम्प्रदाय तो वेदान्त का ही एक दूसरा रूप है बल्कि वेदान्त ही है, दूसरा रूप तो अब हो गया। वहाँ भी कोई भेद नहीं, वही पुनर्जन्म, वही भगवान्, वही नारायण विष्णु, राम-कृष्ण और गोबिन्द, सब कुछ वही है। कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार से आर्य समाज में भी वही वेद, शास्त्र, वही पुनर्जन्म और वही परमेश्वर की उपासना है। अन्तर इतना है कि एक कोई मूर्ति बनाकर उपासना करता है और दूसरा कोई बिना मूर्ति के अर्थात् अग्नि में आहुति देकर उपासना करता है। पूजा के कई ढंग हो सकते हैं। हमारे यहाँ सनातन धर्म में पूजा के लिए एक ढंग नहीं बताया गया, उसमें स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि अपनी-२ रुचि के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह परमात्मा की उपासना करे। तुम निर्गुण मानो, सगुण मानो, निर्गुण-सगुण दोनों का बाप मानो, सनातन धर्म में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। तुम भगवान् को माँ मानो, बाप मानो, मित्र, पुत्र, स्वामी और सखा मानों चाहें किसी भी रूप में मानो, अनेक रूपों में

परमात्मा की उपासना करने की व्यवस्था की गई है इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि भगवान् की उपासना का जो क्रम है, भगवान् की उपासना की जो व्यवस्था है, वह दोनों में एक थी, चाहे वह आर्य समाज हो वा वैष्णव, सनातन धर्म हो, उसमें कोई भेद नहीं।

दुनिया में मूलतः दो धर्म हैं, एक वैदिक धर्म और दूसरा अवैदिक धर्म, इनका इतिहास आप पढ़िये तो पता चलेगा। इन दोनों धर्मों में तत्त्वतः भेद है ,मैंने बहुत अध्ययन किया है। बाईबिल और कुर्आन दोनों पढ़े हैं और पढ़ने के पश्चात् मैंने कोशिश की है कि किस प्रकार से इन दोनों में सामंजस्य लाया जाये। सैद्धान्तिक रूप से सामंजस्य में कोई भूमि नहीं मिलती, केवल एक भूमि मिलती है कि परमात्मा है। परमात्मा है इसमें कोई भेद नहीं, परमात्मा इस्लाम में, यहूदी में, वैदिक धर्म में भी है, जहाँ कहीं धर्म है वहाँ परमात्मा है। परमात्मा के आधार पर ही साम्य हो सकता है। सभी प्राणी परमात्मा की संतान हैं, यह हम मानते हैं, सब नहीं मानते। ईसाइयों से पूछो कि सभी प्राणी परमात्मा की सन्तान हैं? वे कहते हैं नहीं, परमात्मा के तो केवल एक ही बेटा था, जीसस क्राईस्ट। वह सारी दुनिया के लिए मर गया। उनसे पूछा गया कि यह सारी दुनिया जो दिखाई देती है, यह परमात्मा की संतान नहीं? कहते हैं कि नहीं, यह परमात्मा की नहीं एडम की संतान है। एडम तो पापी था, उसने परमात्मा की आज्ञा नहीं मानी थी, उनके मना करने भी उसने ज्ञान वृक्ष का फल खा लिया था। इन दोनों धर्मों में जो मूल भेद है, जो मैं आप लोगों को बताने जा रहा था, उस भेद को समझिए। वैदिक धर्म की यह घोषणा है कि **ऋते ज्ञाना न मुक्ति,** बिना ज्ञान के मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता, बिना ज्ञान के मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता।

अवैदिक धर्म का संदेश है कि यदि ज्ञान आया तो मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता। यदि आपने बुद्धि का प्रयोग किया, ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश की तो आप स्वर्ग में नहीं जा सकते। आपके लिए नरक रिज़र्व है। यह उनका दोष नहीं, उनके ग्रंथ में यह बात लिखी है। Old Testament पढ़िये, उसमें लिखा हुआ है कि खुदा ने एडम को बनाया और आनन्द के बगीचे में रख दिया। इस्लाम भाई जिसे अदम का बगीचा कहते हैं, वे उसे आनन्द कानन कहते हैं। वह अकेला था, खुदा प्रतिदिन उसे देखने जाता था। एक दिन खुदा गया तो वह मायूस बैठा था। उसके मनोरंजन के लिए उसने उसके बायें तरफ की पसली निकाल ली, बाद में उसे फूंका तो वह स्त्री बन गई। उस स्त्री को उसे दे दिया कि अब यह तेरी संगिनी बन गई, इससे अपना मन बहलाया करो। इसीलिए इन

ईसा में विश्वास रखो और मुसलमान मानते हैं कि मुहम्मद में विश्वास रखो। केवल इन व्यक्तियों का अन्तर है, इनके मूल सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं है। प्रार्थना की प्रक्रिया में अन्तर है-एक पाँच बार नमाज पढ़ता है, एक दो बार प्रार्थना करता है और एक अपने हृदयानुसार जिस रूप में हो सके प्रार्थना करता है, इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि इन सम्प्रदायों में कोई भेद नहीं, एक ही धर्म की ये सब शाखायें हैं, धर्म एक ही है। जैसे मूल धर्म यहूदी है वैसे ही मूल धर्म वैदिक धर्म है। उसकी शाखा बौद्ध धर्म है, बौद्ध धर्म में भी पुनर्जन्म माना जाता है। वहाँ भी शरीर से आत्मा अलग मानी जाती है तभी तो उसका पुनर्जन्म होता है। बौद्ध धर्म की जो एक दूसरी शाखा महायान है, उसमें वही भगवान् है, उसका अवतार है, भगवान् को वहाँ बौद्धि सत्त्व कहते हैं। समय-२ पर वह करुणा करके अवतार लेते हैं, बुद्ध उन्हीं के अवतार हैं और इस प्रकार से जीवों के उद्धार के लिए उनमें करुणा का आवर्भाव होता है। वही चार आर्य सत्य-दुःख है, दुःख का कारण है, उसे दूर किया जा सकता है और उसके लिए उपाय है। वही योग के पाँच नियम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि जिसकी साधना करके मनुष्य इस संसार से पार हो जाता है। बौद्ध धर्म, जैन धर्म में भी वही बातें हैं। सम्यक् चरित्र, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान-ये जैन धर्म का मूल सार है, इसको त्रिरत्न कहते हैं। जैन धर्म में भी पुनर्जन्म होता है, वहाँ भी आत्मा और शरीर अलग-२ हैं। ऐसे सिक्ख सम्प्रदाय में भी आप देखेंगे। सिक्ख सम्प्रदाय तो वेदान्त का ही एक दूसरा रूप है बल्कि वेदान्त ही है, दूसरा रूप तो अब हो गया। वहाँ भी कोई भेद नहीं, वही पुनर्जन्म, वही भगवान्, वही नारायण विष्णु, राम-कृष्ण और गोबिन्द, सब कुछ वही है। कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार से आर्य समाज में भी वही वेद, शास्त्र, वही पुनर्जन्म और वही परमेश्वर की उपासना है। अन्तर इतना है कि एक कोई मूर्ति बनाकर उपासना करता है और दूसरा कोई बिना मूर्ति के अर्थात् अग्नि में आहुति देकर उपासना करता है। पूजा के कई ढंग हो सकते हैं। हमारे यहाँ सनातन धर्म में पूजा के लिए एक ढंग नहीं बताया गया, उसमें स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि अपनी-२ रुचि के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह परमात्मा की उपासना करे। तुम निर्गुण मानो, सगुण मानो, निर्गुण-सगुण दोनों का बाप मानो, सनातन धर्म में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। तुम भगवान् को माँ मानो, बाप मानो, मित्र, पुत्र, स्वामी और सखा मानों चाहें किसी भी रूप में मानो, अनेक रूपों में

परमात्मा की उपासना करने की व्यवस्था की गई है इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि भगवान् की उपासना का जो क्रम है, भगवान् की उपासना की जो व्यवस्था है, वह दोनों में एक थी, चाहे वह आर्य समाज हो वा वैष्णव, सनातन धर्म हो, उसमें कोई भेद नहीं।

दुनिया में मूलत: दो धर्म हैं, एक वैदिक धर्म और दूसरा अवैदिक धर्म, इनका इतिहास आप पढ़िये तो पता चलेगा। इन दोनों धर्मों में तत्त्वत: भेद है ,मैंने बहुत अध्ययन किया है। बाईबिल और कुर्आन दोनों पढ़े हैं और पढ़ने के पश्चात् मैंने कोशिश की है कि किस प्रकार से इन दोनों में सामंजस्य लाया जाये। सैद्धान्तिक रूप से सामंजस्य में कोई भूमि नहीं मिलती, केवल एक भूमि मिलती है कि परमात्मा है। परमात्मा है इसमें कोई भेद नहीं, परमात्मा इस्लाम में, यहूदी में, वैदिक धर्म में भी है, जहाँ कहीं धर्म है वहाँ परमात्मा है। परमात्मा के आधार पर ही साम्य हो सकता है। सभी प्राणी परमात्मा की संतान हैं, यह हम मानते हैं, सब नहीं मानते। ईसाइयों से पूछो कि सभी प्राणी परमात्मा की सन्तान हैं? वे कहते हैं नहीं, परमात्मा के तो केवल एक ही बेटा था, जीसस क्राइस्ट। वह सारी दुनिया के लिए मर गया। उनसे पूछा गया कि यह सारी दुनिया जो दिखाई देती है, यह परमात्मा की संतान नहीं? कहते हैं कि नहीं, यह परमात्मा की नहीं एडम की संतान है। एडम तो पापी था, उसने परमात्मा की आज्ञा नहीं मानी थी, उनके मना करने भी उसने ज्ञान वृक्ष का फल खा लिया था। इन दोनों धर्मों में जो मूल भेद है, जो मैं आप लोगों को बताने जा रहा था, उस भेद को समझिए। वैदिक धर्म की यह घोषणा है कि **ऋते ज्ञाना न मुक्ति,** बिना ज्ञान के मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता, बिना ज्ञान के मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता।

अवैदिक धर्म का संदेश है कि यदि ज्ञान आया तो मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता। यदि आपने बुद्धि का प्रयोग किया, ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश की तो आप स्वर्ग में नहीं जा सकते। आपके लिए नरक रिज़र्व है। यह उनका दोष नहीं, उनके ग्रंथ में यह बात लिखी है। Old Testament पढ़िये, उसमें लिखा हुआ है कि खुदा ने एडम को बनाया और आनन्द के बगीचे में रख दिया। इस्लाम भाई जिसे अदम का बगीचा कहते हैं, वे उसे आनन्द कानन कहते हैं। वह अकेला था, खुदा प्रतिदिन उसे देखने जाता था। एक दिन खुदा गया तो वह मायूस बैठा था। उसके मनोरंजन के लिए उसने उसके बायें तरफ की पसली निकाल ली, बाद में उसे फूंका तो वह स्त्री बन गई। उस स्त्री को उसे दे दिया कि अब यह तेरी संगिनी बन गई, इससे अपना मन बहलाया करो। इसीलिए इन

तीनों धर्मों में स्त्री को केवल पुरुष के मनोरंजन का साधन समझा जाता है। आप लोगों को जान कर आश्चर्य होगा कि तीनों धर्मों में स्त्री की मुक्ति नहीं है। इस्लाम धर्म में तो स्त्री को मस्जिद के अन्दर जाने का अधिकार नहीं है। आपको यह जानकर और हैरानी होगी कि यूरोप में रोम के पोप के यहाँ आठवीं शताब्दी में यह विषय विचाराधीन था कि स्त्रियों में आत्मा होती है वा नहीं होती और स्त्री को समान मानना, यह बात तो बहुत दूर की है। वहाँ पर यह सिद्धान्त है कि एडम को बनाकर उसे आनन्द के बगीचे में बिठा दिया और उसको बाद में ईव को दे दिया। जब ईव अदम के बगीचे में उसके साथ रहने लगी तो खुदा ने उससे कहा था कि इस बाग के जितने फल हैं, सभी को खाना किन्तु एक पेड़ के फल को खाने के लिए मना कर दिया। उस वृक्ष का नाम ज्ञान वृक्ष था, Tree of knowledge.

एक दिन एडम नहीं था, बगीचे में अकेली ईव बैठी हुई थी, इतने में वहाँ एक साँप आया किन्तु कुर्आन में उसे थोड़ा सा बदल दिया है साँप के स्थान पर शैतान आया, ऐसा कहा गया है। शैतान ने आकर ईव को बहकाया कि तुम सारे वृक्षों का फल खाते हो, इस वृक्ष के फल क्यों नहीं खाते? उसने कहा— खुदा ने मना किया है। शैतान ने कहा—तुम्हें मालूम है खुदा ने क्यों मना किया? यदि तुम इस फल को खा लोगे तो तुम भी खुदा बन जाओगे इसलिए खुदा नहीं चाहता कि मेरी बराबरी का कोई दूसरा हो, इसलिए उसने मना किया है। तुम एक बार खाकर तो देखो। शैतान के (साँप के) कहने से ईव ने फल खा लिया, फल खाते ही उसे ज्ञान हो गया। उसे लगा कि अभी तक तो हम लोग अज्ञान में ही भटकते रहे, अज्ञान में ही रहे किन्तु अब उसे होश आ गई। उसने निश्चय किया कि जब एडम आयेगा उसे भी यह फल खिलायेंगे। जब एडम आया तो ईव ने कहा कि तू भी इस पेड़ के फल को खा। उसने कहा—नहीं, पिता ने मना किया है। उसने कहा, पिता तो ऐसे ही मना करता है, तुम खाओ तो। वह जिद करने लगी तो एडम ने भी वह फल खा लिया। जब एडम ने फल खाया तो उसे भी ज्ञान हो गया। दोनों ने कहा—अभी तक हम अंधकार में ही थे। इतने में खुदा अपने समय पर पहुँचा। उससे पूर्व तो दोनों नग्न रहते थे, उनको स्त्री-पुरुष का ज्ञान ही नहीं था। अब दोनों ने देखा कि खुदा (बाप) आ रहा है तो वे दोनों एक झाड़ी में जाकर छिप गये। खुदा ने बुलाया—एडम! उसने आवाज़ दी, पिता जी, हम यहाँ बैठे हैं। उसने कहा—बाहर आओ। दोनों ने कहा—हम नंगे हैं, बाहर नहीं आ सकते। यह नंगे होने का ज्ञान तुम्हें कैसे मिला? इसका मतलब तुमने

उस वृक्ष का फल खाया होगा ? एडम ने कहा—पिताजी मेरा अपराध नहीं है, मेरे साथ जो तुमने स्त्री दी है, इसने मुझे मजबूर किया। खुदा ने दोनों को श्राप दे दिया कि तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है इसलिए तुम पापी हो, इस पाप के बदले में तुम्हें मरना पड़ेगा। ईव ने कहा—इसमें मेरी गलती नहीं है, सर्प ने मुझे बहकाया था। खुदा ने सर्प को भी श्राप दे दिया कि भविष्य में ईव की संतान तुम्हें मारेगी, इसलिए मनुष्य सर्प को मारता है। ईव को श्राप दे दिया कि अब तुम संतान उत्पन्न करने का कष्ट भोगोगी इसलिए स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करने का दुःख भोगती हैं। यह कहानी बाईबिल की है और यही कहानी कुर्आन की भी है। इसमें आपको क्या बात समझ आई ? एडम और ईव का बाप पापी था इसलिए उनकी सारी सन्तानें पापी हुई।

बाईबिल में भी old testament और new testament के आधार पर ईसाईयों में एक सम्प्रदाय है जिसको यहूआ सम्प्रदाय कहते हैं। यहूआ विहमस वाले मानते हैं कि दुनिया में जितने मनुष्य हैं सभी पापी हैं और वे कहते हैं इन्हीं मनुष्यों के पाप ग्रहण करने के लिए खुदा ने अपना एकलौता बेटा भेज दिया और उसने यहाँ आकर अपना बलिदान दिया। इन मान्यताओं में कोई युक्ति, विचार, तर्क और बुद्धि की कहीं गंध है ? नहीं मिलेगी आपको। जिस धर्म में बुद्धि का प्रयोग ही नहीं है, वह धर्म विज्ञान की चोट कैसे सह सकता है ? जो केवल आस्था एवं मान्यताओं पर टिका हो, वह कितने दिनों तक मनुष्यता का हित वा कल्याण करेगा ? यही कारण है कि इन दोनों धर्मों में आपने देखा होगा कि Fanaticism तो है ही इसके साथ मनुष्यता की हत्या भी है जिसका परिणाम शताब्दियों से मनुष्य जाति भोग रही है। कोई ऐसा काल नहीं, समय नहीं जब इन धर्मानुयायियों ने मनुष्यता की हत्या न की हो। आप अपना वैदिक धर्म का इतिहास पढ़िये,आज भी वैदिक धर्मानुयाई किसी को दुःख देते समय दस बार सोचते हैं कि हमें यह नहीं करना चाहिए। क्यों ? उनको यह सीख दी गई है कि जब तक तुम बुद्धि का प्रयोग नहीं करोगे, तुम्हारा कल्याण नहीं होगा और जब बुद्धि का प्रयोग करते हैं तो कहते हैं कि जैसी हमारी आत्मा है वैसे दूसरे की आत्मा है। जहाँ पर आत्मभाव की अनुभूति होगी वहाँ पर दुष्कर्म कैसे हो सकते हैं ? इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि वैदिक धर्म और पश्चिमी धर्म में मूल अन्तर है कि एक में ज्ञान की प्रधानता है और दूसरे में ज्ञान की मनाही है। एक में बुद्धि का प्रयोग है और दूसरे में बुद्धि का प्रयोग नहीं है। सौभाग्य से आप उस धर्म के अनुयायी हैं जो विज्ञान की प्रत्येक कसौटी पर

कसने के लिए सदैव तैयार हैं। इतना ही नहीं ऋषियों के द्वारा अनेकों बार कसा गया है, अब उसे नए रूप से कसने की आवश्यकता नहीं होती लेकिन किसी को किसी समय किंचित भी सन्देह हो तो वह बड़े प्रेम से तर्क की कसौटी पर कस सकता है। हम जहाँ भी जाते हैं तो कहते हैं कि हम तो दार्शनिक हैं, जो भी इधर-उधर की बात आई, उसे चीर-फाड़ कर साफ करते रहते हैं। हम ही नहीं सदैव प्रत्येक युग में सनातन धर्म में इस प्रकार के सर्जन अर्थात् दार्शनिक होते हैं, कोई नयी बात नहीं।

दुनिया में दर्शन और धर्म दोनों अलग-२ हैं। पश्चिम में दार्शनिक को धार्मिक नहीं मानते और धार्मिक को दार्शनिक नहीं मानते। पश्चिम में धार्मिक और दार्शनिक अलग-२ हैं लेकिन पूर्व में कोई ऐसा दार्शनिक नहीं जो धार्मिक न हो, कोई ऐसा धार्मिक नहीं जो दार्शनिक न हो। दर्शन और धर्म, ये दोनों एक-दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध रखते हैं। हमारे यहाँ यह बताते हैं कि धर्म के दो आधार वा स्तम्भ हैं-एक का नाम दर्शन और दूसरे का नाम है नीति। दर्शन और नीति, जिसको हमारे यहाँ श्रुति और स्मृति कहते हैं। स्मृति का नाम धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र है और श्रुति फिलास्फी का ग्रन्थ है इसलिए श्रुति और स्मृति, दर्शन और नीति, ये धर्म के दो मूल स्तम्भ हैं, इन्हीं के ऊपर धर्म खड़ा हुआ है। नीति में सदाचार है और दर्शन में सद्विचार है। दूसरे शब्दों में यदि मैं कहूँ तो सद्विचार और सदाचार ही धर्म का मूल आधार है, इसमें अतिश्योक्ति नहीं होगी। सदाचार क्रियात्मक रूप है जो प्राणशक्ति का परिणाम है और सद्विचार उसका दार्शनिक पहलू है जो सुन्दर, विशुद्ध बुद्धि का परिणाम है इसलिए जिसको मैंने कल प्राण और बुद्धि कहा था, जिसको मैंने राधा और दुर्गा कहा था, उसी के ये पर्याय हैं-सदाचार और सद्विचार। सदाचार प्राण का पर्याय है। आचरण आप कैसे करेंगे? क्रिया के द्वारा। क्रिया कैसे होगी? शक्ति के द्वारा और शक्ति कहाँ से आयेगी? प्राण के द्वारा। प्राण के अभाव में शक्ति हो सकती है? कभी नहीं। यदि आप प्राण का संयम न करें तो आपके पास शक्ति नहीं होगी, यह सदैव याद रखो। जब आप बोझ उठाते हैं तो श्वास रोक कर उठाते हैं, जिस समय आप बोलते हैं, उस समय आप श्वास नहीं ले सकते, जब श्वास लेते रहेंगे तो आप बोल नहीं सकते, दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते। प्राण एवं श्वास ही वाणी के रूप में प्रकट हो रहा है, प्राण ही क्रिया के रूप में प्रकट होता है इसलिए प्राण ही सदाचार का आधार है और सद्बुद्धि सद्विचार का आधार है। विचार किसके द्वारा करते हैं?

बुद्धि के द्वारा। यदि बुद्धि न हो तो फिर कुछ नहीं सोच सकते इसलिए प्राणमयी शक्ति राधा, बुद्धिमयी शक्ति दुर्गा, इन्हीं के द्वारा यह सारा संसार चल रहा है। यही संसार की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं जो कि आपके जीवन में सदाचार और सद्विचार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। मैं आप लोगों को बता रहा था कि सद्विचार बुद्धि का प्रकाश है और जहाँ सद्विचार नहीं है वहाँ सदाचार नहीं हो सकता और जहाँ सदाचार नहीं है वहाँ सद्विचार नहीं हो सकता, ये दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। जहाँ सद्विचार नहीं है वहाँ सदाचार हो सकता है? यदि बुद्धि ही भ्रष्ट है तो क्या शुद्ध आचरण होगा? नहीं हो सकता। यदि आचरण ही शुद्ध नहीं है तो बुद्धि शुद्ध होगी? शुद्ध बुद्धि कहाँ से मिलेगी? इसलिए ये दोनों एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं—प्राण और बुद्धि, प्राण और ज्ञान, प्राण और चेतना, इनको अलग-२ नहीं किया जा सकता इसलिए शास्त्रकारों ने बताया कि इन दोनों की आराधना करनी है, इन दोनों के द्वारा ही आप स्वयं को उन्नत कर सकते हैं। सदाचार ही जीवन है। देवी भागवत की घोषणा है कि—'**आचारो प्रथमो धर्मः।**' आचार ही प्रथम धर्म है। यदि इनकी आराधना आपके जीवन में नहीं है तो आपका जीवन व्यर्थ है, सदाचारहीन विद्वान् को ही राक्षस कहते हैं। रावण महाविद्वान था किन्तु सदाचार रहित था इसलिए उसे राक्षस कहा गया। शास्त्र का यही कथन है कि आपमें ज्ञान है, विद्या है, यदि सदाचार नहीं है तो आपका जीवन व्यर्थ है। यह अनिवार्य नहीं कि जिसके पास विद्या है वह सदाचारी भी हो, ऐसा कोई कानून नहीं है। विद्या अध्ययन करना अलग बात है, ग्रन्थ रट लेना एक अलग बात है और सदाचार जीवन में प्रतिष्ठित करना बिल्कुल उससे भिन्न है, इसलिए हमारे यहाँ वेद में एक मंत्र है जिसमें बताया गया है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

(कठ० १/२-५)

कहा—"जो लोग अविद्या में वर्त रहे हैं और स्वयं को पण्डित और विद्वान् मानते हैं, वे मूर्ख लोग नाना योनियों में भटकते हए वैसे ही ठोकरें खाते हैं जैसे अन्धे द्वारा चलाये जाने वाले अन्धे।" अविद्या का स्वरूप क्या है? पद और पदार्थ, दुनिया के भोग पदार्थों में आसक्ति। एक स्थान पर तुलसीदास जी ने लिखा है—

कहिय सुनिय समुझिय समुझाईय दसा हृदय नहिं आवै।

कहता हूँ, सुनता हूँ, समझता हूँ और समझा देता हूँ किन्तु वे बातें व्यवहार में नहीं आती। व्यवहार में क्यों नहीं आती? व्यवहार में इसलिए नहीं आती कि मन बड़ा

प्रबल है। विनय पत्रिका में तुलसीदास जी ने एक स्थान पर और कहा है—

वाक्यग्यान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृहमध्य दीप की वातन्ह तम निवृत नहिं होई॥

(वि०प० २२३/२)

कहा—कोई वाक्य ज्ञान में बड़ा पण्डित हो, बहुत अच्छी बातें करता हो, उससे वह संसार सागर से पार नहीं हो जायेगा? उसमें उदाहरण दिया है—जैसे अन्धेरी कोठरी में बैठकर इलैक्ट्रीसिटी की व्याख्या करने से प्रकाश नहीं हो जाता, प्रकाश तो प्रकाश करने से होगा। इसी रूप से जब तक जीवन में सदाचार नहीं आयेगा तब तक धर्म नहीं, जब तक धर्म नहीं तब तक कल्याण नहीं, सुख नहीं, शान्ति नहीं इसलिए वेद कहता है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।

जो अविद्या में वर्त रहे हैं, स्वयं को धीर और पण्डित समझ रहे हैं, वेद कहता है—

जघन्यमाणाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

वे मूढ़, पतित और गिरे हुए लोग हैं, उनका जीवन उसी प्रकार का है जैसे अन्धे की लाठी पकड़ कर कोई अन्धा चल रहा हो तो क्या गति होगा? दोनों गड्ढे में गिर जायेंगे, यही स्थिति होती है इसलिए सदाचार की बड़ी महिमा है, देवी भागवत के उत्तरार्ध में पूरा स्कन्ध सदाचार के ऊपर है। आज के पाठ में जो आया, वह सदाचार स्कन्ध है,उसमें सदाचार की ही महिमा है। सदाचार किसे कहते हैं? कैसे किया जाता है? सदाचार की पूरी व्याख्या है। सदाचार के पालन के लिए राधा और दुर्गा, दूसरे शब्दों में प्राण और बुद्धि-इन दोनों देवियों की आराधना अनिवार्य है जो मैंने पूर्व में आपको बताया। इनकी आराधना के बिना व्यक्ति सदाचारी नहीं बन सकता, यह देवी भागवत का सिद्धान्त है।

इसमें एक मजेदार कथा है वह भी मैं आप लोगों को बता दूँ। प्राचीन काल से ही ऐसी घटनायें होती आई हैं। एक बार पृथ्वी पर अकाल पड़ा, इन्द्र ने मनुष्यों के दुष्चरित्र को देख करके वृष्टि बन्द कर दी। बारह वर्ष तक पृथ्वी पर वर्षा नहीं हुई और त्राहि-२ मच गई। खाने-पीने, रहने का कोई ठिकाना नहीं रहा, उस अकाल में असंख्य जीव मर गये। उन्हीं दिनों कुछ ब्राह्मणों ने विचार किया कि अब हम अपना अग्नि होत्र वा नित्य कर्म करने कहाँ जायें? उनको पता चला कि गौतम ऋषि के आश्रम में नित्य वर्षा होती है। बड़े आश्चर्य की बात! सारी दुनिया में अकाल पड़ा हुआ है और गौतम ऋषि अपने आश्रम में

अपने तपोबल से सुख और शान्ति की व्यवस्था किये हुए हैं। वहाँ पर वृष्टि होने के कारण प्रत्येक कृषि समय पर होती है। ब्राह्मणों ने निश्चय किया कि हम ऋषि के आश्रम में चलेंगे। ब्राह्मण समूह गौतम ऋषि के आश्रम में पहुँच गया। गौतम ऋषि ने देखा तो दौड़ कर सभी का स्वागत किया, आईये महात्मन! बड़े सौभाग्य की बात है, आप हमारे आश्रम में पधारे। कहिये क्या सेवा करूँ? ब्राह्मणों ने कहा—ऋषिवर! आपको पता है कि इस समय सारी दुनिया में त्राहि-२ मची हुई है, कहीं ठिकाना नहीं है जहाँ पर हम अपना नित्य कर्म कर सकें, हम आपकी शरण में आये हैं। गौतम ऋषि ने कहा—हम सभी भगवान् शंकर की शरण में हैं लेकिन आपका स्वागत है, जब तक आपका मन लगे आप आश्रम में रहिये। ब्राह्मण लोग आश्रम में रहने लगे, दिनों दिन गौतम ऋषि की ख्याति बढ़ने लगी कि उन्होंने अपनी तपस्या के प्रभाव से आश्रम को हरा-भरा कर रखा है। वहाँ प्रत्येक वस्तु उपलब्ध हो जाती है, किसी प्रकार के अकाल का प्रभाव नहीं।

जो लोग वहाँ रहते थे, गौतम ऋषि की कीर्ति को सुनकर उनके कान जलने लगे, ईर्ष्या, डाह के कारण जलन होने लगी। उन्होंने निश्चय किया कि हमारे आने से इनकी इतनी कीर्ति बढ़ी और अब हम लोग दीन हो गए! इसके लिए हमें कोई उपाय सोचना चाहिए। उन्हीं दिनों का संयोग ऐसा था कि वृष्टि हो गई, वृष्टि होने से सुकाल हो गया, सब जगह व्यवस्था होने लगी। ब्राह्मणों ने आकर ऋषि से कहा—ऋषिवर! अगर आपकी आज्ञा हो तो अब हम जायें। ऋषि ने कहा—ब्राह्मणों! तुम्हें अग्नि होत्र करना है, तपस्या करनी है, भजन एवं गायत्री का जप करना है तो यहीं आश्रम में रहकर करो, यदि सेवा में कोई त्रुटि हो तो आप बताइये! क्या करोगे जाकर? सभ्यता, सज्जनता, स्वागत के नाते उनको विदा नहीं किया। ब्राह्मणों ने विपरीत समझा, हम लोगों को इसलिए नहीं जाने देता क्योंकि हमारे यहाँ रहने से इसकी कीर्ति होती है! यह सोचता है कि हमारे चले जाने से इसकी कीर्ति कम हो जायेगी। अपनी कीर्ति के लिए यह हमें यहाँ रखना चाहता है। परिणाम क्या हुआ? ब्राह्मणों ने विचार किया कि इसको दुनिया में बदनाम करना चाहिए और हमें आश्रम छोड़ देना चाहिए। इसके लिए उन्होंने माया की एक गऊ बनाई। जहाँ पर गौतम ऋषि यज्ञ करते थे, उनकी यज्ञशाला में उसे छोड़ दिया। गऊ यज्ञशाला पहुँच गई। ऋषि उस समय यज्ञ कर रहे थे, उन्होंने गऊ हटाने के लिए 'हुँ' किया, वह माया की गऊ थी, 'हुँ' करते ही गिरी और मर गई। ब्राह्मणों ने कहा—ऋषि ने गऊ मार दी, यह गऊ का हत्यारा है, गऊ हत्या से यह पतित हो गया है, अब यह आश्रम रहने योग्य नहीं।

जितने ब्राह्मण थे सब आश्रम छोड़कर चल दिये और घोषणा कर दी कि यह गऊ का हत्यारा है और पतित है। गौतम ऋषि बड़े हैरान हुए कि आज इन ब्राह्मणों को क्या हुआ? उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो सब कुछ समझ गये, हाथ में जल लेकर घोर श्राप दिया कि अरे मूर्ख ब्राह्मणों! जाओ तुम्हारी इस नारकीय विचारधारा पर मैं तुम्हें श्राप देता हूँ। आज से तुम लोग पतित हो जाओगे। तुम लोगों को वेद और गायत्री का अधिकार नहीं होगा और न ही जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त कर सकोगे। जब श्राप दे दिया तो सभी ब्राह्मण रोने लगे और ऋषि के चरणों में आकर प्रार्थना करने लगे कि हमें क्षमा कर दीजिए। ऋषि ने पहले यह श्राप दिया कि तुम लोगों को निशाचर खा जायेंगे, उसके पश्चात् तुम पतित होकर अनेक वर्षों तक नरक में वास करोगे और बाद में भगवान् कृष्ण जब पृथ्वी छोड़कर चले आयेंगे, तब तुम्हारा कलियुग में जन्म होगा। वहाँ तुम गायत्री और सावित्री से भ्रष्ट रहोगे, तुम त्रिकाल सन्ध्या वन्दन, ब्राह्मण कर्म और वेद कर्म से भ्रष्ट हो जाओगे और वहाँ पर तुम्हारा जीवन आसुरी एवं नारकीय होगा। ब्राह्मणों ने पूछा—हम लोगों के उद्धार का कोई रास्ता है? ऋषि को दया आई, बोले-एक ही रास्ता है, जो भगवती की आराधना करेगा उसका पुनः वेद और गायत्री पर अधिकार हो जायेगा। जो भगवती की आराधना से वंचित और विमुख होगा वह कलियुग में ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर अपने कर्म और धर्म से पतित हो करके नारकीय जीवन यापन करेगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान में हम गौतम ऋषि के श्राप को क्रियात्मक रूप में देख रहे हैं। यहाँ ही नहीं भारत में भी यही गति है, मैं स्वयं भी ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ हूँ, मुझे पता है क्या गति है! किस दुर्गति को प्राप्त हुए? जब मैं वेद का अध्ययन करता हूँ तो मुझे दुःख होता है। जिस जाति के पास वेद हो, दर्शन, सांख्य, मीमांसा, वेदान्त, योग, न्याय, भगवद्गीता, महाभारत और रामायण हो, वह जाति अरब के मुट्ठी भर अशिक्षित लोगों के द्वारा सात सौ वर्ष तक रौंदी जाती रही। अरब के असभ्य लोगों से जब बची तो उसके बाद बर्तानिया ने इसे रौंदा। जहाँ आप बैठे हैं, यहाँ के लोग भी गए थे, भारत के कुछ भाग पर इनका भी शासन रहा है, डच लोगों का भी शासन रहा। इन्होंने बाद में ब्रिटिश से समझौता किया और वह भाग ब्रिटिश को दे दिया, जिस पर उनका अधिकार था इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि वह देश जिसमें वेद, गीता, महाभारत हो, शुक्राचार्य, विदुर, मनु, चाणक्य की नीति हो, उसकी यह दुर्गति! आप नीति शास्त्र को पढ़िये तो आपकी आँखें खुल जायेंगी। यह नहीं कि

उन्होंने हमें कुछ बताया ही नहीं, आज से दो-ढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व चाणक्य हुए, उनकी नीति का दुनिया के विद्वान् भी लोहा मानते हैं। पंचतन्त्र जो नीति शास्त्र का एक महान् ग्रन्थ है, जिसमें राजनीतिज्ञों की नीतियों का निचोड़ बताया गया है, उन ग्रन्थों के होते हुए भी भारत की यह दुर्गति हुई कि साढ़े छः हज़ार मील की दूरी से आकर भारत पर अंग्रेजों ने राज्य किया। वे विद्वान् कहलाने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि बहुसंख्या में जिनका भारत पर शासन एवं प्रभुत्व था, वह उनके गुलाम बने हुए थे। इस दुर्गति का मूल कारण क्या है, आप जानते हो? पथ भ्रष्टता। यदि आप इतिहास का अध्ययन करें तो आप भी भारत की दुर्गति के कारण को समझ लेंगे। प्राचीन काल में भारत की शिक्षा ब्राह्मणों के हाथ में थी, भारत की रक्षा क्षत्रियों के हाथ में थी, भारत का व्यापार वैश्यों के हाथ में था, भारत का उत्पादन और कला शूद्रों के हाथ में था। इन चारों का अपने-२ क्षेत्र में पूर्ण अधिकार था, उसमें कोई छोटा और बड़ा नहीं था। इतिहास में गुप्तकाल भारत का एक गौरव पूर्ण काल रहा है, उसे स्वर्णिम युग कहते हैं। उसका वैभव एक-दो वर्ष नहीं हज़ार वर्षों तक भारत में रहा, जिसको मुसलमानों ने लूटा। इसमें बुद्धिभ्रष्टता ही कारण रही और कोई कारण नहीं-**बुद्धि नाशात् प्रणश्यति**। एक बात याद रखिये, जिस देश का शिक्षक अपने स्तर से पतित हो जाये उस देश का रक्षक, निर्माता और व्यवसायी सुखी रह सकता है? कभी नहीं रह सकता। किसी भी देश का विकास करना हो तो वहाँ के लोगों को सुन्दर एवं उत्तम शिक्षा दीजिये, यदि किसी भी देश का ह्रास वा पतन करना हो तो वहाँ से शिक्षा को हटा लीजिये, इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा रास्ता नहीं।

इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि जो हम देवी भागवत में पढ़ते हैं, वह यथार्थ में हमारे समक्ष दिखाई देता है। इसी का परिणाम रहा है कि हम शताब्दियों तक दु:खी रहे। मैं समझता हूँ कि अब दुनिया बदल गई है। भारत वह भारत नहीं है जो १९०० या १८०० में था, १९४७ वाला भारत भी आज नहीं रहा, १९६२, १९६५-१९७० वाला भारत आज नहीं रहा, आज भारत और है। भारत के लोगों के सोचने की दिशा और है, उनके जीवन की धारा और है, वह समय बहुत निकट है, विदेशी भी कहते हैं, मानते हैं कि एक दिन दुनिया में भारत एक महान् देश के रूप में प्रतिष्ठित होगा। इसलिए अब वे बातें समाप्त हो गईं, आप देख रहे हो कि भारत के विद्वान् एक नहीं हज़ारों की मात्रा में अपना सर्वस्व लगाये हुए बैठे हुए हैं। भारत का गौरव अपने में सुरक्षित है और आगे भी रहेगा किन्तु जो पूर्व में दुर्गति हुई, वह क्यों हुई, उसका कारण भी आप लोगों को

बताया। आप लोगों को जो बताने जा रहा था वह यह है कि इन समस्त कथाओं का मूल आधार है सदाचार। हम अपने जीवन में सदाचार को प्रतिष्ठित करें, सदाचार के बिना हमारा जीवन उन्नत नहीं हो सकता। सदाचार का पहला लक्षण क्या है, वह मैं आप लोगों को बता दूँ जो सभी के पालन करने योग्य हैं।

वैज्ञानिक ढंग से आप समझ सकते हैं, आप सभी जानते हो कि पृथ्वी पर जो जीवन है उसका मूल स्रोत सूर्य है। **'सूर्यो आत्मा जगदस्थश्च'** सूर्य सारे जगत् की आत्मा है। आज का वैज्ञानिक भी यही बताता है जो ऋग्वेद ने बताया कि सूर्य जगत् की आत्मा है, सूर्य न हो तो इस पृथ्वी पर प्राण और जीवन नहीं हो सकता। वेद यह कहता है कि जिसके द्वारा तुम अनुप्राणित हो, तुम्हारी चेतना है, जीवन है, वह तुम्हारी दृष्टि में जड़ है या चेतन? क्योंकि जड़ से तुम्हें चेतना नहीं मिल सकती। यह तो साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है कि जो वस्तु कारण में नहीं है वह कार्य में कभी नहीं हो सकती, इसे ही कार्य-कारणवाद कहते हैं। यदि यह सूर्य का गोला जड़ है तो उसके द्वारा तुम्हारे जीवन में चेतना का संचार नहीं हो सकता और यदि तुम्हारे जीवन में चेतना नहीं है तो तुम्हारे जीवन में बुद्धि, ज्ञान, समझ कहाँ से आयेगी? ये सब तो चेतना के ही कार्य हैं। इसलिए सूर्य को हमारे यहाँ नारायण कहते हैं। पृथ्वी नारायण, जल नारायण, वायु नारायण नहीं है लेकिन सूर्य नारायण है क्योंकि वह जीवन का स्रोत है। अब जो बात मैं आपको बता रहा हूँ—सदाचार के आरम्भ में बताया गया है कि यदि तुम्हें पता चले कि आपके नगर की रानी तुम्हारे घर आयेंगी। फिर तुम क्या करोगे? नगर की रानी आ रही है तो तुम आठ बजे तक सोये रहोगे, घर को गंदा रखोगे! क्या राय है? अरे भले आदमी, वह रानी तुम्हें कुछ नहीं देती फिर भी उसके स्वागत के लिए तुम सफाई करोगे, नहा-धोकर सुन्दर वस्त्र पहनोगे, घर को सजा कर रखोगे क्योंकि रानी आ रही है। पुराण कहता है कि भले आदमी! तुम्हारे जीवन का स्रोत, तुम्हारे जीवन का मूल कारण, तुम्हारी जीवनी शक्ति का मूल आधार भगवान् भास्कर प्रातःकाल उदय हो रहे हैं और तुम खर्राटे ले रहे हो, तुम उस गंदी अवस्था में हो कि तुम्हें देखना भी कठिन हो रहा है। तुम्हारा घर, तुम्हारा समाज, तुम्हारी प्रत्येक स्थिति अव्यवस्थित रूप में है जिसको देख कर घृणा होती है। सदाचार क्या कहता है? सदाचार कहता है कि सूर्योदय से पूर्व तुम स्वयं उठ कर अपनी सफाई करो और अपने प्राण-दाता के स्वागत के लिए तैयार रहो। कैसे? एक गड़वे में जल और पुष्प लेकर, हमारे यहाँ इसको कहते थे सूर्य को अर्घ देना। हमारे यहाँ प्रातःकाल उठना माने सूर्योदय से पूर्व, साठ

घड़ी तक प्रातः होता है, उससे पूर्व साठ घड़ी तक अरुणोदय होता है, उससे पूर्व साठ घड़ी तक ब्रह्ममहूर्त होता है। सूर्योदय से लेकर जहाँ ब्रह्ममहूर्त प्रारम्भ होता है वहाँ से १८० घड़ी ब्रह्ममहूर्त माना जाता है। ब्रह्ममहूर्त, अरुणोदय, प्रातःकाल और फिर सूर्य उदय होता है। शास्त्रों में बताया गया कि ब्रह्ममहूर्त में तुम अपनी खाट छोड़ दो, और कुछ न करो बस उठकर बैठ जाओ। जैसे कोई बीमार हो, कमजोर हो, अस्वस्थ हो, दौड़ नहीं सकता, चल नहीं सकता किन्तु चारपाई पर बैठ तो सकता है। इतना ही प्रभु से प्रार्थना करो कि मैं आपके स्वागत में हाथ जोड़े बैठा हूँ। शास्त्र कहता है कि ब्रह्ममूर्त में उठना सदाचार की नींव है और जितना तुम अधिक सोओगे, दिन में सोओगे और सूर्योदय के समय सोओगे उतना तुम्हारे प्राण का क्षय होगा, यह बिल्कुल सत्य है। प्रातःकाल सूर्य की किरणें अमृत की वर्षा करती हैं। किसी वैज्ञानिक से पूछिए कि प्रातःकाल कितना शुद्ध ऑक्सीज़न से युक्त होता है, स्वास्थ्य के लिए कितना पवित्र होता है? आजकल किसी को Heart Trouble हो जाती है तो डॉक्टर कहते हैं कि प्रातःकाल उठ कर सैर किया करो। उनको इतना समझ नहीं आता कि अस्वस्थता का मूल कारण तो शरीर की दुर्गति है। यदि प्रातःकाल उठ कर ब्रह्ममहूर्त में बैठे, प्राणायाम के द्वारा शुद्ध वायु का सेवन करे और सूर्योदय से पूर्व एक गड़वा जल लेकर सूर्य भगवान् को अर्घ दें फिर कोई भी रोग नहीं होगा? यह वैज्ञानिक तथ्य है इसलिए सदाचार का पहला आधार है प्रातःकाल उठना, ब्रह्ममहूर्त में जागना और जागरण के पश्चात् शौच से निवृत्त होकर स्नान। यहाँ तो उठते ही पहले Bed Tea चाहिये! क्या दुर्गति है? यह सदाचार का जीवन होगा? कभी नहीं होगा। यह तो जीवन कदाचारी हो सकता है, सदाचारी नहीं।

इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि प्रातःकाल उठकर शौच आदि से निवृत्त होना, उसके पश्चात् स्नान करना। शास्त्रों में स्नान की बड़ी महिमा है। नारद ने पूछा कि प्रातःकाल स्नान क्यों करना चाहिए? भगवान् नारायण ने बताया कि हमारे शरीर के बड़े-२ नौ दरवाजे हैं जिन्हें Main gate कहते हैं, छोटी-२ खिड़कियाँ तो बहुत हैं जिन्हें रोम कूप कहते हैं। रोम कूप से पसीना तो निकलता है, कहाँ से आता है? अन्दर से ही आता है। बड़े-२ नौ दरवाजे कौन-२ से हैं? दो आँख, दो कान, दो नाक, एक मुख और दो नीचे के हैं, जब सोते हो तो इन नौ दरवाजों में से खूब मल निकलता है। प्रातःकाल उठ कर बिना नहाये-धोये शीशा देखो तो पता चले आप कितने सुन्दर हो? जो कृत्रिम सौन्दर्य है या cosmetic से बनाया गया सौंदर्य है, यह तुम्हारे जीवन

का सौंदर्य नहीं है, यह तो अपने विकृत रूप को सजाने का ढंग हैं। सौंदर्य तो natural स्वाभाविक, सहज होता है लेकिन वह सहज नहीं है। मुँह की लाली चली गई तो मलने से मुँह लाल नहीं होगा। इसलिए शास्त्र में यह बताया गया कि जब तुम सोते हो तो तुम्हारी नौ इन्द्रियों से और जितने रोम कूप हैं, उन सभी से मल बहता रहता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह बहुत उपयोगी है कि प्रातःकाल उठ कर स्नान के द्वारा इन नौ मल के दरवाजों को साफ करो। मुँह को साफ करने के लिए दन्त धावन जिसे आजकल की भाषा में आप ब्रुश कहते हो, उसका प्रयोग करो। कान के, आँख के, नाक के मल को दूर करने के लिए साधनायें हैं, इसके पश्चात् स्नान करो। इसी देवी भागवत में बताया गया कि जो द्विज नित्य स्नान, नित्य अग्नि होत्र और त्रिकाल सन्ध्या नहीं करता वह तीन दिन बाद पतित होकर शूद्र से भी नीचे हो जाता है। यहाँ पर तो तीन दिन की बात नहीं, सप्ताह तक स्नान नहीं होता है। मैं आप लोगों को शौच का मूल आधार बता रहा हूँ। यदि आप मेरी तीन बातें मान लो तो मैं समझता हूँ कि मेरे नौ दिन के व्याख्यान का सार आपकी समझ में आ गया। एक तो सूर्योदय से पहले उठो, शौच स्नान से निवृत्त होकर के सूर्य उदय होते समय प्रभु की प्रार्थना में लग जाओ, स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। इसके बाद प्राणायाम अवश्य करों जिससे शरीर की सारी गन्दगी दूर हो जाती है, शरीर दिव्य हो जाता है, चमक आने लगती है। यह नहीं कि दिन भर पेट में कुछ भरते ही रहो, इधर पश्चिम वालों को देखा वह दिन भर कुछ न कुछ पेट में डालते ही रहते हैं। पेट यज्ञ कुण्ड है। गीता में भगवान् ने कहा—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

(गीता १५/१४)

यह यज्ञ कुण्ड है, जब इसमें कुछ डालो तो समझो हम हवन कर रहे हैं, प्रभु की उपासना कर रहे हैं। तुम कम खाओगे, यदि एक बार खाओगे तो मरोगे नहीं और न कमजोर होंगे। तुम देखो मुझे ३१ वर्ष हो गये, पहले तो मैंने कई वर्ष अन्न नहीं खाया और जब से खाना प्रारम्भ किया है, एक समय अन्न ग्रहण करता हूँ, यहाँ पर भी लोग जानते हैं जो हमारे साथी हैं और काम, काम तो तुम लोग स्वयं देख रहे हो। पहले तीन घण्टे पाठ करना फिर डेढ़ घण्टा व्याख्यान में लगता है। यह आप लोग जानते हो बोलने और पढ़ाने में कितना परिश्रम होता है और उसके साथ दीमाग की कसरत, यह सब कुछ करते हुए २१-२२ घण्टे से कम काम करता नहीं। तुम देख रहे हो भगवान् की बड़ी कृपा है, स्वास्थ्य अच्छा है।

इसलिए तुम यह न सोचो कि अधिक से अधिक पेट में डालते जाओगे तो तुम तकड़े होंगे। संयमित आहार करो जिससे तुम्हारा जीवन उत्तम रहेगा, तुम स्वस्थ रहोगे। दुनिया में बिना खाये बहुत कम लोग मरते हैं लेकिन अधिक खाकर बहुत लोग मर रहे हैं। जितने रोग हैं अधिकांश पेट की खराबी से होते हैं और पेट खराब होता है अनियमित आहार से इसलिए सदाचार का पालन तुम्हारे दैनिक जीवन की क्रिया है, उसमें ढील मत दो। सदाचार तुम्हारे लिए आरोग्यता, सुख वा वैभव का साधन है इसलिए सूर्योदय से पहले उठना, शौच स्नान से निवृत्त होकर के जिसको Bed Tea की आदत हो,वह आज से नियम ले ले उसके स्थान पर गर्म पानी ले लिया करे, जिससे थोड़े दिनों में चाय की आदत खतम हो जायेगी। यह जो शुद्ध शौचाचार के मूल नियम हैं, यह सदाचार का पहला स्तर हैं, इसके आगे फिर सद्विचार और सद्व्यवहार का क्रम चलता हैं। जिसका जीवन इस प्रकार से सात्त्विक हो जायेगा, वह कभी समाज के साथ धोखा नहीं करेगा इसलिए यह सोचो कि हमारे प्राणदाता भगवान् भास्कर उदय हो रहे हैं, उनके उदय होने से पहले हमें उनकी प्रार्थना के लिए खड़े रहना है। वह प्राणदाता हैं, जीवनदाता हैं, अन्नदाता से अधिक उनका महत्त्व है, यह बात स्मरण रखो! इसलिए गायत्री की एक माला यदि प्रातःकाल सूर्य की ओर मुँह करके तुम जपते हो, कभी भी रोग तुम्हारे नजदीक नहीं आयेगा। शास्त्र में सभी मनुष्यों के लिए दिव्य विधान बताया गया है। श्रीमद्देवीभागवत का सदाचार के विषय में यह संदेश है और भी बहुत सी बातें हैं, यह तो मूल रूप से मैंने आप लोगों को समझाया। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपने विचारों को यहाँ विश्राम देता हूँ।

हरि ॐ तत्सत्।

१

(देवी भागवत सार)

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् का मंगलमय विधान आप सभी के लिए कल्याणप्रद हो, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना है! आप लोग नित्यप्रति शरणागति मन्त्र का मेरे साथ उच्चारण करते हैं। हमारे यहाँ वैष्णव सम्प्रदाय में श्री रामा शरणं मम, श्री कृष्ण शरणं मम, यह शरणागति मन्त्र है। शास्त्र में इस मंत्र की बड़ी महिमा है। सम्प्रदाय के आचार्यों ने इस मंत्र की बड़ी महिमा गाई है। इसका भाव होता है कि हे प्रभो! आज से हमने दुनिया की शरण त्याग दी केवल एक तुम्हारी शरण ग्रहण की है। संबमें रमण करने के नाते उस परमात्मा को राम कहते हैं और जो सबको अपनी ओर आकर्षित कर रहा है इसलिए उसे कृष्ण कहते हैं। राम और कृष्ण उस परब्रह्म परमात्मा के पावन नाम हैं। उपनिषदों में इन नामों की बड़ी महिमा गाई गई है। परमात्मा की शरण ग्रहण करने की दृढ़ भावना और हृदय से उसकी शरणागति को स्वीकार करने की भावना लेकर 'श्री रामा शरणं मम', मेरा केवल एक परमात्मा ही शरण्य है, मैं केवल परमात्मा के ही शरण में हूँ, इस मन्त्र का यह भाव होता है। आप लोग नित्यप्रति इस मन्त्र को मेरे साथ बोलते हो, इसको आप चलते-फिरते, उठते-बैठते अपने श्वास के साथ जोड़ लें, इससे आपको आन्तरिक शान्ति और भगवान् में अनुरक्ति प्राप्त होगी, इसमें संदेह नहीं।

आज हमारे इस ज्ञान यज्ञ का नवम् दिवस है और पूर्णाहुति का समय है। इस बार मैंने नौ दिनों में शक्ति से सम्बन्धित बहुत सी बातें समझाई हैं। मुझे विश्वास है कि आप लोग इन नौ दिनों में काफी लाभ उठाये हैं और जहाँ तक मैं समझ पा रहा हूँ कि आप लोगों की सुनने की आस्था, प्रेम, श्रद्धा, रुचि को देखते हुए पुन: मैं आप लोगों को समय दूँगा, इसमें संदेह नहीं। जितनी बातें सुनी हैं, उनको अपने हृदय में धारण कीजिए और उनका कुछ अंश अपने हृदय में उतारने का प्रयत्न कीजिए। कल मैंने बताया था कि ''आचार: प्रथमो धर्म:'' यह देवी भागवत का संदेश है कि आचार ही धर्म का मूल आधार है। हमारे यहाँ शास्त्रकारों ने बताया है ''धर्मो विहीन: पशुभि: समान:'' जो धर्म रहित है, वह दो पाँव का पशु है। चार पाँव के पशु से तो लोग सावधान भी रहते हैं किन्तु दो पाँव का पशु बड़ा खतरनाक होता है क्योंकि वह मनुष्य की आकृति में पशु है। ''मनुष्य रूपेण मृग: चरन्ति'' माने मनुष्य के रूप में वह पशु के समान व्यवहार कर रहा है, वह पशु है इसलिए आचार ही धर्म का मूल आधार है। सदाचार का पालन आप तब कर सकते हैं जबकि आप में सद्विचार हो। सद्विचार विशुद्ध बुद्धि का परिणाम है, कल मैंने ये दो बातें आप लोगों को समझाई थीं।

हमारे सनातन धर्म के, हिन्दू धर्म के यही दो मूल आधार हैं—आचार और विचार। विचार उन्नत होगा तो आचार शुद्ध होगा, आचार शुद्ध होगा तो विचार उन्नत होगा। दोनों अभिन्न सम्बन्ध रखते हैं, इनको अलग-२ नहीं किया जा सकता। आचार और विचार के द्वारा ही धर्म की प्रतिष्ठा होती है, आचार का संदेश आपको नीति से और विचार का संदेश आपको दर्शन से प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में नीति और दर्शन ही धर्म के मूल आधार हैं। आचार और विचार, इन दोनों को शुद्ध और सात्त्विक बनाने का साधन क्या है? इस विषय पर मैं आज आप लोगों से चर्चा करूँगा। देवी भागवत ग्रन्थ १२ स्कन्दों में है, इसे द्वादश स्कन्द कहते हैं। जो अन्तिम अर्थात् द्वादश स्कन्द है, उसमें यह बात समझाई गई है कि मनुष्य को आचार और विचार दोनों को शुद्ध करने के लिए क्या करना चाहिए। इसके लिए वेदव्यास जी ने गायत्री की महिमा का गान किया है। उनका कथन है कि गायत्री के अभाव में न आचार शुद्ध हो सकता है और न विचार शुद्ध हो सकता है। गायत्री के विषय में देवी भागवत का कथन है ''गायन्ते त्रायते इति गायत्री'' जो अपने गायन करने वाले की रक्षा करे, उसे गायत्री कहते हैं। गायत्री को जो गाता है, सुमिरन करता है, जाप करता है, गायत्री उसकी रक्षा करती है। यह गायत्री कौन है? वही दुर्गा, वही भगवती, वही

जगदम्बा, वही आद्याशक्ति परब्रह्म स्वरूपिणी है। देवी भागवत में यह बताया गया है कि दुर्गा और गायत्री, ये दो नहीं हैं; गायत्री दुर्गा, गायत्री राधा, गायत्री उमा, ये दो नहीं हैं, एक के ही दो नाम हैं इसलिए गायत्री को पंचमुखी बताया गया है। जिन पाँच देवियों का एक दिन मैंने विवेचन किया था; वे गायत्री के पाँचों मुख हैं। गायत्री जब पराशक्ति के रूप में पूजी जाती हैं तो उसी का एक मुख राधा है, उसी का एक मुख दुर्गा है, उसी का एक मुख सरस्वती है, उसी का एक मुख सावित्री है और उसी का एक मुख लक्ष्मी है, ये पाँचों मुख गायत्री के ही हैं। उन पाँचों में जिसे एक सावित्री गायत्री कहते हैं, वह भी उसी का एक मन्त्र है और आद्यशक्ति भगवती जो जगदम्बा है वह पंचमुखी है,इस प्रकार से उस गायत्री की महत्ता गाई गई है और विभिन्न रूपों में उसके प्रयोग का विधान हैं। महाभारत में यह बात बताई गई है कि वेदव्यास भगवान् कृष्ण द्वैपायन ने पुराण और इतिहास की रचना क्यों की? कारण बताया गया कि वेद में स्त्री और शूद्र का अधिकार नहीं था। वे उसका अध्ययन नहीं कर सकते थे,इस कारण शूद्र और स्त्री के लिए उन्होंने इतिहास और पुराण की रचना की। यह बात सत्य नहीं क्योंकि देवी भागवत पुराण में ही देखते हैं कि इसके १२ स्कन्द गायत्री के मन्त्र, गायत्री की व्याहृतियाँ, गायत्री की महिमा, गायत्री का पूरा विवेचन, गायत्री कवच्च, गायत्री स्तुति, गायत्री के प्रयोग विधि से भरा पड़ा है।

यदि पुराण और इतिहास उन लोगों के लिए लिखे गए जिनका वेद में अधिकार नहीं माना जाता था फिर वे पुराण के द्वारा उन्हीं तत्त्वों को पढ़ते हैं, उन्हीं का अनुष्ठान करते हैं तो अधिकार-अनाधिकार की बात कहाँ रह जाती है? **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।** यह छन्द तुम या तो देवी भागवत में पढ़ लो या ऋग्वेद वा यजुर्वेद में पढ़ लो। जो व्यक्ति कहता है कि यह वेद मन्त्र है, तुम इसे नहीं पढ़ सकते, वेद मन्त्र तो नहीं पढ़ सकते लेकिन भागवत तो पढ़ सकते हैं। वेद व्यास जी ने कहा—हाँ! हम जो गायत्री जपते हैं, वह गायत्री भागवत वाली है या वेद वाली है, इससे क्या लेना-देना। मेरे कहने का अभिप्राय कि "खल तोष न्याय" एक सिद्धान्त है कि किसी की तुष्टि के लिए हम कहते हैं कि हम तो भागवत वाली गायत्री पढ़ते हैं, तुम्हारे वेद वाली गायत्री नहीं पढ़ते। प्रश्न होता है कि क्या भागवत वाली गायत्री पर हमारा अधिकार है? बोले हाँ, उसमें तो है। क्योंकि वेद व्यास जी ने लिखा है कि भागवत की रचना उन्होंने उन्हीं के लिए की है। पुराण और इतिहास उनके लिए लिखे गये हैं, मैं यह बात मानता नहीं हूँ। मैं इसलिए नहीं मानता क्योंकि हमारे

यहाँ शास्त्रो में यह बात बताई गई है कि इतिहास और पुराण वेद के अर्थों के विस्तार के लिए लिखे गये हैं। "इतिहास पुराणाभ्याम् वेदं उपवृहंयते" वेद का उपबृहयन माने विस्तार, व्याख्या के लिए इतिहास और पुराण लिखे गये हैं। वहाँ इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यदि कोई ऐसा मानता हो कि तुम्हारा वेद पर अधिकार नहीं है, यदि वेद पर अधिकार नहीं तो पुराण पर अधिकार है वा नहीं ? पुराण में भी मन्त्र वही है, मन्त्र में कोई अन्तर नहीं है। वही तीन व्याहृतियाँ हैं, वही भू भुव: स्व: है, सभी कुछ वही है। हम निरूक्त में पढ़ते हैं कि वेद के मन्त्र बड़े गूढ़ हैं, बड़े-२ विद्वान् उसके अर्थ करने में भूल कर जाते हैं। हमने उपनिषदों पर कमैंट्री की है, वह भी वेद का ही अंग है किन्तु हमने यह नहीं कहा कि यह बात मैं अन्तिम बार कह रहा हूँ और कोई कह भी नहीं सकता। हमसे पहले जिन्होंने कमेन्ट्री की है, उनका मैंने खण्डन किया, निराकरण किया और यह बताया कि इसमें ये त्रुटियाँ हैं। मैं यह भी साथ लिखा हूँ कि आने वाले लोग इस कमेन्ट्री में भी गलती बतायेंगे और वह दूसरी कमेन्ट्री बतायेंगे कि यह ठीक है। वेद का ज्ञान अनादि अनन्त है, वह भला एक की बुद्धि में कैसे समा सकता है ? अब तक कितनी व्याख्याएँ हो चुकी हैं और हो रही हैं तब भी वह पूरा नहीं हुआ। नित्य नई-२ व्याख्याएँ हो रही हैं। उपनिषदों पर, वेद शास्त्रों पर, गीता पर, वेदान्त पर, भगवद् गीता पर अब तक लगभग ५०० कमेंट्री हो चुकी हैं यानी एक श्लोक के ५०० अर्थ बताये जा चुके हैं, इति नहीं हुई। कितनी कमेंट्रियाँ ऐसी हैं जो अभी प्रकाश में नहीं आई, संग्रहालय में पड़ी हुई हैं। लोगों ने अपनी-२ भाषाओं में बहुत कमेंट्री कर रखी हैं।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि शास्त्र का जो अर्थ है, उसका जो विधान है, इसकी जो व्याख्या है, इसके विषय में कोई यह नहीं कह सकता कि इसकी इतनी ही व्याख्या है। देवी भागवत १२ स्कन्दों में १८ हज़ार श्लोकों से युक्त ग्रन्थ है, इसमें से कुछ श्लोक निकाल दिये गए हैं फिर भी इतना बड़ा ग्रन्थ हैं जिसकी व्याख्या १८ महीने क्या १८ वर्षों में करना कठिन हो जायेगा तो नौ दिन में इसकी सारी व्याख्या हम आप लोगों को कैसे बता दें ? जो मूल और आपके लिए उपयोगी बातें हैं, उनको अपने व्याख्यान में बताने की कोशिश की हैं। आज के व्याख्यान में इसका जो अन्तिम भाग द्वादश स्कन्द है, उसके विषय में बता रहा हूँ। द्वादश स्कन्द में भगवती गायत्री की महिमा का गान है। इसी देवी भागवत में यह बताया गया है कि सनातन धर्म में कोई वैष्णव नहीं है, कोई शैव नहीं है, कोई सौर्य नहीं है और कोई गाणपत्य नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति शाक्त है

क्योंकि वह शक्ति की उपासना करता है। यदि गम्भीरता से देखा जाये तो सही में किसी भी सम्प्रदाय में रहने वाला व्यक्ति गायत्री को अपनी माँ मानता है, वेद की माँ माने ज्ञान की माँ मानता है। वेद कोई व्यक्ति नहीं जो गायत्री से पैदा हो गया था! जब हम वेद माता गायत्री कहते हैं तो ऐसा अभिप्राय नहीं कि वेद कोई पुत्र था जो गायत्री माता से उत्पन्न हुआ। वेद ज्ञान है और ज्ञान की माँ गायत्री है और गायत्री क्या है? गायत्री है, स्तुति, उपासना और प्रार्थना, ये तीन बातें गायत्री में हैं। ज्ञान की स्तुति, उपासना और प्रार्थना ये तीनों ज्ञान की जननी हैं। जहाँ स्तुति नहीं, उपासना नहीं, प्रार्थना नहीं, वहाँ ज्ञान नहीं हो सकता, ज्ञान की प्राप्ति इन्हीं के द्वारा होती है। ऋषि लोग जब समाधि में जाते थे तो उसमें वे क्या करते थे? समाधि भी तो इन तीनों से युक्त है, उसमें हम परम तत्त्व का चिन्तन करते हैं।

स्तुति और प्रार्थना में अन्तर है। कभी-२ लोग स्तुति और प्रार्थना के अन्तर को नहीं समझते। प्रार्थना में माँग होती है, हम चाहते हैं कि हमें कुछ मिल जाये और स्तुति में माँग नहीं होती, उसमें भगवान् की महिमा का गान होता है। हम पहले परमात्मा की महिमा का गान करते हैं। जिसके सामने हम माँगने के लिए खड़े हैं, उसकी स्तुति गाते हैं, उसकी महिमा का गान करते हैं। महिमा का गान करते-२ हम उसके पास पहुँच जाते हैं। उपासना माने 'उप समीपे आसना' अर्थात् अपने इष्ट के नज़दीक जाना, नज़दीक बैठना। जिसकी महिमा हम गायेंगे, स्वभावत: उसमें हमारा मन लगेगा। यदि केवल रटी रटाई बात करेंगे, तब तो मन नहीं लगेगा। यदि हमने कुछ बातें याद कर ली हैं, जबान से वह बोलते जा रहे हैं और दिल दिमाग कहीं नाच रहा है, फिर उपासना होगी? उपासना नहीं होगी। सत्संग सुनने आये, बैठ गये, मन कहीं और लगा हुआ है तो कान में यहाँ सारी बातें पड़ती जायेंगी किन्तु समझ के नाम पर कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। यदि कोई पूछ ले कि आज क्या सुन कर आये तो कहेंगे बातें अच्छी लग रही थी परन्तु यह पता नहीं कि क्या कह रहे थे। कारण क्या? मन कहीं और लगा हुआ था। मन जब लगा हो तो एक-२ बात ग्रहण में आ जाये, समझ में आ जाये इसलिए हमारे यहाँ यह बताया गया कि जो स्तुति तुम्हारी दिनचर्या में आ जाती है, उसमें मन नहीं लगता। 'जय जगदीश हरे' बोल रहे हैं, मन इधर-उधर दौड़ रहा है। यही स्थिति हमारे मन्त्र जाप के समय भी होती है, मन्त्र याद हो गया है, माला चल रही है। कबीर कहते हैं—

माला तो कर में फिरे और जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुआ तो चहुँ दिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं॥

हाथ में माला फिर रही है और मुँह में जबान घूम रही है और मनिराम चारों ओर छलांगें लगा रहा है, इसको सुमिरन नहीं कहते, यह उपासना नहीं है। उपासना माने जब आपका मन अपने इष्ट के पास बैठ जाये। उपासना से पूर्व स्तुति है, स्तुति में अपने इष्ट की महिमा का गान करो, ध्यान करो, इष्ट की महिमा का चिन्तन करते समय तुम्हारा मन इष्ट के साथ जुड़ जायेगा, जहाँ मन जुड़ा वहीं पर तुम्हारी उपासना हो जायेगी। स्तुति से इष्ट का बोध होता है, उसकी महिमा का बोध होता है और फिर जब तुम्हारा मन उसके पास पहुँच जाता है तो उसे उपासना कहते हैं। जब उसके पास पहुँच गये तो माँगो अब कुछ, किस लिये आये हो? जब अपने बड़े के पास जाते हो तो किसी प्रयोजनवश ही व्यक्ति जाता है और कुछ न माँगना हो तो आशीर्वाद ही माँग लो। जब हम प्रभु की उपासना करेंगे, उनके पास जायेंगे, कुछ तो माँगेंगे ही, माँगने के लिए तो आये हैं। जब वहाँ कुछ माँगेंगे तो उसे कहते हैं प्रार्थना।

गायत्री मन्त्र में हमें तीनों बातें मिलेंगी, पहले स्तुति है जिसमें महिमा का गान है। स्तुति में क्या है—**ॐ भूर्भुवः स्वः**, इसका अभिप्राय ओंकार परमात्मा का नाम है, ''ओमित्येतद ब्रह्म'' है, ''ओंकारेवमिदं सर्वं'', ऐसा वेद कहता है कि जो कुछ तुम्हें दिखाई दे रहा है, सब ओंकार है, इसके सिवा कुछ नहीं। ''ओमित्येतद्'' ॐकार का उच्चारण करके जब तुम उसके साथ 'भूर्भुवः स्वः' कहते हो तो उसमें तीन बातें आती हैं। 'भू' शब्द का अभिप्राय यह पृथ्वी, 'भुवः' शब्द का अभिप्राय अन्तरिक्ष और 'स्वः' शब्द का अभिप्राय द्यु, जो सूर्य दिखाई दे रहा है। 'भू' शब्द का अभिप्राय सत्ता है, 'भू सत्तायाम'। व्याकरण की दृष्टि से भुवः शब्द का अभिप्राय प्रकाश वा चित्त है और 'स्वः' शब्द का अभिप्राय आनन्द है अर्थात् सत्-चित्त-आनन्द। 'भू' माने सत्, 'भुवः' चित्त और 'स्वः' माने आनन्द, दूसरे शब्दों में क्या कहेंगे ''सच्चिदानन्द''। **ॐ भूर्भुवः स्वः**-हे सच्चिदानन्द परमात्मा। इसका दूसरा अर्थ है; हे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक के निर्माता! इन तीनों अक्षरों के शास्त्रों में अनेकों प्रकार के अर्थ किये गये हैं और उपनिषदों में भी बड़ी महिमा गाई गई है। इसके विषय में जितनी गम्भीरता से जितनी भावना से इसको समझा जाये और इसको हृदय में धारण किया जाये, उतना इससे लाभ होता है। हमारे यहाँ मन्त्र जपने के साथ एक विधान दिया गया है—

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

(यो०द० १/२८)

जिस मन्त्र का आप जाप करो उसका अर्थ आपको जरूर आना चाहिए। यदि अर्थ नहीं आता, अर्थ की भावना नहीं है और आप मन्त्र जपते जा रहे हो, तो वही गति होगी जो अभी मैंने आप लोगों को बताया है। जब अर्थ ही मालूम नहीं तो मन अपने आप दौड़ेगा, मन कहाँ टिकेगा? इसलिए जो मन्त्र जपते हो उसका अर्थ समझो। अर्थहीन मन्त्र का जाप जापक को लाभ नहीं देता। वायबरेशन तो उससे होती है किन्तु लाभ नहीं देता, यथार्थ लाभ से आप वंचित रह जाते हैं इसलिए ॐ परमात्मा का नाम है। परमात्मा का नाम ॐ क्यों पड़ा? ''अवतु इति ॐ'', ॐ शब्द का अर्थ होता है अवतु। अवतु माने रक्षा करने वाला ''अवतु इति ॐ'' जो रक्षा करता है वह ॐ है, वह परमात्मा है। इस ॐ में भी अ, उ, म के अलग-२ अर्थ हैं 'अ' समस्त वर्णों का आधार है, समस्त अक्षरों का आधार है, इसलिए 'अ' को परम अक्षर कहते हैं इसलिए गीता के १०वें अध्याय में भगवान् ने बताया कि समस्त अक्षरों में अकार मैं हूँ क्योंकि अ के बिना कोई शब्द आप उच्चारण ही नहीं कर सकते। 'अ' को ही जब दो बार अ अ करते हैं तो 'आ' बन जाता है। जैसे 'अ' है उसी प्रकार से 'इ' है। 'इ' ईश्वरीय शक्ति का वाचक है, इसी रूप से 'उ' है, अ इ उ-इन तीन मात्राओं से ये सारी मात्रायें बनी हैं। अ इ उ, ये तीनों जड़ हैं, अनुस्वार हैं, वह सबका प्राण है। प्राण को खींचकर जब हम 'अ' का उच्चारण करते हैं तो अन्त में जाकर 'म' में ही इसका अन्त होता है। शास्त्रों में यह बात समझाई गई है कि अ-उ-म, ये तीन अक्षर हैं, यह परमात्मा की सृष्टि के वाचक हैं इनका अनन्त महिमामय अर्थ है इसलिए इसको एक शब्द में कहा जाये तो कहेंगे, परमात्मा। ॐ माने परमात्मा वा रक्षक। वह परमात्मा 'भूर्भुवः स्वः' सत् चित्त आनन्द स्वरूप है और पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यू का निर्माता है वा आधार है। 'ॐ भूर्भुवः स्वः' के साथ और भी व्याहृतियाँ हैं, प्राणायाम में सात व्याहृतियों का प्रयोग होता है ॐ भू, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ मह, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐसत्यं फिर जाकर **तत्सवितुर्वरेण्यं** का उच्चारण होता है। प्राणायाम के समय इस प्रकार सात व्याहृतियों का प्रयोग होता है, खैर यह अलग विषय सीखने का है, गुरुगम्य विषय है।

मैं आप लोगों को समझा रहा था कि अ, उ, म के साथ भू भुवः स्वः, इन तीनों व्याहृतियों का उच्चारण करके हम परमात्मा की अनन्त महिमा का अनुभव करें। वह सच्चिदानन्द, सर्वव्यापी परमात्मा जगत् का रक्षक-ॐ **तत्सवितुर्वरेण्यम्**। अब यहाँ 'तत्सवितु' माने वह सविता। यहाँ तत् शब्द नपुंसकलिंग है। हमारे यहाँ व्याकरण में तीन लिंग होते हैं—पुलिंग, स्त्रीलिंग

और नपुंसकलिंग। प्रत्येक व्याकरण में होते हैं, क्योंकि संस्कृत ही सबका आधार है। यहाँ पर तत् शब्द पुलिंग नहीं, नपुंसकलिंग है। वह ईश्वर का वाचक नहीं है क्योंकि ईश्वर तो पुलिंग है, तत् जो है वह नपुंसकलिंग है, ब्रह्म का वाचक है, ईश्वर का वाचक नहीं है। क्योंकि 'सत् चित्त आनन्द' जो है वह न पुलिंग है और न स्त्रीलिंग है; वह नपुंसकलिंग है, स्त्रीलिंग व पुलिंग से परे है। वह स्त्री भी है, पुरुष भी है, सब कुछ है। चित्त क्या है वह स्त्री भी है, पुरुष भी है। आनन्द क्या है वह भी ऐसे ही है। कहने का अभिप्राय कि जो परमात्मा, परब्रह्म पुरुषोत्तम है, वह ब्रह्म स्वयं में नपुंसकलिंग है इसलिए तत् शब्द का प्रयोग नपुंसकलिंग में होता है और वह ब्रह्म के लिए होता है। ' ॐ तत् सत् ब्रह्मणे नमः ' तत् शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिए है। सवितु के दो अर्थ होते हैं-एक उत्पन्न करने वाला 'सूयते सचराचर' जिससे यह सारा चराचर जगत् उत्पन्न होता है, दूसरा विस्तार करने वाला, जो सृष्टि का विस्तार, फैलाव करता है। 'तत्सवितुर्वरेण्यं', जो सृष्टि का निर्माता, सृष्टि का विस्तार करने वाला, जगत् को उत्पन्न करने वाला जो परमात्मा है, उसका हम वरण करते हैं। वरण करते माने क्या? वरेण्यं माने चयन करने योग्य। दुनिया में आपको यदि कोई कहे कि अपने आधार के लिए कोई वस्तु चुन लो तो किसे चुनोगे? चुनने के लिए तो तुम्हारा मन बहुत वस्तुओं को चुनेगा कि हम यह ले लें, अमुक वस्तु ले लें। क्या ये सब कुछ चुनने योग्य है? जीवन का लक्ष्य बनाने योग्य हैं? नहीं। धन जीवन का लक्ष्य बनाने योग्य है? नहीं है। परिवार है? नहीं है। शरीर है? नहीं है। यह तो मल-मूत्र का भण्डार है।

आचार्य शंकर से पूछा गया—''नरकस्य नरकं किम्'' नरक का भी जो नरक है वह क्या है? उन्होंने कहा—''स्व शरीरं'' अपना शरीर, इससे बड़ा नरक क्या हो सकता है! बाहर के नरक को तो देखा नहीं किन्तु इस नरक को तो तुम रोज़ देखते हो। प्रातः उठते ही नरक दिखाई देना शुरु हो जाता है। दुनिया में जिसे तुम गंदी वस्तु मानते हो, वह सब तुम्हारे अंदर भरा रहता है, यहीं से बाहर जाता है, कितना बड़ा नरक है। जिसको तुम दुनिया की सबसे गंदी वस्तु मानते हो, वह कहाँ से आता है? वह इसी शरीर की उपज है, जिस शरीर को तुम बहुत सुन्दर समझते हो। जो नरक को उत्पन्न करता है, गंदगी को पैदा करता है 'स्व शरीरं' माने मनुष्य का शरीर। जानवरों का शरीर उतना गंदा नहीं होता यह जानते हो न? जानवरों के शरीर से जो गन्दगी निकलती है, वह इतनी गन्दी नहीं होती, जितनी मनुष्य शरीर से निकलने वाली गन्दगी होती है यह तो आप लोग जानते हो इसलिए यह नरक का भी नरक है यह वरण करने योग्य है? फिर वरण करने

योग्य क्या है ? वरण करने योग्य संसार में केवल एक परमात्मा है। वेद कहता है कि उस परमात्मा से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है, उससे परे और कुछ नहीं है—

पुरुषात् न पराकिंचित सा काष्ठा सा परागति।

पुरुष से श्रेष्ठ और कुछ नहीं, वहीं काष्ठा है, वहीं श्रेष्ठता की सीमा है, वही परम गति है इसलिए वही 'वरेण्यं' है, वरण करने योग्य वही है, चुनने योग्य वही है। कभी-२ लोग पूछते हैं हम अपना इष्ट किसे बनायें ? जानते हो, इष्ट माने क्या होता है ? जिसको हम प्राप्त करना चाहते हैं, जैसा हम बनना चाहते हैं, उसको इष्ट कहते हैं। जीवन में एक इष्ट होना चाहिए माने किसी के जैसा बनने की तो सोचो। अपने जीवन में जिसके जैसा बनना चाहते हो तुम, जैसा होना चाहते हो तुम, तदनुसार इष्ट-चयन किया जाता है। इष्ट में परमात्मा के ही अनेक रूप आते हैं, कोई राम को इष्ट मानता है, कोई कृष्ण को, कोई शिव को और कोई दुर्गा को इष्ट मानता है, किसी एक को इष्ट मान लें। सनातन धर्म में सबको इष्ट माना गया, परमात्मा को इष्ट मानो तो सब परमात्मा के ही अवतार हैं, सब इष्ट हो जाते हैं। मैं तो लोगों को कहा करता हूँ कि राम की नीति, कृष्ण की प्रीति, दुर्गा की शक्ति और शिव का त्याग, ये चारों यदि मनुष्य में आ जायें तो मनुष्य पूर्ण हो जाये। किसी अंग को अपना लो, किसी में मन लगा लो, किसी को पाने की चाह बना लो, वही तुम्हारा इष्ट हो जायेगा। वेद कहता है वरेण्यं तो सविता है। सविता माने निर्माता, जगत् का विस्तार करने वाला, जगत् को उत्पन्न करने वाला जो ब्रह्म है, वही तुम्हारे लिए वरेण्य है और कोई वरेण्य नहीं। कहा—जगत को उत्पन्न करने वाला कौन ? कहा—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि।
जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।

इसी मन्त्र के ऊपर व्यासदेव जी ने एक सूत्र रचा है अपने ब्रह्मसूत्र में 'जन्माद्यस्य यतः', जिससे जन्मादि हुआ करते हैं, वही परमात्मा है। उन्होंने दर्शन शास्त्र का पहला सूत्र बनाया 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' अब हम ब्रह्म की जिज्ञासा करते हैं, ब्रह्म को जानने का उपक्रम करते हैं। कहा—ब्रह्म कौन है ? 'जन्माद्यस्य' जिससे सृष्टि का आविर्भाव, पालन और प्रलय होता है, उसको ब्रह्म कहते हैं और जिससे पालन, प्रलय और उत्पत्ति होती है, उसी को सविता कहते हैं इसलिए 'तत्सवितुर्वरेण्यं' जो सावित्री है, जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, जो हम सबका रक्षक है, जो सर्वव्यापी है, वही 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं' वही परमात्मा हमारे लिए वरेण्य है, वरेण्य माने चुनने योग्य, उसी को हम वरण करें, उसी को

हम चुनें। जो वरेण्य होता है वही शरण्य होता है। हम जिसको वरण करते हैं उसी की शरण हो जाते हैं। वरण का अर्थ जानते हो न, जैसे पत्नी पति को वरण करती है। इसका अभिप्राय वह उसकी हो गई। इसी प्रकार स्वयंवर होता था, स्वयंवर माने स्वयं वरण करना, चुनना, Select करना। You can select according to your own choice. तुम अपनी रुचि के अनुसार उसे select करो, दुनिया में तुम किसको पाना चाहते हो? वेद कहता है कि वरण करने योग्य वही है जिससे यह सारी सृष्टि हुई है। जो सृष्टि का पालन करता है, जो सृष्टि का आधार है, उससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है इसलिए वही वरण करने योग्य है इसलिए वेद कहता है 'तत्सवितुर्वरेण्यं' वह सविता कैसा है जिसको तुम वरण कर रहे हो? आगे उसके विषय में कहते हैं 'भर्गो देवस्य' भर्गो–वह प्रकाशकों का भी प्रकाशक है। देव किसे कहते हैं? दिवि प्रकाशने, जो प्रकाश करता है, उसे देव कहते हैं। हमारी इन्द्रियाँ हमें संसार का बोध करवाती हैं, प्रकाश देती हैं, इसलिए इन्द्रियों को भी देव कहते हैं। हमारा मन इन्द्रियों को प्रकाशित करता है इसलिए मन को भी देव कहते हैं, हमारा अहं मन को प्रकाशित करता है इसलिए अहं को भी देव कहते हैं, हमारी बुद्धि अहं को प्रकाशित करती है इसलिए बुद्धि को भी देव कहते हैं और हमारी आत्मा बुद्धि को भी प्रकाशित करती है इसलिए आत्मा को भी देव कहते हैं किन्तु हमारी आत्मा को भी कोई प्रकाशित करने वाला है, वह कौन है? जो इस आत्मा को प्रकाशित करे, उसको कहते हैं परमात्मा! 'भर्गो देवस्य' उस परमात्मा के परम तेजस्व स्वरूप को, उस परमात्मा के परम प्रकाशक स्वरूप को भर्गो कहते हैं, वह सविता परम प्रकाशक रूप है, वह प्रकाशकों का भी प्रकाशक है। तुलसीदास जी ने इस मन्त्र का अनुवाद अपनी रामायण में किया है—

विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक ते एक सचेता॥

(रा० १/११७-५)

विषय, संसार के पदार्थ और विषयों को प्रकाशित कौन करता है अर्थात् किससे आपको बोध होता है? सुगन्ध है वा दुर्गन्ध है, किससे आपको बोध होता है? मीठा है वा कड़वा है, किससे आपको बोध होता है? कोमल है वा कठोर है, किससे बोध होता है? शीतल है कि गरम है, किससे बोध होता है? सुन्दर है वा असुन्दर है, किससे बोध होता है? मधुर है वा कटु है, किससे बोध होता है? इन्द्रियों से ही बोध होता है। इन रसों का प्रकाशक कौन है? इन्द्रियाँ! विषय, रस और इन रसों का प्रकाशक इन्द्रियाँ, यदि इन्द्रियाँ न हों तो आपको कुछ पता न

चले। यदि आदमी बहरा हो तो उसको क्या पता यहाँ पर व्याख्या क्या हो रही है, यदि आँख नहीं है तो बोलने वाला कौन है, उसे क्या पता? इसी प्रकार से इन्द्रियों के द्वारा ही हमें विषयों का प्रकाश मिलता है, विषयों का अस्तित्व जानने में आता है इसलिए इन्द्रियाँ विषयों की प्रकाशिका हैं। 'विषय करन' इन्द्रियों का प्रकाशक कौन है? इन्द्रियों का देवता कौन है? जैसे नेत्र का देवता सूर्य है, यदि सूर्य न हो तो क्या नेत्र रूप को देख सकता है? नहीं। आप बिजली जलाते हैं, यह बिजली सूर्य का ही अंश है। अग्नि सूर्य के अंश से पैदा हुई है और विद्युत शक्ति भी सूर्य के अंश से ही पैदा हुई है। जब कहीं भी प्रकाश मिलेगा तो वह सूर्य का ही अंश होगा क्योंकि सूर्य नेत्र का देवता है! प्रकाश की उपस्थिति में ही नेत्र रूप को देख सकता है, अन्यथा नहीं। इसी रूप से दिशाओं के होने पर ही श्रवण शब्द सुन सकता है, इसी रूप से वायु के होने पर ही यह त्वचा स्पर्श कर सकती है, रस के अथवा जल के होने पर ही जिह्वा टेस्ट कर सकती है, पृथ्वी के होने पर ही नासिका सुगन्ध सूंघ सकती है, यह सभी देवताओं पर ही अवलम्बित है। इनको इनका देवता कहते हैं। देवता माने करण अर्थात् इन्द्रियों को प्रकाशित करने वाला जो देवता है, ये समस्त देवता हों किन्तु आत्माराम चले जायें तो इन्द्रियाँ बड़ी अच्छी थीं, सुन्दर थीं, बड़ी-२ आँख थी, सूर्य भी था, रूप भी सुन्दर था किन्तु राम नाम सत् हो गया। फिर क्या होगा? ये देवता काम आयेंगे? देवता इन्द्रियों को गति दे सकते हैं? नहीं दे सकते तो जीव देवताओं के ऊपर है, बिना जीव के देवता कुछ नहीं कर सकते—

विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक ते एक सचेता॥

(रा० १/११७-५)

ये एक से एक सचेत हैं। जीव से देवता, देवता से इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से विषय, यह क्रम है। लेकिन—

सब कर परम प्रकासक जोई।

इन सबका जो परम प्रकाशक, जीव का जो जीवन है, वह कौन है?

प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।

प्राण का प्राण, जीव का जीव, सुख का जो सुख है, वह राम है—

सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥

(रा० १/११७-६)

जो सबका परम प्रकाशक है, वही राम है, वही परमात्मा है, वह देवताओं का भी प्रकाशक परम प्रकाश स्वरूप है। वेद कहता है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्यतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

(श्वेता० ६/१४)

उस परमात्मा को सूर्य प्रकाशित नहीं करता, ये तारागण और चन्द्र प्रकाशित नहीं करते, उसको विद्युत शक्ति भी प्रकाशित नहीं करते, इस बपुरे अग्नि की क्या गति है, यह तो पराश्रित है—

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं।

(श्वेता० ६/१४)

उसी के प्रकाश से सारे प्रकाशित हो रहे हैं क्योंकि—

तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।

उसी का प्रकाश सर्व रूपों में प्रकाशित हो रहा है इसलिए गीता में भी भगवान् ने कहा—

ज्योतिषामपि तज्जयोतिस्तमसः परमुच्यते।

(गीता १३/१७)

जो ज्योतियों का भी ज्योति है, वह परमात्मा है। जितनी संसार में ज्योतियाँ हैं, इन सबकी ज्योति वह है, वह प्रकाशपुंज है, इसलिए उसे भर्गो कहते हैं। जो परम प्रकाशक देव है, उस देव का 'देवस्य' यहाँ तक हुई स्तुति। स्तुति को तो मैंने थोड़े में ही व्याख्या कर दी। एक-२ अक्षर की व्याख्या बहुत लम्बी है। आज अन्तिम दिन है, समय कम है, इसी समय में सारा समझाना है। इतना आप सूक्ष्म में समझ लें, गायत्री का जाप करते समय आप इतना ध्यान रखें कि परम प्रकाशक स्वरूप, सृष्टि का मूल आधार, जो सच्चिदानन्दमय, सर्व रक्षक, सर्वव्यापी परमात्मा है, उसका मैं ध्यान करता हूँ, यह उसका अर्थ है। गायत्री में तीन चरण हैं—तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्। गायत्री छन्द २४ अक्षर का होता है लेकिन इस गायत्री में २४ अक्षर नहीं है, २३ अक्षर ही हैं, एक अक्षर पहले चरण में ही कम है इसलिए है तो शब्द 'तत्सवितुर्वरेण्यं' लेकिन वरेण्यं न बोलकर वरेण्यं का अर्थ है वरण करने योग्य लेकिन यह सात अक्षर हो जाता है। 'तत्सवितुर्वरेण्यं' यह सात अक्षर हैं, आठ अक्षर नहीं बनता। गायत्री मन्त्र २४ अक्षर का होना चाहिए, २४ अक्षर के तीन चरण होते हैं, एक-२ चरण आठ अक्षर का होना चाहिए तभी २४ अक्षर बनेंगे इसलिए इसमें एक अक्षर कम होने के नाते वरेण्यं न बोल करके वरेण्यं बोलते हैं 'तत्सवितुर्वरेण्यं' बोलते हैं,

यह क्यों बोलते हैं? इसकी लम्बी व्याख्या है, अर्थ दोनों का एक ही होता है किन्तु मात्रा पूर्ति के लिए वरेण्यं बोलते हैं। वह सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वव्यापी, सर्वनियन्ता जो परमात्मा है, उसको हम वरण करते हैं क्योंकि वही वरण करने योग्य है। उसके परम प्रकाशमयस्वरूप का, यहाँ पर षष्ठी है 'देवस्य धीमहि' माने परम प्रकाशमय देव का हम ध्यान करते हैं। पहले तो स्तुति है—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं जो यहाँ तक हो जाती है, दूसरे पाद में 'भर्गो देवस्य धीमहि' भर्गो और देवस्य भी उसकी स्तुति है। भर्गो माने प्रकाश स्वरूप देव का 'धीमहि' हम ध्यान करते हैं। ध्यान क्या है? उपासना है। पहले क्या थी? स्तुति! ध्यान में उपासना आती है। ध्यान किसे कहते हैं? जब तुम अपने मन को एक देव में लगा दो। 'धेय' धातु है जिसका अर्थ होता है चिन्तन, जिससे ध्यान शब्द बनता है। कुछ विद्वानों ने कहा है कि 'धी' धातु से ही 'धेय' बनता है। जिसको धारण किया जाये और जिसका ध्यान किया जाये, दोनों उसके अर्थ हैं। जिसको धारण करोगे उसी का ध्यान होगा, जब धारण ही नहीं करोगे तो ध्यान क्या होगा? इसलिए पहले उसे धारण करना होता है, अपने आप में ग्रहण करना होता है। ध्यान करने का अभिप्राय होता है कि तुम अपने चित्त को उसमें जोड़ो वा लगाओ। ध्यान का यह क्रप बताया गया है—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

(यो०सू० ३/२)

निरन्तर रूप से तुम्हारी वृत्ति उसमें लगी रहे, इधर-उधर न हो। संयोगवश, संस्कारवश यदि तुम्हारा ध्यान इधर-उधर जाये तो तुरन्त अपने ध्यान को उसमें लगाओ—

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।

(यो०सू० १/१३)

ध्यान की बार-२ क्रिया का नाम अभ्यास है। अभ्यास किसे कहते हैं? किसी तत्त्व को बार-२ याद करते रहना, चिन्तन करते रहना, मन इधर गया तुरन्त उठाकर वहाँ ले आओ। जब बार-२ मन को एक स्थान पर लगाते जायेंगे तो उसका नाम है अभ्यास, यह बात याद रखो। 'धीमहि' का अभिप्राय यही है कि हम उसका ध्यान करते हैं, उस परम प्रकाशक स्वरूप भगवान् में हम अपने चित्त को लगाते हैं, ध्यान करते हैं, याद करते हैं। जब तुम उसका ध्यान करोगे तो तुम उसके समीप पहुँच जाओगे। तन का संग नहीं होता, संग होता है मन का। शरीर की दूरी, दूरी नहीं है दूरी और निकट का सान्निध्य मन से होता है—

तन मिलनो नहिं मिलन है, मिलनो है मन माहिं।
कमल कीच नहिं मिल सके, ससि चकोर मिल जाहिं॥

कवि कहता है कि शरीर का मिलना, मिलना नहीं होता। जानते हो, यात्रा में अथवा किसी सवारी में, जहाज में दो व्यक्ति सट कर बैठे होते हैं, २४ घण्टे की यात्रा पूर्ण होने के पश्चात् एक-दूसरे को मालूम नहीं होता कि कहाँ गये। पास रहने से किसी का मिलना नहीं होता, एकता तो मन से होती है। उस कवि ने लिखा है कि कमल कीचड़ में होता है, उसमें पलता है किन्तु उससे अलग रहता है, चकोर पृथ्वी पर रहता है और चन्द्रमा आकाश में रहता है किन्तु जहाँ चन्द्रमा उदय हुआ तो चकोर उस पर अपनी आँख टिका लेता है। जैसे-२ चन्द्रमा आता हैं चकोर की आँख उसी पर लगी रहती है। जब चन्द्रमा अस्त होता हैं तब चकोर की आँख वहाँ से हटती है। इसलिए कवि ने कहा—

जल में बसे कुमुदिनि चंदा बसे आकास।
जाकर जासो लग्यो सो है ताको पास॥

जिसका जिसमें मन लग गया, वह उसी के पास रहता है। यदि मन नहीं लगा तो तन लगने से क्या लाभ ? तन का लगना कुछ अर्थ नहीं रखता, यह बात याद रखो इसलिए शास्त्रकारों ने बताया कि तुम अपने मन को परमात्मा में लगाओ, फिर तुम परमात्मा के पास पहुँच जाओगे। इसको कहते हैं उपासना-उप माने समीप, आसना माने बैठना। उसके निकट बैठना, उसके साथ एक हो जाना, यह उपासना है। 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं' यह स्तुति है और 'भर्गो देवस्य धीमहि' यह उपासना है। इस उपासना के पश्चात् जब हम परमात्मा के पास पहुँच गये तो उससे हम कुछ मांगेंगे ? यदि मांगने की आवश्यकता न होती तो हमें क्या गर्ज पड़ीं थी उसकी उपासना करने की। एक कवि भगवान् से प्रार्थना करता रहा। भगवान् कहते हैं कि यदि तुम अपने कर्म अच्छे बना लो तो तुम तर जाओगे। उसने कहा, मेरी एक बात सुन ले—

एक बात एकान्त में सुनिये श्री भगवान।
जो मोहि तारे कर्म निज तेरो क्या अहसान॥

यदि मेरे अपने कर्म ही मुझे तारेंगे तो भगवन्! आपकी क्या जरूरत है ? हम तो तुम्हारे पास कुछ माँगने आये हैं। तुम्हें माँगना क्या है ? माँगने की जरूरत हुई तभी यहाँ तक पहुँचे, यदि माँगना कुछ नहीं है तो भगवान् को गर्ज होगा तो स्वयं चलकर आयेगा। बच्चा जब भूखा होता है तो माँ की खोज करता है, जब बच्चा

भूखा नहीं होता तो माँ की खोज नहीं करता बल्कि माँ उसकी खोज करती है, कहाँ चला गया? इसी रूप से तुम्हें यदि कुछ चाहिए तो तुम परमात्मा को पुकारो, यदि कुछ नहीं चाहिए तो परमात्मा को गर्ज होगी तो वह अपने आप तुम्हें पुकारता रहेगा। स्वामी राम अपने एक शे'र में कहते हैं। अब तो मुझे कुछ नहीं चाहिए इसलिए—

कर ते जपु न मन जपु मुख ते जपु न राम।

अब मैं न हाथ से जपता हूँ, न मुँह से जपता हूँ और न मन से जपता हूँ, मैं जपता ही नहीं। क्यों नहीं जपते? उसकी जरूरत नहीं—

राम सदा मुझको जपे मैं पाऊँ विश्राम।

कहते हैं अब मुझे प्रभु याद करते हैं, मैं प्रभु को याद नहीं करता। यह भाव की बात आप लोगों को समझा रहा था। अपनी कमी को देखकर ही तो प्रभु की महिमा गा रहे थे, कमी को देखकर ही प्रकाशमय प्रभु का चिन्तन किया, इसलिए कि हमारे अन्दर जो अन्धकार है, उसे वे दूर करें। तेजोऽसि, तेजोदेह, हे परमात्मा! आप तेजस् स्वरूप हैं हमें तेज दो, यही तो हमारी चाह है। जब हम परमात्मा के निकट पहुँच गये 'भर्गो देवस्य धीमहि' तब उससे माँगते हैं। क्या माँगते हैं? 'धियो यो नः प्रचोदयात्' हम सब की बुद्धियों को तू प्रेरित कर। यहाँ एक बात याद रखना, कुछ लोग शायद न समझते हों कि गायत्री मन्त्र सामूहिक प्रार्थना है, यह व्यक्तिगत प्रार्थना नहीं है। व्यक्ति कल्याण के लिए प्रार्थना नहीं है, इसमें शब्द जो है वह 'नः' है। नः माने हम सब, नः बहुवचन है एक वचन नहीं है। 'यो नः प्रचोदयात्' हम सब की बुद्धियों को प्रेरित कर। अभी हमारी बुद्धि किससे प्रेरित हो रही है? काम से, क्रोध से, लोभ से, मोह से, चाह से, अभी तो अनेक प्रकार की वासनाएं हमारी बुद्धि को प्रेरित कर रही हैं, अभी दुनिया का वैभव हमारी बुद्धि को प्रेरित कर रहा है, लेकिन हे परमात्मा! अब तू हमारी बुद्धि को प्रेरित कर। इस प्रार्थना के साथ गायत्री मन्त्र पूरा होता है।

अब इसमें पराशक्ति का बीज मन्त्र प्रणव है, यह भी देवी भगावत में बताया गया। देवता पूछते हैं कि भगवती का बीज मन्त्र क्या है? बताते हैं ॐ। ॐ मूल मन्त्र है। ॐ शब्द का अभिप्राय परमात्मा की दिव्य चिन्मय रक्षिका शक्ति है। परमात्मा की पराशक्ति प्रकाश स्वरूपा है, वह जगत् की सृष्टिकर्तृ और संहारकारिणी है, इसलिए पराशक्ति से हम प्रार्थना करते हैं। वेद में यह भी प्रश्न आया है, देवता लोग भगवती से पूछते हैं कि तू कहाँ निवास करती है? वह कहती है कि मैं प्रत्येक जीव के बुद्धि रूपी गुहा में रहती हूँ। लोग भगवती को

गुहा निवासिनी कहते हैं। भगवती कहाँ रहती है? गुफा में। किस गुफा में रहती है? वेद में वह बता रही हैं कि मैं बुद्धि रूपी गुफा में रहती हूँ। लोग कहते हैं कि बुद्धि रूपी गुफा में हो या न हो किन्तु वैष्णव देवी की गुफा में तो जरूर है। वहाँ जरूर जाना है क्योंकि अपनी बुद्धि रूपी गुफा में प्रवेश करने की योग्यता तो है नहीं। मैं यह नहीं कहता कि वैष्णव माता के दर्शन करने नहीं जाना चाहिए, वह तो श्रद्धा की बात है किन्तु यह सही बात है कि भगवती बुद्धि रूपी गुफा में निवास करती है। वह स्वयं बुद्धि स्वरूपा है—

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धि रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

वह पराशक्ति बुद्धिस्वरूपा सबके मस्तिष्क में निवास करती है, हम उससे प्रार्थना करते हैं, तू स्वयं बुद्धि स्वरूपा है इसलिए तू हमारी बुद्धि को अपने द्वारा प्रेरित कर। अभी जो बुद्धि संसार में भटक रही है, विषयों द्वारा जो प्रेरित हो रही है, उससे हमारा जीवन छिन्न-भिन्न हो रहा है। हे भगवती, हे महामाया, हे जगदम्बा! हमारी बुद्धियों को तू प्रेरित कर। गायत्री मन्त्र भगवती महामाया की उपासना का मन्त्र है। अब आप इसमें एक और बात समझें, गायत्री को ब्रह्म गायत्री कहते हैं। ब्रह्म माने ज्ञान, ज्ञान परमात्मा की महिमा गाने वाला छन्द है। ब्रह्म गायत्री वह छन्द है जो ब्रह्म परमात्मा की महिमा का गान करता है। परमात्मा की महिमा का नाम ही पराशक्ति है, भगवान् की महिमा का नाम ही भगवती है, इसमें हम भगवान् की महिमा का गान करते हैं, उसकी उपासना करते हैं।

एक बात और याद रखना हमारे यहाँ सनातन धर्म में कोई भी भगवान् से रोटी नहीं माँगता। वैदिक ऋषि कहता है—तू रोटी न माँग, आज की रोटी मिल गई तो कल को पुनः माँगनी पड़ेगी इसलिए तू बुद्धि माँग। यदि तुम्हारे पास बुद्धि है तो तू अनेकों को रोटियाँ खिला देगा और स्वयं भी खा लेगा। यदि बुद्धि का दिवाला निकला है तो तुम अपनी रोटी भी नहीं बचा पाओगे, दूसरे को क्या दोगे? इसलिए वैदिक धर्म में परमात्मा से बुद्धि की याचना की गई है और हम उससे कुछ नहीं माँगते। बुद्धि क्यों माँगते हैं? हमारे जीवन का मूल आधार बुद्धि है। एक बात याद रखो, जो बात गायत्री मन्त्र में है, वही बात गीता में है। गीता-गायत्री ऐसा हमारे यहाँ कहते हैं। वेदव्यास जी ने लिखा है—

गीता गंगाश्च गायत्री सीता सत्या सरस्वती।

गीता, गंगा, गायत्री, इन तीनों की जो महिमा है वह इसलिए है कि गंगा में स्नान

करने से बुद्धि निर्मल होती है, गीता का अध्ययन करने से बुद्धि निर्मल होती है और गायत्री की प्रार्थना करने से बुद्धि प्राप्त होती है। बुद्धि की उपासना में इन तीनों का प्रयोग है। गीता का अर्जुन भी भगवान् से बुद्धि माँगता है और कुछ नहीं माँगता—

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।

(गीता २/७)

''हे प्रभो! मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे उपदेश दीजिए'', अर्जुन बुद्धि माँग रहा है। चाहे आप कहो 'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' और चाहे आप कहो 'धियो यो नः प्रचोदयात्', दोनों का अर्थ एक ही है, यह बात याद रखना। जैसे गीता का बीज मन्त्र 'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' है, वैसे ही गायत्री का बीज मन्त्र 'धियो यो नः प्रचोदयात्' है, दोनों का अर्थ एक ही है इसलिए गीता, गंगा, गायत्री, इन तीनों का एक ही महत्व है क्योंकि इन तीनों का बुद्धि से सीधा सम्बन्ध है। हमारे यहाँ वेद में गंगा पता है किसे कहते हैं? सूर्य की किरणों को। सूर्य की किरणें प्रवाहित हो रही हैं, इनका नाम गंगा है। यह त्रिपथगा है-यह भू को, अन्तरिक्ष को और द्यौ लोक को प्रकाशित करती है। यह न समझना कि जो सूर्य का प्रकाश हमारी ओर आ रहा है इतना ही है, जितना प्रकाश हमारी ओर आ रहा है उतना ही प्रकाश अन्य दिशाओं में भी जा रहा है। सूर्य के मुँह और पीठ नहीं है, वह तो सर्वत्र एक ही दृष्टि से देख रहा है। हमारी आँखें इधर देखती हैं तो उधर नहीं देख सकती, ऐसी कल्पना सूर्य में नहीं है कि सूर्य की किरणें इधर देख रही हैं तो ऊपर नहीं देख सकती। वेद कहता है कि सूर्य की आधी किरणें अन्तरिक्ष को प्रकाशित कर रही हैं और उसका कुछ अंश पृथ्वी को प्रकाशित कर रहा है, केवल पृथ्वी को ही सूर्य प्रकाशित नहीं कर रहा है, अपने सभी ग्रहों को सूर्य प्रकाशित कर रहा है। आपने पढ़ा होगा कि सौर्य मण्डल अपने पूरे मण्डल को प्रकाशित करता है, इसी रूप से पृथ्वी और अन्तरिक्ष के मण्डल को ही प्रकाशित नहीं करता, द्यौ लोक जो उससे ऊपर है उसको भी प्रकाशित करता है, इसलिए सूर्य की किरणें ऊपर भी जाती हैं, मध्य में भी हैं और नीचे भी आती हैं इसलिए गंगा को त्रिपथगामिनी कहते हैं। सूर्य की किरणें प्रकाश स्वरूप हैं और यही हमारे ज्ञान और जीवन का स्रोत भी हैं, इसलिए गंगा को जीवनदात्री, जीवनी स्वरूपा और जीवनी शक्ति कहते हैं। हमारे यहाँ वेद और शास्त्रों में, गीता, गंगा, गायत्री का समान स्थान है। यह नहीं कि सूर्य की किरणें रूपी गंगा का ही महत्त्व है, जो गंगा बहती है उसका महत्त्व कम है, ऐसी बात नहीं है। ऋषियों ने उसके तट पर तपस्या करके उसका

जलपान करके स्वस्थ बुद्धि, स्वस्थ आयु प्राप्त की है। आज भी बड़े-२ मनीषी और बुद्धिमान ऋषि गंगा के तट पर निवास करते हैं। गंगा के जल में शक्ति है कि आप की बुद्धि को पवित्र कर दे। आजकल के वैज्ञानिकों ने भी उसका अनुसंधान करके देखा कि गंगा के जल में बैक्टीरिया नहीं होते। गंगा का जल आप ले आइये, उसको १० वर्ष तक रख लीजिए, वह खराब नहीं होगा और न ही उसमें फंगस लगेगा। आप २०-२५ वर्षों तक रख लीजिए, गंगा के जल में किसी प्रकार की विकृति नहीं आती। क्यों नहीं आती? वैज्ञानिक कहते हैं कि इसमें अवश्य ही कोई उत्तम रासायनिक तत्त्व है। उसी को हम भगवान् कहते हैं और उसी को हम देवता कहते हैं। देवता माने दिव्य शक्ति, वह दिव्यशक्ति चाहे रासायनिक तत्त्वों से आये, चाहे आकाश से अवतरित हो, इससे क्या लेना-देना, मूल तो उसका वही है। गीता, गंगा, गायत्री और इन तीनों की जो इतनी महत्ता हैं वह इसलिए है कि वह बुद्धिवर्द्धक है, बुद्धि प्रदाता है। वैदिक धर्म में हम परमात्मा से बुद्धि की याचना करते हैं-'धियो यो नः प्रचोदयात्', यह गायत्री का अर्थ है।

इसका पहला चरण व्याहृतियों सहित स्तुति है। 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं' यहाँ तक स्तुति है 'भर्गो देवस्य धीमहि' यह उपासना है और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' यह प्रार्थना है। इस प्रार्थना में ही वेद का बीज निहित हैं। जब हम प्रभु से प्रार्थना करेंगे उसके साथ एक हो करके तभी तो ज्ञान का उदय होगा, तभी ज्ञान का जन्म होगा। ज्ञान कहाँ से उदय होगा? स्तुति से, उपासना से और प्रार्थना से, तभी तो गायत्री को वेद की माँ कहा जाता है। गायत्री वेद की माता इसलिए है कि यहीं से ज्ञान का उदय होता है। आपमें शुद्ध ज्ञान का प्रकाश तभी होगा जब आप परमात्मा के साथ ध्यान के द्वारा एक होंगे और अपने अहं को उसमें लय करके जब उसकी प्रार्थना करेंगे तभी तो आपमें ज्ञान का प्रकाश होगा। वही ज्ञान वेद कहलाता है, ज्ञान अपौरुषेय होता है, वह आपके प्रयत्न का परिणाम नहीं है, वह भगवद् प्रदत्त ज्ञान होता है। याचना से जो आपको मिल रहा है, वह परिश्रम का परिणाम है? नहीं, वह भगवद् कृपा का परिणाम है। वेद की माँ गायत्री है, ज्ञान की माँ गायत्री है, वह ज्ञान अपौरुषेय है और वही ज्ञान आपके जीवन का मूल आधार है, जीवन का निर्माता है और जीवन को उन्नत करता हुआ आपको पूर्णत्व तक पहुँचाता है इसलिए देवी भागवत का अन्तिम भाग देवी गायत्री के रूप में परिणत है, इसमें गायत्री मन्त्र की बड़ी महिमा गाई गई है और इसमें भिन्न-२ विधि का वर्णन किया गया है।

जो नित्यप्रति सूर्य उदय से पूर्व गायत्री की एक माला जपता हैं, वह समस्त रोगों से विमुक्त हो जाता है, उसकी बुद्धि को प्रकाश मिलता है। जो सूर्य उदय के साथ ही एक माला गायत्री मन्त्र का हवन करता हैं, वह शुद्ध स्वास्थ्य प्राप्त करता है।

हवन के साथ स्वास्थ्य कैसे मिलता हैं आपको एक छोटी सी बात बताऊँ। लोगों को मिर्चें खाते देखा होगा, लोग मिर्च उठाते हैं मुँह में चबा कर अन्दर फेंक देते हैं। बगल में बैठा यदि कोई मिर्च खा रहा हो तो आपको कोई तकलीफ होगी? बिल्कुल नहीं। यदि कोई ऐसा अकल वाला आ जाये कि एक मिर्च उठा कर हवन कुण्ड की जलती आग में डाल दे तो क्या अपन सभी वहाँ बैंठे रहेंगे? नहीं, बैठना मुश्किल हो जायेगा। आँख, नाक, मुँह से पानी बहना शुरु हो जायेगा। वही एक मिर्च बगल में बैठे हुए व्यक्ति के खाने पर आपको कोई तकलीफ नहीं दिया लेकिन वही मिर्च यदि आग में डाल दी जाये तो सभी को तकलीफ देगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अग्नि में पड़ते ही उसकी अनन्त गुणा शक्ति बढ़ जाती है, उसका प्रत्येक अवयव जब अग्नि में खण्डित होता है, टूटता है तो अपनी शक्ति को अनन्त गुणा करके फैला देता हैं इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी आँख बन्द करता है और उससे दु:खी होता है। जो बात मिर्च के साथ है वही बात घी के साथ है, सभी वस्तुओं के साथ है। जो-जो वस्तु अग्नि में डालोगे वह अनन्त गुणा होकर Space में फैल जायेगी। जो भी पदार्थ आप अग्नि में डालोगे वह अनन्त गुणा होकर Space में फैल जायेगा और उसका प्रभाव जितने भी लोग वहाँ बैठे होंगे उनके श्वास के द्वारा अन्दर जाकर ऑक्सीज़न से मिल करके आपके स्वास्थ्य के साथ एक हो जायेगा, चाहे अच्छा प्रभाव हो या बुरा हो। हमारे यहाँ घी को अमृत कहा गया है। देवी भागवत में मधु का बड़ा विवेचन है। मधु माने केवल शहद नहीं। वहाँ मधु शब्द का अर्थ गौ दुग्ध, गौ दधि और गौ घृत है।

देवी भागवत में बताया गया कि यदि आप गायत्री मन्त्र का जाप करते हुए इन मधुओं के द्वारा हवन करते हैं तो इनकी अनन्त गुणा शक्ति होकर आपके आस-पास जितने लोग बैठे होंगे, सबके श्वास के साथ ऑक्सीज़न के रूप में उनके फेफड़ों में चली जायेगी। जो श्वास के साथ फेफड़ों में जाता है वही ऑक्सीज़न रक्त के साथ मिलता है। शारीरिक विज्ञान तो आपने पढ़ा होगा, जो ऑक्सजीन आप लेते हैं, वही ऑक्सीज़न आपके लिए जीवनी शक्ति का आधार बन जाता है। जो खाते-पीते हैं, उसका रस बनता है, वही आपके फेफड़ों में होकर आता है। इधर फेफड़ों में ऑक्सीज़न जाता है, ऑक्सीज़न से जब वह रस

युक्त होता है, ऑक्सीज़न और रस दोनों मिल कर रक्त रूप में परिणत होता है। यदि आपने ऑक्सीज़न पूरी मात्रा में ली तो उससे रक्त सैल उत्पन्न होंगे, आपका वह रक्त बहुत पतला हो जायेगा, pure और thin हो करके आपके पूरे शरीर में संचार होगा। यदि आपने ऑक्सीज़न पूरा नहीं लिया तो Red cell के स्थान पर white cell अधिक मात्रा में पैदा होने लगेंगे। यदि Red cell के स्थान पर white cell अधिक मात्रा में पैदा होना प्रारम्भ हो जायेगा तो शरीर में अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जायेंगे इसलिए यह बताया गया कि जो तुम ऑक्सीज़न लेते हो वह प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व खुले वायु में घूम कर लो क्योंकि उस समय वायु शुद्ध और साफ होता है, सूर्य की कोमल-२ किरणें उस पर पड़ कर उसको जीवनी शक्ति से परिपूर्ण कर देती हैं। इसलिए बगीचे में, नदी के किनारे पर घूमने की महिमा है, नदी में खड़े होकर नाभि भर जल में, घुटने भर जल में, कमर भर जल में, कंठ भर जल में खड़े होकर गायत्री जप करने की महिमा है, क्यों? उस समय तुम्हें एक विशेष प्रकार का वातावरण मिलता है, जिससे तुम्हारी जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है।

इसी प्रकार शास्त्रों में बताया गया कि जब तुम घृत के द्वारा अग्नि में आहुति डालते हो, उस आहुति से घृत अनेक गुणा शक्तिशाली होकर ऑक्सीज़न के द्वारा तुम्हारे अन्दर प्रवेश करता है, रक्त के साथ मिलकर एक हो जाता है। जो घी खाते हैं उसको पचने में समय लगता है किन्तु जो ऑक्सीज़न के द्वारा direct अन्दर जाकर रक्त में मिल गया, उसे पचने में क्या देर लगेगी? इसलिए हमारे यहाँ हवन की बहुत महिमा थी, यह नहीं था कि हवन करने से परमात्मा तुम्हारे लिये आकाश से उतरेगा। नहीं, इससे तुम्हारे अन्दर वाला परमात्मा भी जाग्रत हो जायेगा। देवी भागवत में गायत्री के साथ हवन की बड़ी महिमा गाई गई है और बताया गया है कि कम से कम गायत्री मन्त्र की एक माला का हवन प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य करना चाहिए और साथ में यह भी बताया गया कि यदि तुम हवन नहीं कर सकते तो प्राणायाम के साथ एक माला का जाप करो। इसमें प्राणायाम की बड़ी महिमा है, गायत्री के जाप के साथ प्रणव और प्राण की एकता, इस प्रकार अनेकों विधियाँ हमारे शास्त्रों में बताई गईं जिनका विवेचन करना अल्प समय में कठिन है। जितनी बातें बताई गई इनको अपने हृदय में धारण करो तो जीवन में लाभ होगा किन्तु अन्त में आप लोगों को दो बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए-आचार और सद्विचार, इन दोनों का मूल आधार है, परमात्मा की उपासना। परमात्मा की उपासना में श्रेष्ठतम साधन है गायत्री का

जाप और प्राणायाम! गायत्री के द्वारा यदि आप हवन करते हैं तो गायत्री के द्वारा भगवती की उपासना करते हैं। भगवती कृपा करके आपको बुद्धि और बल देगी, बिना बुद्धि और बल के आपका जीवन व्यर्थ है। बुद्धि को दुर्गा और बल को राधा कहते हैं, यह मैं आप लोगों को पहले भी बता चुका हूँ, यह देवी भागवत का सिद्धान्त है। इतने दिनों में मैंने यह आप लोगों को समझाया है। मुझे विश्वास है कि जो कुछ आप समझे हैं, उसको कुछ अंश में अपने जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे। यदि कुछ अंशों को उतारेंगे तो मेरा नौ दिन का जो प्रयत्न है, वह मैं सफल समझूँगा। इन्हीं शब्दों के साथ उस करुणामयी माँ से बार-२ प्रार्थना करते हुए कि वह आप लोगों को अपने दिव्य मार्ग पर चलने की शक्ति, सामर्थ्य एवं प्रेरणा दें, इन्हीं शुभकामनाओं और अनन्त शुभाशीष के साथ अपने विचारों को यहीं विश्राम देता हूँ, फिर मिलूँगा और चर्चा करूँगा!

हरि ॐ तत्सत्

(इति)

सम्पर्क सूत्र

ब्रह्मर्षि आश्रम
विराट् नगर, पिंजौर (हरियाणा)
पिन-१३४१०२,
फोन: ०१७३३-६५१७०, ६५२७०, ६५२०५

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
२८-बी, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२
फोन: ०११-२८२१६६०, २८२१९४३

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
माधोपुरी, गऊशाला रोड, लुधियाना
फोन : ०१६१-७००१४१

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
(अंग्रेजी मीडियम)
बेअन्तपुरा, चण्डीगढ़ रोड, लुधियाना
फोन : ०१६१-६६६४०६, ६०८४०६

Metaphysical Science Research Institute
Sec.19-A. Chandigarh
Phone : 0172/775390. 540128

ब्रह्मर्षि बावरा शान्ति विद्यापीठ
दीनानगर, धार रोड, उधमपुर (जे०के०)
फोन :०१९९२-७१०८०

Brahmrishi Mission School
Jarar, Devvan, Piplaage
Bhunter, Kullu (H.P.)
Ph. 01902-65518.66043

Brahmrishi Mission School
Hanumangarh Road. Opp. New Water Works. ABOHAR-152116
Ph. : 01634-29615. 30615

ब्रह्मर्षि प्राकृतिक चिकित्सालय योग आश्रम
पुरी फार्म्स, जोड़ियां, रादौर रोड,
यमुनानगर-१३५००१ (हरियाणा)
फोन : ०१७३२-७९८४६

ब्रह्मर्षि बावरा विद्या मन्दिर
चककिशुनदास, ज्ञानपुर, भदोही,
वाराणसी (उ०प्र०)

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
न्यू बाईपास, ऋषिकेश रोड,
भूपतवाला, हरिद्वार (उ०प्र०)
फोन : ०१३३-४६१०१८

श्री गीता रामायण सेवा संघ
अशोक नगर, मोक्ष मार्ग,
उदयपुर (राजस्थान)
फोन : ०२९४-४१४१४०

Brahmrishi Misson
278. Heston Road. Heston
Middlesex TW5 ORT U.K.
Phone : 0181-571-3879

Brahmriahi Mission CANADA
Shri-Ram-Dham Hindu Temple
525 Bridge Street.
East Kitchener. Ontario
CANADA N2K3C5
Phone : (519) 579-1486

Brahmrishi Ashram
1246. North Mantua Street. Kent.
Ohio- 44240. U.S.A..
Phone : 330-678-3793

Brahmrishi Ashram
717. Loosduinseweg.
2571 AM-Denhaag. Nederland.
Ph.: 070-3620961

हमारे प्रकाशन

शक्ति तत्त्व बोध

आपकी अपनी बात

गीता ज्ञान विज्ञान योग

श्री हनुमत विनय पच्चीसी

श्री चण्डिकाशतक • श्री श्यामशतक

मानस में धर्मरथ • रामो विग्रहवान् धर्मः

मानस महाकाव्य में नारी • गीता तत्त्व बोध

क्या वर्ण-व्यवस्था अभिशाप है? • राम नाम महिमा

मानस के मोती • जीवन विज्ञान • भारत की आत्मा

योगाकुंर • साधना सूत्र • गीता कर्म विज्ञान • समाधान

तत्त्व चिन्तन • सन्त सन्देश • भक्ति दर्शन (नारद भक्ति सूत्र)

राम और रामायण • क्रियायोग • मानव पतन में हेतु • योग पथ

विश्व को हिन्दुओं का योगदान • मानस में वैदिक सिद्धान्त

सन्त लक्षण • श्री हनुमत हृदय • संस्कृत भाषा का महत्व

ब्रह्म और उसकी विशिष्टाभिव्यक्ति • सहज समाधि भली

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय १ एवं २)

ब्रह्मविद्या विज्ञान-प्रथम • ब्रह्मविद्या विज्ञान—द्वितीय

नारी! तुलसी की दृष्टि में • शिव तत्त्व बोध

विश्व की समस्याओं का हल—अध्यात्मवाद

हिन्दू धर्म सूत्र • गीतोक्त बुद्धियोग

चंडी दी वार (भगवती की स्तुति)

काव्य सुधा • श्री शिव शतक

Science of Stable Wisdom

The Science of *Pranav (om)*

(Commentary on Mandookyopanishad)

How to be a Yogi • Towards Divinity

Yoga for life • The Hindu & its way of life

Essence of the Gita • Basic Principles of Yoga

Lord Hanuman-Our Ideal • Meditation Technique

Science of the Absolute Knowledge

(Commentary on Ishopanishad)

दिव्यालोक मासिक पत्रिका

सद्‌विचारों के प्रचार और प्रसार की मासिक पत्रिका

दुनिया में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो शक्ति की आराधना न करता हो, किन्तु शक्ति की आराधना किस रूप में करता है, इसके लिए कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। कोई धन के रूप में, कोई बल के रूप में, कोई ज्ञान के रूप में, कोई भक्ति के रूप और कोई परिवार के रूप में शक्ति की उपासना करता है। अन्तर इतना है कि एक उपासना ज्ञान सम्मत है दूसरी अज्ञान सम्मत। जो शास्त्रीय विधि से भगवती की आराधना करता है, उनके ऊपर भगवती करुणा करती है और जो अशास्त्रीय विधि से उपासना करता है, उसके ऊपर वह करुणा नहीं क्रोध करती है। रावण के पास रहते हुए भी शक्ति (सीता) उसके विनाश का कारण बन गई और हनुमान उस शक्ति की उपासना करके कृत्कृत्य हो गये, धन्य हो गये।

— विश्वात्मा बावरा

एकत्वमनुपश्यतः

ब्रह्मर्षि मिशन

दिव्यालोक प्रकाशन

ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट् नगर, पिंजौर (हरियाणा)